भक्त कवियों में मीराबाई के काव्य का संगीतात्मक अध्ययन

(पदावली केन्द्रित)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय को संगीत विषय में
'डॉक्टर ऑफ फिलासफी'
की उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

निर्देशिका
डॉ० स्वतंत्र शर्मा
एम. ए. डी. लिट् (संगीत)
अध्यक्षा
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोध कर्त्री
रूपाली भट्टाचार्या
एम० ए० (संगीत गायन)
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
संगीत प्रवीण
प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद

दिसम्बर, 2003

डॉ० स्वतन्त्र शर्मा
पी० एच० डी०, डी० लिट्०, संगीत
अध्यक्षा,
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रमाण-पत्र

मैं प्रमाणित करती हूँ कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध,

"भक्त कवियों में मीराबाई के काव्य का संगीतात्मक अध्ययन (पदावली केन्द्रित)"

रूपाली भट्टाचार्या का मौलिक शोधकार्य है। जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संगीत में डी० फिल्० की उपाधि हेतु प्रेषित किया जा रहा है।

संपूर्ण कार्य मेरे निर्देशन में सम्पादित हुआ है तथा रूपाली भट्टाचार्या ने विश्वविद्यालय में नियमानुसार निर्धारित उपपस्थिति भी पूर्ण की है।

(डॉ० स्वतन्त्र शर्मा)

भूमिका

एक आस्तिक संगीत की साधिका होने के नाते मीराबाई के व्यक्तित्व और कृतित्व में मेरी विशेष रूचि का कारण मेरे सस्कार भी हैं और मेरा व्यवसाय भी। शायद यही सोचकर मेरे शोध-निर्देशक महोदय ने, मेरी प्रार्थना पर, "मीराबाई के काव्य का संगीतात्मक अध्ययन" विषय पर शोध-कार्य करने के लिए मुझे प्रेरित और उत्साहित किया। मैंने उन्हें बताया था कि बचपन और किशोरावस्था से ही मुझे मीरा का वह काल्पनिक चित्र आकृष्ट करता रहा है, जिसमे वह श्रीकृष्ण की प्रेम-जोगिन के रूप में इकतारा और खड़ताल वजाती हुई, निमग्न भाव से गाती हुई और नाचती दिखाई गई हैं। वर्षों बाद, आज भी मुझे लगता है कि आलौकिक आत्म-निवेदन की गहराई, तड़प और पराकाष्ठा जितनी मीराबाई में थी, उतनी या वैसी शायद किसी भी मध्ययुगीन भक्त-कवि में नहीं थी। विस्तार, मात्रा, बहुज्ञता, विचार, विविधता, पाण्डित्य, जीवन-दर्शन, आभिजात्य आदि की दृष्टि से दूसरे महाकवि मीरा से आगे हो सकते हैं, परन्तु प्रेरणा की अगाध निरन्तरता और अनुभूति की आकुल तीव्रता की दृष्टि से मीरा ही सबसे आगे हैं। कहा भी जाता है कि महान काव्य की पहली पहचान वस्तुतः उसकी प्रेरणा और अनुभूति की महानता से ही होती है। मुझे मीरा-काव्य का यह पक्ष समृद्धतम लगता है।

शोध-विषय के चयन का एक बड़ा कारण यह भी रहा है कि मीराबाई की पदावली में संगीत और साहित्य दोनों को जोड़ कर अध्ययन करने की अद्‌भुत सम्भावना है। जिस प्रकार जीवन में सुख-समृद्ध आदि सब कुछ त्याग कर उन्होंने अपने इष्ट आराध्य का वरण किया था और विचार तथा कर्म की अद्वितीय एकता का परिचय दिया था, उसी प्रकार अपनी रचनाओं में उन्होंने साहित्य और संगीत को सभी कलाओं की एकता में देखा था। उनके लिए पद- रचना, आत्म-रचना और जीवन-रचना में कोई भेद नहीं था। इसीलिए उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में भक्ति, संगीत, काव्य, नृत्य आदि कलाएँ मिलकर एक हो जाती हैं। इस परिप्रेक्ष्य से मीरा एक सम्पूर्ण कवयित्री है। यही कारण है कि वह हिन्दी की ही नहीं, व्यवहारतः समूचे भारतवर्ष के प्रख्यात रचनाकार हैं, जिन्हें युगों से पढ़ा-गाया जा रहा है और जिनकी कीर्ति का प्रसार अन्य देशों तक भी होता रहा है। उनका काव्य जहाँ एक ओर

भक्त-हृदय की सहजानुभूति और प्रेम की गहरी वेदना को व्यक्त करता है, वहाँ उसे विशाल जन-मानस की श्लाघा और स्वीकृति भी प्राप्त है। उसे यह स्वीकृति अपने काव्यत्व अथवा पाठमूलकता के कारण ही नहीं मिली है, बल्कि इसका अधिकांश श्रेय उसकी आधार-भूत संगीतधर्मीता को जाता है, जो शास्त्रीय और सुगम भजन-गायकी के माध्यम से जनमानस को निरन्तर आह्लादित करती रही है। सच तो यह है कि काव्य-पुस्तको की तुलना में मीराबाई हमारी प्रस्तुतिमूलक कलाओं में अधिक अमर हैं। अतः मुझे अपनी यह धारणा संगत लगती है कि मीरा की चारित्रिक और रचनात्मक असाधरणता को सामान्य भाषा के शाब्दिक उपकरणों ही से पकड़ा नहीं जा सकता, वल्कि राग, लय, ताल, स्वर के आरोह-अवरोह और अन्तर्दर्शन के भीतर संगीतात्मक संदर्भो में समझना भी अधिक उपादेय हो सकता है।

मीराबाई ने जीवन से जो कुछ लिया और रचना में जो कुछ दिया, उन दोनों में तो लय और एकतानता है ही, लेकिन इसके पीछे उनका अद्भुत सामाजिक और रचनात्मक साहस है जो प्राणों पर खेल कर भी नयी और स्वस्थ मर्यादाओ को स्थापित करना चाहता है। मीरा के भीतर अपने युग की एक विद्रोहिणी नारी भी है, जो केवल भक्त नहीं है, बल्कि समाज में आमूल परिवर्तन चाहने वाली लोक-सेविका भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका प्रिय रणछोड़-मंदिर, जो उनके भजन-कीर्तन का विशेष स्थल था, वास्तव मे उनकी परिवर्तन की कामना का मंच था और उनकी सम्पूर्ण गीत-संगीत की साधना का साधन था। संगीत के परिप्रेक्ष्य में मीरा-काव्य की इस सामाजिक और सांस्कृतिक सम्पन्नता को रेखांकित करना भी मेरा लक्ष्य रहा है।

शोध में विषय को परिसीमित करना अनिवार्य होता है, अन्यथा उसमें बिखराव आ जाता है और शोधकर्ता अपनी बात को किसी संकल्प के अन्तर्गत सटीक ढ़ग से नहीं कह सकता। प्रस्तुत शोधकार्य की एक परिसीमा इसका मीरा-पदावली पर केन्द्रित होना है और दूसरी तथा बड़ी परिसीमा इसका संगीतात्मक कोण है। पूरे अध्ययन में संगीत की आधारभूमि का निर्वाह किया गया है, इसमें संगीत के तकनीकी या शास्त्रीय पक्ष का सम्बल तो लिया गया है, मगर उसे सहज तथा व्यावहारिक बनाया गया है, ताकि मीरा-काव्य की भाव-माधुरी और सम्प्रेषणीयता के तत्वों को नये सिरे से उद्घाटित किया जा सके और मीरा की धरोहर को समेटा-संजोया जा सके।

मीराबाई लगभग चार सौ वर्ष पुरानी मध्ययुगीन कवयित्री है, इसलिए हिन्दी में अब तक उन पर स्वतंत्र अथवा प्रासंगिक प्रयासों के रूप में प्रचुर आलोचनात्मक अथवा शोधात्मक अध्ययनों का उपलब्ध होना स्वाभाविक है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित "मीरा-पदावली" इस दृष्टि से एक महत्वपूर्ण पुस्तक है, जिसमें मूलपाठ के संकलन के अतिरिक्त मीरा-काव्य के सभी महत्वपूर्ण पक्षों को रेखाकित किया गया है। अन्य विद्वानों ने भी "पदावली" का सम्पादन किया है और कालान्तकर में कुछ शोध-कार्य भी प्रकाश में आए हैं, परन्तु मीरा-काव्य का स्वतंत्र संगीतात्मक अध्ययन अभी तक नहीं हुआ। डॉ.उषा गुप्ता का लखनऊ विश्वविद्यालय से "हिन्दी के कृष्ण-भक्ति-कालीन साहित्य में संगीत" नामक शोध-कार्य सन् १९६० में प्रकाशित हुआ, लेकिन इसमें कृष्ण-भक्ति-कालीन कवियों के संगीत-ज्ञान के अन्तर्गत एक अध्याय में मीराबाई पर कुछ पक्तियाँ ही उपलब्ध हैं, जबकि संगीत की राग-रागिनियों का प्रसंग उठाते समय उनका उल्लेख तक नहीं किया गया है। इसी प्रकार दिल्ली विश्वविद्यालय से उपाधि-प्राप्त डॉ.उमा मिश्र का शोध-कार्य "काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बंध" सन् १९६२ में प्रकाशित हुआ, जिसमें मीरा-काव्य के संगीतात्मक आयाम को नहीं लिया गया, केवल गीति-काव्य के संक्षिप्त इतिहास में ही संक्षिप्तता से समेट दिया गया। इधर सबसे बाद के शोध-कार्यों में डॉ.नमिता बनर्जी का आगरा विश्वविद्यालय में प्रस्तुत "मध्यकालीन संगीतज्ञ एवं उनका तत्कालीन समाज पर प्रभाव" सन् १९९६ में दिल्ली से छपा है, लेकिन इसमें भी मीराबाई की संगीतधर्मिता को रेखांकित नहीं किया जा सका है। इसी कड़ी में जबलपुर विश्वविद्यालय द्वारा उपाधि के लिए स्वीकृत डॉ.न.सुन्दरम का "मीरा" और आण्डाल का तुलनात्मक अध्ययन, प्रयाग से १९७१ में प्रकाशित हुआ, जिसमें दक्षिण भारत की कवयित्री आण्डाल और उत्तर भारत की मीराबाई की तुलना करते समय, दोनों के संगीतपरक छन्द-विधान, शास्त्रीय एवं लोक संगीत के आयाम, राग-रागिनियों आदि का भी विवेचन किया गया है, लेकिन तुलना का विषय-संकल्प संगीतात्मक न होने के कारण यह शोध कार्य भी परिचात्मक अथवा व्याख्यात्मक तुलना का प्रयास ही कहा जा सकता है। मेरा यह शोध-कार्य इसी आभाव को भरने का एक मौलिक प्रयास है, जिसमें पहली बार मीरा-काव्य को सम्पूर्ण संगीतात्मक दृष्टि से देखा गया है और शास्त्रीय उपागम से व्याख्यायित किया गया है।

मेरा यह भरकस प्रयास रहा है कि मेरे शोध-कार्य की रूपरेखा बहुत स्पष्ट हो, ताकि मूल समस्या अथवा संकल्प के आलोक में अथ से इति तक निभ्रान्त हो कर चल सकूँ। परिणामतः इस शोध-प्रबंध को पाँच खण्डों में बाँटा गया है।

प्रथम खण्डः- में चार अध्याय हैं, मूलतः सिद्धांतपरक, पृष्ठभूमि-मूलक और परिचायात्मक है। इनमें संगीत की सैद्धांतिक पहचान, अन्य ललित कलाओं के संगीत के सम्बन्ध, साहित्य के संगीतपरक रूपों, काव्य और संगीत की परस्पर-निर्भरता, मध्य युगीन हिन्दी भक्ति-काव्य और संगीत, संगीतधर्मी काव्य के अध्ययन के तत्वों आदि पर विचार किया गया है।

द्वितीय खण्डः- तीन अध्यायों से निर्मित है, जिनमें मीराबाई को केन्द्र में रखकर युग एवं परिवेश के फलक पर उनकी चारित्रिक संरचना, सर्जनात्मक क्षमता और पदावली तथा अन्य रचनाओं को संगीत के विशेष संदर्भ में विश्लेषित किया गया है।

तृतीय खण्डः- के तीन अध्यायों का सम्बन्ध मीरा-काव्य की उसके भावलोक तथा अन्तर्दर्शन के संगीतात्मक आधार पर विवेचना करने से है। इसमें तीन अध्याय हैं, जिनके अन्तर्गत मीरा-काव्य में "भगति" और "जगति" के द्वन्द्व-संगीत का उसकी मूल प्रेरणा, धारणा, मधुरा भक्ति की पराकाष्ठा और सहजानुभूति की गरिमा के सदर्भ में सक्षात्कार किया गया है, मीरा के भावलोक का संगीतात्मक आकलन करते हुए, उसकी असमानता, रस-साधना, भाव-माधुरी और विविध भावों को उद्घाटित किया गया है और अन्तः- संगीत की भूमि पर उनके चितंन, साम्प्रदायिक समाहार, जीवन-चेतना, विरह-वेदना, लीला-रूपों, उदात्त जीवन-दर्शन आदि को समेटा गया है।

चतुर्थ खण्डः- के दो अध्यायों में मीराबाई की शब्द-सगीत की साधना और विभिन्न संगीतात्मक आयामों में उनके काव्य का आंकलन करता है। इसमें दो अध्याय हैं, जिनमें मीरा-काव्य को शास्त्रीय, सुगम तथा लोक संगीत के परिप्रेक्ष्य में देखकर मीरा की मौलिक संगीतात्मक उद्भावनाओं के अन्तर्गत उन पर "राग मल्हार" की जन्मदात्री के रूप मे विचार किया गया है और उनकी "पदावली" की अन्य संगीतात्मक सम्भावनाओं पर प्रकाश डाला गया है। मीरा-काव्य की कालजयी रागानुसारिता के पक्ष से पदावली की राग-रचना,

उसके त्रिविध संगीत, स्वर-सौष्ठव, रागों के माध्यम से ऋतु-वर्णन और जीव-स्वरो की रचना को उद्घाटित किया गया है।

पंचम खण्डः- के दो अध्यायों में राग-वैभव को , प्रमुख पदों की स्वर-लिपियाँ देकर, वर्गीकरण के आलोक में समझा गया है और शब्द-सगीत की साधना के रूप में मीरा-काव्य के समग्र अभिव्यक्ति-पक्ष को रेखांकित किया गया है। अन्त में "उपसंहार" के अन्तर्गत प्रस्तुत शोध-प्रबंध की निष्कर्षात्मक संक्षेपिका दी गई है और इसकी मुख्य स्थापनाओ को दर्शाया गया है।

इस प्रकार यह शोध-प्रबंध जहॉ एक नूतन दिशा में क्रमवद्धता से अग्रसर होने का एक विनम्र तथा निष्ठावान् प्रयास है, वहाँ यह किसी भी प्रकार की उपलब्धि की गर्वोक्ति भी नहीं करता। इसकी शोध-कर्त्री केवल एक अन्वेषिका अथवा अनुसंधित्सु होने के सुख-दुख मे ही स्वयं को सार्थक समझती है। वह अपनी सीमाओं से भी परिचित है इस हेतु सुधीजनो से प्रार्थना के साथ आशिर्वाद चाहती हूँ कि भविष्य में अपने ग्यान की सीमा का मै अतिक्रमण न कर सकूँ।

यों तो कृतज्ञता का ज्ञापन और आभार का प्रदर्शन शब्दो में नहीं किया जा सकता। फिर भी अभिव्यक्ति के बिना अनुभूति को साकारता नहीं मिलती। इसलिये सर्व-प्रथम अपने शोध-कार्य की निर्देशिका श्रद्धेया डॉ.स्वतत्र शर्मा जी जो वर्तमान में इलाहावाद विश्वविद्यालय के संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग की एक सुयोग्य अध्यक्षा तथा संगीत के अनेक पुस्तको की लेखिका एवं कलाकार है इनके प्रति मै श्रद्धा से नतमस्तक हूँ। जिन्होंने शोध-कार्य में पग-पग पर स्नेह सौहार्द से मेरा मार्ग दर्शन और मेरी प्रत्येक समस्याओं का निराकरण किया जिसके फलस्वरूप ही इस शोध-प्रबंध का सृजन हो सका। इस हेतु मै आप की चिर ऋणी रहूंगी।

मै अपने गायन गुरू श्रद्धेया डॉ.गीता बनर्जी (भूतपूर्व-अध्यक्षा संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के प्रति भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ एवं नतमस्तक हूँ जिन्होंने मुझे मुक्त कन्ठ एवं उदारता पूर्वक संगीत गायन की सुदृढ़ एवं उच्च शिक्षा देकर इस योग्य बनाया कि मै शोध-कार्य करने की मंजिल तक पहुंच सकी।

इस अवसर पर सुविख्यात संगीत विद्वान एवं कलाकार, राग शास्त्र के मर्मग्य तथा "अभिनव गीतांजलि" पुस्तक के पांच भाग और "संगीत रामायण" के लेखक श्रद्धेय गुरुवर पं० रामाश्रय झा जी (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष संगीत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के चरणों में मैं शत्-शत् प्रणाम करती हूँ जिन्होंने शोध-कार्य के विभिन्न समस्याओं के निराकरण में हमारी हर संभव सहायता की और मेरे इस संकल्प की पूर्णाहुति के हेतु निरंतर मेरे प्रेरणा स्रोत बने रहे।

शोध-कार्य करने में मेरी पूज्य माता श्रीमती कल्पना भट्टाचार्या एवं पूज्य पिता श्री ध्रुव रंजन भट्टाचार्या के आशिर्वाद एवं अपार स्नेह व सहयोग का ही यह सुपरिणाम है कि मै शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में सक्षम हो सकी। अन्यथा शोध-कार्य की समस्याओं से जूझना मेरी सामर्थ्य से बाहर की बात थी। इस हेतु चरणों की वन्दना करते हुए जीवन पर्यन्त उनके इस स्नेह व सहयोग को स्मरण रखना मेरा कर्त्तव्य बनता है।

मेरी संगीत शिक्षा व साधना कि पृष्ठ-भूमि में श्रद्धेया मेरी मामी श्रीमती मोनिका मिश्रा एवं श्रद्धेया मामा श्री आशीष मिश्रा (भूतपूर्व प्रधानाचार्य एंग्लो बंगाली इन्टर कालेज इलाहाबाद) का जो प्रमुख योग दान रहा है उस को तो मै जीवन पर्यन्त नहीं भुला सकती क्योंकि इन्होंने ही सर्व-प्रथम पटना (बिहार) से इलाहाबाद लाकर बड़े ही प्यार से अपने संरक्षण में रखकर सुचारू रूप से सगीत शिक्षा दिलाने के दायित्व का निर्वहन किया जिसके कारण ही मै आज शोध-कार्य करने तथा डी० फिल्० की उपाधि प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हो सकी इस हेतु आप दोनों ही मेरे लिए गुरू एवं माता-पिता के समान ही जीवन पर्यन्त वन्दनीय रहेंगे।

मै उन सभी संगीत विद्वानों के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करना अपना परम कर्त्तव्य समझती हूँ जिनकी पुस्तकों एवं विचारों तथा प्रत्यक्ष रूप से शोध-कार्य के विषय वस्तु की समस्याओं के निराकरण में मुझे सहयोग व सहायता मिली है।

विनीता

Rupali Bhattacharya

(रूपाली भट्टाचार्या)

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

भूमिका i - vi

प्रथम अध्याय

१. विषय प्रवेश १ - ३ तक
२. संगीत का स्वरूप एवं प्रयोजन ३ - ६ तक
३. संगीत का क्षेत्र विस्तार ७ - ९ तक

द्वितीय अध्याय

१. साहित्य और संगीत १० - १२ तक
२. काव्य और संगीत १३ - १६ तक
३. संगीत और गीत १६ - १७ तक

तृतीय अध्याय

१. संगीत के प्रकार १८ - २२ तक
२. शास्त्रीय संगीत
३. भाव संगीत
४. भारतीय संगीत की विशेषतायें
५. निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय

मध्य युगीन हिन्दी भक्ति-काव्य और संगीत २३-४३ तक

१. पूर्व पीठिका
२. भक्ति काव्य
३. काव्य का विशिष्ट युग
४. निर्गुण भक्ति धारा
५. सर्गुण शक्ति धारा
६. कृष्ण भक्ति के प्रमुख सम्प्रदाय
७. राम भक्ति धारा
८. सम्प्रदाय- मुक्त कवि और मीरा बाई
९. संगीत का विशिष्ट युग
१०.भक्त कवियों की संगीत निष्ठा
११.भक्ति काव्य में मानवी भक्ति-भाव

द्वितीय खण्ड

प्रथम अध्याय

१. मीराबाई का युग तथा परिवेश — ४४ - ५४ तक

२. सामाजिक परिस्थितियाँ

३. मीराबाई का परिवेश : विभिन्न प्रवृत्तियाँ

द्वितीय अध्याय

मीराबाई की व्यक्तित्व संरचना और संक्षिप्त जीवन वृत — ५५ - ६५ तक

१. मीराबाई : संक्षिप्त जीवन वृत्त

२. व्यक्तित्व की मूल प्रवृत्तियाँ

३. सर्जनात्मकता की क्षमता और उसके भक्ति का संगीतात्मक स्रोत

४. महा समर्पण

५. निष्कर्ष

तृतीय अध्याय

मीराबाई का सृजन संसार — ६३ - ९० तक

१. मीराबाई की सृजनात्मक क्षमता

२. मीराबाई का सृजन संसार कृतित्व परिचय

३. मीरा पदावली

४. कृतित्व में संगीतात्मक प्रवृत्तियाँ

५. निष्कर्ष

तृतीय खण्ड

प्रथम अध्याय

मीरा काव्य में "भगति" और "जगति" का द्वन्द्व संगीत — ९१ - १०५ तक

द्वितीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

मीराबाई का अन्तर्दर्शन और अन्तस्संगी — ११४ - १२५ तक

चतुर्थ खण्ड

प्रथम अध्याय

मीरा काव्य के संगीतात्मक आयाम — १२६ - १४० तक

द्वितीय अध्याय

मीरा काव्य की कालजई रागानुसारिता — १४१ - १६७ तक

पंचम खण्ड

प्रथम अध्याय

मीरा काव्य का राग वैभव — १६८ - १९६ तक

द्वितीय अध्याय

शब्द-संगीत की साधना : मीरा - काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष — १९८ - २१६ तक

प्रथम खण्ड

प्रथम अध्याय - विषय प्रवेश

द्वितीय अध्याय - साहित्य के संगीतपरक रूप काव्य का विशेष संदर्भ

तृतीय अध्याय - संगीतात्मक अध्ययन के आधारभूत तत्व

चतुर्थ अध्याय - मध्ययुगीन हिन्दी भक्ति काव्य और संगीत

प्रथम खण्ड

प्रथम-अध्याय

१. विषय प्रवेश
२. संगीत का स्वरूप एवं प्रयोजन
३. संगीत का क्षेत्र विस्तार

विषय प्रवेश

संसार की समस्त कलाओं में संगीत की सर्वश्रेष्ठता भी सर्वमान्य है। भारती मनीषा यह मानकर चलती है कि इस सृष्टि के प्राकृतिक विधान के कण-कण में संगीतमीय लय है, जिसे आत्मसात करने से मंगल होता है और तिरस्कृत करने से घोर अनिष्ठ होता है। हमारे यहां ईश्वर की आधारभूत कल्पना ही उस संगीतकार कवि के रूप में की गई है, जिसने सृष्टि रूपी लयबद्ध काव्य को रचा है और उसकी यह रचना न कभी पुरानी पड़ती है, न मरती है। यों तो हमारे चारो वेदों में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष संगीत की महिमा का अभूतपूर्व वरदान किया गया है, मगर सामवेद का तो दूसरा नाम ही संगीत-वेद है और अथर्ववेदन को भी रस का वेद ही माना जाता है। भारतीय कलाओं के आदि ग्रंथ और विश्वकोश नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत ने सात अध्यायों (२८ से ३४) में गीत-वाक का महत्वांकन किया है और नाट्य-प्रयोग के प्रथम-चरण "पूर्व-रंग" से लेकर अंतिम चरण तक में उसकी अनिवार्य भूमिका को स्वीकार किया है, क्योंकि उनके अनुसार गीत-वाद्य का सुप्रयोग किसी भी प्रस्तुति को विपत्ति से बचाता है। आचार्य भरत की मान्यता है कि "संगीत या गीत का स्वर नाद में होता है।" नया पराशक्ति बाह्म का प्रतीक है। यही स्फोट का व्यंजक है। स्फोट और नाद वही सम्बन्ध है जो नयनों और उनके प्रत्यक्षीकरण का रूप चक्षुग्राहय है और चक्षुरूपग्राहय है, गंध में घ्राण-ग्राहयता है और घ्राण सुगंधि-ग्राहय है।"

भावना प्रधान और अनुभूतियों पर आश्रित होने के काण ही संगीत प्राणीमात्र को विपत्तियों से बचाता है। लोक में सर्प और बीन, मृग और तंत्री आदि के जो अदभुत आख्यान प्रचलित है। तथा तानसेन आदि महान संगीतकारों को संगीत के द्वारा दीपक जलाने, बरखा बरसाने, पशु-पक्षियों को एकत्र करने और बीमार राजकुमारियों का उपचार करने के जो प्रसंग उद्धृत किए जाते हैं, उन

को एकत्र करने और बीमार राजकुमारियो का उपचार करने के जो प्रसंग उद्‌धृत किए जाते हैं, उन सबके पीछे संगीत कला के सर्वाधिक भाव-प्रवण होने की अदभुत विशिष्टता ही विद्यमान है। देखा जाए तो श्रुतियों के आधार पर वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी स्वरों का जो चार प्रकार से विभाजन किया जाता है, वह मनुष्य और समस्त ब्रह्माण्ड के मध्य सम्बोधक और संवाद की सार्थकता ही का सूचक है।

विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों के प्राचीनतम कालों में भी संगीत का सबसे अधिक वर्चस्व रहा है। भारत ही की भांति यूनान में भी प्राचीन काल से ही संगीत की कलात्मक सर्वोच्चता को स्वीकारा जाता रहा है। प्लेटो जैसे कट्टर नैतिकवादी विचारक ने कवि को तो अनुकर्ता मात्र मान कर अपने आदर्श "गणराज्य की परिकल्पना" से निष्कासित कर दिया, मगर उसी प्लेटो ने माना कि कोई भी अन्य कला संगीत की तुलना में पीछे है, क्योंकि जो गहनता और गंभीरता संगीत से उत्पन्न होती है वह एक आदर्श गणराज्य के लिए प्राण-तत्व का कार्य करती है। शायद प्लेटो का संकेत, अपने युग की आवश्यक के अनुरूप संगीत के द्वारा राज्य में भावनात्मक एकता लाने की ओर भी था। कविता और संगीत, या गीत और संगीत अत्यन्त परस्पराश्रित है। यों तो संगीत इसलिए भी महान समझा जाता है कि उसकी कोई शाब्दिक भाषा नहीं होती और उसका मूर्ति चरित्र ही स्वरूप तथा सार्वभौम होता है मगर यह भी सच है कि वाद्य संगीत को गेय संगीत से ही पूर्णता प्राप्त होती है और काव्य ही उसे गेय पाठ प्रदान करता है। इसलिए हमारे यहाँ संगीत को काव्यमय और काव्य को संगीतमय माना गया है। यह आश्चर्य की बात है कि लगभग सभी देशों में जो युग काव्य की दृष्टि से स्वर्णिम रहा है, संगीत का भी वही स्वर्ण-काल कहलाया है। भारतीय इतिहास का मध्य-युग, जिसमें भक्ति-काव्य ने सांस्कृतिक पुनर्जागरण का विलक्षण कार्य किया, संगीत का भी सर्वोत्तम काल खण्ड स्वीकार किया जाता है।

मीराबाई की संगीत और काव्य की इसी अभूतपूर्व एकता समय की उपज थी। भक्ति जन आत्मनिवेदन की पवित्रतम कविता को संगीत की सहायता से उन्होंने जिस पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया था, उसका कोई उदाहरण नहीं है।

अन्य भक्त-कवियों की भांति उन्होंने भी अपने काव्य को राग-रागनियों में रचा था और साहित्य तथा संगीत दोनों को अनन्य गरिमा प्रदान की थी। इसलिए उनके काव्य का संगीतात्क

अध्ययन किए बिना उसके सम्पूर्ण अर्थ को आत्मसात करना असम्भव है। परन्तु सबसे पहले, इस शोध-प्रयास के प्रथम-चरण पर, एक सैद्धान्तिक आधारभूति के रूप में कतिपय विस्तार के साथ यह जान लेना भी आवश्यक है कि संगीत और उसका स्वरूप क्या है, साहित्य के कौन से रूप क्यों संगीतपरक होते हैं, मध्ययुगीन हिन्दी संगीत-काव्य की समृद्ध परम्परा कौन-सी रही है और किन तत्वों के आधार पर काव्य का वस्तुपरक संगीतात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

यह सत्य है कि तुलसी, सूर, कबीर, मीरा इत्यादि भक्त कवियों के काव्यो पर अनेक लोगो ने शोध कार्य किया है और कर रहे है फिर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि इन महान भक्त कवियों के काव्य सागर में साहित्व एवं संगीत की दृष्टि से अब शोध करने की गुंजाइश नहीं है। चूंकि इन भक्तों के काव्य पूर्ण आध्यात्मिक हैं इस हेतु पौराणिक तथा धार्मिक ग्रन्थों के सदृश्य हैं। इस आध्यात्मिक अनन्त सागर में नवीन उपलब्धि रत्नों की कमी नहीं है। यह तो शोध-कार्य करने वालो की क्षमता पर निर्भर करता है कि इस महान काव्य सागर से वह कौन सी नई उपलब्धि रत्न को खोज निकालता है।

इन भक्त कवियों के काव्य के इसी महत्व को ध्यान में रखकर हमने मीराबाई के काव्य को जो साहित्य एवं संगीत के अनुपम गुणों से ओत-प्रोत है, अपने शोध विषय का आधार बनाया है।

संगीत का स्वरूप एवं प्रयोजन

"संगीत का प्रथम प्रमुख तत्व "नाद" है। "नादाधीनम जगत्"। यह समस्त संसार ही नाद के अधीन है। भारतीय परम्परा में नाद तत्व की अपार महिमा पाई गई है :

"नाद रूपः स्मृतो ब्रह्म नाद रूपो जनार्दन।

नादरूपा पराशक्तिर्नाद रूपोः महेश्वरः।[1]

सुमित्रा नन्दन पंत जी ने कहा है :

"नाद ही जीवन का उन्मेष

नाद ही सृष्टि नाद ही वेद।[1]

१. सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली, खण्ड-५, लोकायतन, (प्रयागः इडियन प्रेस, १६३१) पृ० १६६.

संगीत का मूल तत्व होने के कारण संगीत के सभी शास्त्रकारों ने "नाद" का न्यूनाधिक निरूपण किया। सर्वप्रथम मतंग ने "ध्वनि" अथवा "नाद" से सम्पूर्ण चराचर जगत की उत्पत्ति ब्रह्मादिय का सम्बन्ध प्राणाग्नि के संयोग से "नाद" की उत्पत्ति नाद[1] भेद आदि नाद से ही षड्जादि स्वरों की उत्पत्ति कही है।

अभिनव गुप्त ने नाद के पर्याय "वाक" शब्द को लेकर उसके नाद रूपा और वर्णरूपा - ये दो भेद करके नादात्मिका के अन्तर्गत नाद के वर्णरहित किन्तु उतार चढ़ाव रूप उस भेद को लिया जो केवल शोकादि चित्त वृत्तियों को व्यक्त करता है।

पं. शरंगदेव ने नाद में पारब्रह्म के समस्त गुणों का आरोप करके संगीत में उसे नाद ब्रह्म के रूप से प्रतिष्ठित किया।[1] संगीत की तीनो कलाएं गायन, वादन, नृत्य नाद के अधीन मानी गई है।

गीतं नादात्मकं वाद्यं नादत्यक्तया प्रशस्यते

तदवयानुगतं नृत्यं नादाधीनमतस्त्रयम्।[2]

नाद के दो भेद माने गये है, आहत नाद और अनाहत नाद की महिमा मुनि लोगो ने गाई है। प्राचीन विद्वानों के कथानुसार अनाहत नाद की उपासना मुनि लोग करते थे अनाहत नाद की उपासना से मोक्ष की प्राप्ति होती थी। संगीत का प्रथम गुण रंजन प्रदान करना है।

संगीत में जिस नाद का वर्णन है वह है "आहत-नाद"। अहत नाद लोग रंजन तथा भवभंजन एक साथ करता है।

स नादस्त्वाहतो लोके रंजको भव भंजकः[3]

इसके द्वारा सौन्दर्य के असीमित भेद प्रकट होते है और श्रोता को सविकल्प समाधि मिलती रहती है। आहत नाद से ही संगीत के मौलिक उपकरण स्वर की उत्पत्ति होती है स्वर की व्याख्या स्वतः रंजयति इतिस्वरः की गई है। स्वरों का प्रभाव इतना प्रबल होता है कि वह अन्तश्चेतना को स्वाभाविक रूप से अलौकिक आनन्द देता रहता है और श्रोता घंटो समाधि की अवस्था में बैठा

---

१. सुभद्रा कुमारी चौहान, संगीत संचयन, (अजमेर औष्ण ब्रदर्स, १६८६) पृ० ६७
२. शारगदेव, सगीत रत्नाकर, (प्रथम भाग, द्वितीय प्रकरण) पृ० ११
३. उमा गुप्त, हिन्दी के औष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत, (लानऊ लखनऊ विश्वविद्यालय, १६६०) पृ० ५३.

रहता है, आहत नाद का अवलम्बन करने से चित्तवृत्ति का निरोध अपने आप सहज में ही हो जाता है।

लय :-

लय संगीत का दूसरा प्रमुख तत्व है लय या गति। लय उस गति को कहते है जहां समानता, एकरूपता, नियमित्ता, हो। सामान्य रूप से लय का स्पष्ट शाब्दिक है संयोग एकरूपता, मिलन, इत्यादि। पारिभाषिक अर्थ में लय को तालों एवं काल-माप का आधार माना जाता है। ''नियमित गति ही लय है, जो प्रबल अबल की भावना की भी जन्मदात्री है पहले प्रबल गति खण्ड, अबल गति खण्ड के छोटे-छोटे विभाग निर्मित होते है फिर क्रमशः विभाग विस्तृत होने लगते हैं संगीत के स्वरों में प्रबलतत्व तथा अबलत्व के कारण छोटे बड़े स्वर समूह निर्मित होते रहते है जो हमारे भावों के उदघाटन में सहायक होते है। उन लय-खंडो के समूहों का विस्तार ही भारतीय संगीत के आगे चलकर ताल के रूप में प्रस्फुटित हुआ।''[1]

''तालस्तक प्रतिष्ठाया मिति धातोर्थ जिस्मृतः

गति वाद्य तथा नृत्य यत स्ताल प्रतिष्ठितम्।''[2]

गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों की प्रतिष्ठा ताल पर हुई है। इसलिए प्रतिष्ठा वाचक धातु रूप ''तल' से ''ताल'' बना है। इसे हम ''मित्ति'' या बुनियाद कह सकते है, यह मापक काल क्रिया के नाप का नाम ताल है, ताल गायन, वादन, नृत्य को आधार प्रदान करता है, समस्त प्रकृति में समय क्रम की जो निश्चित गति है वही संगीत में ताल बनकर उसे रसपूर्ण और स्थायित्व स्वरूप प्रदान करती है, लय गति की विभिन्नता, विभिन्न रसों की उत्पादक है, लय के अधिक महत्व के कारण ही भारतीय संगीत में ताल शास्त्र का व्यवस्थित और वैज्ञानिक विकास हुआ, सम्पूर्ण विश्व के संगीत में लय निर्वाह प्रत्यक्ष या परोक्ष के रूप में तत्, अवनद्, सुषिर, घन, चारों प्रकार के वाद्यों द्वारा होता रहा है। प्रयोजन की दृष्टि से मानव के निहित उल्लास को सहज ढंग से उभारने और व्यक्त करने के जो प्रयत्न किए संगीत भी उन्हीं में से एक है। संगीत में

---

१. लालमणि मिश्र, भारतीय सगीत वाद्य, (दिल्ली. भारतीय ज्ञानपीठ, १९७३) पृ० १,२
२. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, (मद्रास. बसन्द्र प्रेस, १९४३) पृ.८.

आनन्द, उल्लास परिमार्जित होता हुआ व्यक्त होता है। आनन्द मानव का स्वभाव है, उसकी अंतःस्फुरण है। आनन्द की स्त्वं रज और तम तीन गतिया मानी गई है:

१. मानवीय सत्ता को पाँच तत्वों, (अन्नमय, प्राणमय, मनोनय, विज्ञानमय, आनन्दमय) में समझने की चेष्टा की गई है। इनमे आनन्द सबसे सूक्ष्म और महत्वपूर्ण है तथा उसका दिशा-निर्धारण भी उतना ही महत्वपूर्ण है। संगीत का उद्देश्य - मानवीय सत्व के इसी महत्वपूर्ण पक्ष को सत्व की ओर अग्रसर करने का है, सत्व की दिशा ही उर्ध्व में ले जाती है, गीता में गाया भी है।

"उर्ध्व गच्छान्ति सत्वस्था"

संगीत मानव मन को इस उच्चतर सूक्ष्म नाद का अनुभव कराना है जहाँ पहुंच कर उसे अलौकिक आनन्द की उपनुभूति होती है जिसे "ब्रह्मानन्द" सहोदर कहा गया है। इसका लक्ष्य आत्मोन्नति होने के कारण यह मोक्ष प्राप्ति का सशक्त साधन माना गया है।

"वीणा-वादन तत्वज्ञः श्रुति जाति विशारदः

'तालज्ञश्च प्रयासेन मोक्ष मार्ग नि गच्छन्ति।"

संगीत केवल सामान्य ध्वनि नहीं है बल्कि यह सूक्ष्म अन्तवृत्तियों के उद्घाटन का सबल साधन है।'

हमारे भक्तों और मुनियों ने बुद्धि को अनुभूति से गौण स्थान दिया। इसी कारण ब्रह्म के "सत" और चित्त अंश की अपेक्षा आनंदाश ही उनका अंतिम लक्ष्य रहा, इस अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति में संगीत उनका प्रमुख सहायक रहा आनन्द का ही नाम रस है। संगीत से निष्पन्न होने वाला रस विशुद्ध आनन्द मय तथा ब्रह्मानन्द सहोदर बतलाया गया है। इसलिए "रसो वैसः" की उक्ति प्रसिद्ध है।

संगीत कला की वेद के रूप में स्थापना इस बात का प्रमाण है कि संगीत केवल लोकरंजन की वस्तु नहीं है बल्कि आत्मानुभूति का साधन भी है।

संगीत का क्षेत्र विस्तार :

क्षेत्र के विचार से कुछ विद्वान काव्य को संगीत की अपेक्षा अधिक विस्तीर्ण मानते है। उनके अनुसार काव्य जहाँ सभी भावनाओ की सफल अभिव्यंजन में सक्षम हैं वहाँ संगीत प्रधानतः वीर, करूण, शोक और श्रंगारमयी भावनाओं की अभिव्यक्ति में ही अधिक सफल है। यह धारणा संगीत की अनंत व्यापकता को समझ न पाने के कारण उभरी है, इसलिए अधूरी है। इसमे संदेह नहीं कि विषय वस्तु की दृष्टि से काव्य का विस्तार बहुत है, पर व्यापक प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से काव्य कला भी संगीत कला का ही पानी भरती है। जब दोनों मिल जाते हैं तब कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। संगीत में काव्य का ही गायन होता है। गायन, वादन तथा नर्तन द्वारा संगीत में सभी प्रकार के सफल भावों की सफल अभिव्यंजना होती है। विभिन्न रागों के प्रयोग से रौद्र, अद्भुत अथवा किसी भी रस का वातावरण उत्पन्न किया जा सकता है। भक्ति रस तो सम्पूर्णतः संगीत ही पर आश्रित है।

आधुनिक समय में नाटक के अतिरिक्त फिल्म, दूरदर्शन और तमाम कला संगीत की सहायता से ही पूर्णता प्राप्त कर रहे हैं। पार्श्व संगीत द्वारा हर प्रकार के भावों का प्रकटीकरण किया जा सकता है। कला का क्षेत्र इतना विस्तृत नहीं है। यहाँ तक कि काव्य कला का प्रभाव भी मानव, वह भी सहृदय मानव, तक ही सीमित रहता है पर संगीत कला तो समस्त प्राणियों को प्रभावित करती है और निर्जीव वातावरण को भी सजीव बना देती है। वनस्पतियों को भी संगीत द्वारा विकसित करने और अनेक रोगों का संगीत द्वारा उपचार करने के अनेक प्रयोग किए जा चुके हैं। लोक जीवन का सबसे अधिक व्यापक माना जाता है। इसका कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है जिसमें संगीत की अनिवार्य भूमिका न हो। लोक में जन्म से लेकर मरण तक, अचेतन से चेतन तक, विरह से मिलन तक और व्यक्ति से समूह तक संगीत का अद्भुत प्रसार है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी संगीत के आश्रय में जाते रहे हैं। वास्तव में संगीत कोई सजावट की कला नहीं है, वह तो जीवन की एक पद्धति है और जीवित रहने का सार्थक ढंग है इसलिए व्यापकत्व है।"[२]

---

१ याज्ञवल्क्य स्मृति,

२. उमा मिश्र, काव्य और सगीत का पारस्परिक संबध, (दिल्ली:दिल्ली पुस्तक सदन, १९९०) पृ० ३०.

इस प्रकार संगीत मनुष्य की अखण्ड अभिव्यक्ति का ही दूसरा नाम है। संगीत सार्वभौम है। श्रेष्ठ और भावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए उससे बेहतर और कोई साधन नहीं है। संसार में कौन है जिस पर संगीत का प्रभाव न पड़ता हो। हमारे देश में तो देवी-देवता भी संगीत प्रेमी दिखाई देते है। हमारी कला देवी सरस्वती का नाम ही वीणा-वादिनी है, नारद मुनि अपने वाद्ययंत्र के साथ ही देव लोग का भ्रमण करते रहते हैं और हमारे महान भक्तों का संगीतमय नाद का स्तर ही मोक्ष प्राप्ति का सूचक रहा है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं को सामवेद कहा है:

"वेदानां सामवेदोऽस्मि" मैं वेदों में सामवेद हूँ।[1]

"नारद संहिता" में तो विष्णु को प्रसन्न करने का साधन ही 'संगीत गायन' माना गया है।

"साम गानं दुतं विष्णु प्रसीदत्यभरा छिप

'न तथा यज्ञ दाना धौ सत्यमेतन्नमहामंते।[2]

अर्थात देवताओं के स्वामी विष्णु सामगान द्वारा जितनी शीघ्रता से प्रसन्न होते हैं वैसे यज्ञ दानादि द्वारा भी नहीं होते। इसी संहिता में व्यापक प्रभाव के अंतर्गत पशु-पक्षियों पर होने वाले असर का पता उस श्लोक से चलता है :

"रवगाः, भृंगाः पतिंगाश्च कुरंगोछोड़ दिजन्तव

सर्व एवं प्रगीयन्ते गीत व्याप्ति दिगन्तरे।"[3]

अर्थात् चिड़िया, भंवरा, पतंगा, हिरण आदि प्रत्येक जानवर गाता है इसलिए संगीत सारी दिशाओं में व्याप्त है:

अतः कहा जा सकता है कि किसी भी रचनात्मक अभिव्यक्ति की भांति संगीत की प्रवृत्ति भी हर युग की गतिशील चिन्तनधारा से प्रेरित रहती है।

---

१. श्रीमद भगवद गीता
२. कमला देवी सरस, सगीत रोगो की अमूल्य औषधि, पत्रिका-सगीत, पृ० १३०
३. वही (पत्रिका संगीत) पृ० १३०.

कला के प्रत्येक स्वरूप को संगीत की प्रत्येक शैली को और चिन्तन को हर प्रक्रिया को जीवन की विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। संगीत भी इसका अपवाद नहीं है। आज भले ही हम सीमित दृष्टि के कारण उसके क्षेत्र - विस्तार को समझने हो पर संगीत की सार्वभौम प्रसादशीलता आज भी असंदिग्ध है।

जब मनुष्य और अन्य प्राणियों की अपनी हर धड़कन ही संगीतमयी है, तब संगीत के क्षेत्र-विस्तार की अनंन्तता को समझते के लिए किसी दृष्टांत की आवश्यकता नहीं रह जाती।

द्वितीय अध्याय

साहित्य के संगीतपरक रूप : काव्य का विशेष संदर्भ :

१. साहित्य और संगीत।

२. काव्य और संगीत।

३. संगीत और गीत।

४. निष्कर्ष।

१. साहित्य और संगीत -

साहित्य और संगीत का संबंध बहुत प्राचीन है। संगीत और साहित्य दोनों की अधिष्ठात्री देवी माँ सरस्वती है, जो मर्यादा विज्ञान और मधुरिमा की प्रतीक है। मानव में सदैव यही अभिलाषा उद्वेलित होती रहती है कि जो वह सोचता है अनुभव करता है उसे संगीत साहित्य आदि के माध्यम से साकार रूप दे सके, अर्थात कलात्मक ढंग से दूसरों तक पहुंचा सके। चूंकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है इसलिए वह अपनी भावनाओं के साथ अकेला नहीं रह सकता, लेकिन अपने भावों विचारों को अन्य लोगों के साथ समझा करता है। इसलिए साहित्य और संगीत दोनों मानव जीवन का बिम्ब है।

मनुष्य यह सिद्ध करता है कि जीवन का बाहरी रूप ही सच नहीं है, बल्कि उसकी आन्तरिकता ही उसकी वास्तविकता है। संस्कृत के प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने जब रस अथवा ध्वनि को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया था तब उनका एक प्रयोजन शब्द और अर्थ के सर्जनात्मक अद्वैत में संगीतात्मकता को रेखांकित करना भी था इसलिए भारतीय काव्य-परम्परा में काव्य-सृजन और काव्य-पाठ दोनो ही महत्वपूर्ण रहें हैं। लय प्रधान छंदो-बद्ध रचना को ''श्राव्य-काव्य'' की संज्ञा देकर भारतीय मनीषा ने उसकी श्रव्यता अर्थात कानो से सुनी जाने वाली मधुर संगीतमयता का ललित सम्प्रेषणीयता पर ही विशेष बल दिया था। सच तो यह है कि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में साहित्य एवं संगीत का एक जन्म जात संबंध है, जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यों तो साहित्य के गद्यात्मक रूपों अर्थात उपन्यास, कहानी, रेखाचित्र आदि की भाषा में ही लय अथवा सामंजस्य का विशेष गुण होता है, मगर उसके पद्यात्मक और प्रस्तुति मूलक रूपों, अर्थात्

कविता, गीत, नाटक आदि में संगीत-धर्मिता कहीं अधिक और व्यवहारिक विचार करने की आवश्यकता है। संगीत तथा काव्य में अदभुत समानता है। दोनों में अनुभूति की प्रधानता होती है जो ह्रदय को शीघ्र स्पर्श करती है इसके अतिरिक्त संगीत और काव्य दोनों के आस्वादन का माध्यम, वाणी, ध्वनि अथवा शब्द तत्व है। ये वाक के ही दो रूप है। संगीत और काव्य दोनों ही लय पर अवलम्बित है। काव्य की रचना छंदो में होती है और कवि अपने भावों को काव्य का रूप इन छंदों के आधार पर ही देता है। नाद-विधान, छंद-लय के आधार पर ही टिका हुआ है। संगीत में लय अनिवार्य तत्व है। वास्तव में जिस प्रकार लिखित नाटक अथवा आलेख के बिना मंच पर नाटयाभिनय नहीं होता। उसी प्रकार काव्यात्मक पाठ के बिना मौखिक संगीत की प्रस्तुति भी नहीं की जा सकती। गीत का अनुष्ठान ही संगीत है अर्थात काव्य और संगीत जब मिलते हैं तभी एक पूर्ण कलात्मक अनुभव होता है। संगीत और काव्य दोनों ही के सह्रदय संबंध है, और दोनों ही अपने सूक्ष्म रूप में आनन्दप्रद है। अतः कविता शब्दों में संगीत और संगीत स्वरों में कविता है। दोनों ही गतिशील कलाएं है। दोनों में पहले मानसिक आवृत्ति होता है। फिर बाह्रय क्रिया। इस विलक्षण गतिशीलता के कारण ही संगीत और काव्य दोनों सौन्दर्य और रमणीयता का सृजन एवं संचार करते हैं। उपन्यास अथवा कहानी की भांति ये बंद कमरे की कलाएं नहीं है, बल्कि इनमें एक व्यापक खुलापन है जो प्रकृति के अनेक तत्वों को एक दूसरे के साथ जोड़ता है परन्तु इन दोनों कलाओं का स्वतंत्र स्वरूप भी है। उदाहरण के लिए "संगीत का आधार नाद का स्वरात्मक आरोह अवरोह है ओर काव्य का आधार नाद का स्वर व्यंजनात्मक स्वरूप हो।"

इसी प्रकार संगीत भावनाओं की सूक्ष्म और निराकार अभिव्यक्ति है। काव्य भावनाओं को साकार रूप प्रदान करती है। इनमें एक अन्य अन्तर यह भी है कि संगीत स्वतः स्फूर्त है और विचारों पर उतना आश्रित नहीं है जितना कि काव्य, जिसमें विचार तत्व भी महत्वपूर्ण होता है, संगीत में कोमल भावों की प्रधानता है जबकि काव्य में चिंतन की एक अनिवार्य रेखा खिंची ही रहती है। संगीत में केवल स्वर है, वही माध्यम है, वही अनुभूति का विषय है। संगीत के द्वारा अनुभूति के क्षणों में चित्त की तीन ही अवस्थाएं संभव होती है, दुति, दीप्ति, स्थिति, द्रुति अर्थात चित्त की

१- हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य का मार्ग, (लखनऊः लखनऊ विश्वविद्यालय) पृ०११

पिघलने जैसी अवस्था, दीप्ति अर्थात् प्रारम्भ में काव्य मस्तिष्क से प्रभावित होता है क्योंकि एक-एक अक्षर और शब्द एवं असके अर्थ को रटना पड़ता है।

शब्द ज्ञान नैसर्गिक नहीं है इसलिए एक देश का काव्य दूसरे देश के व्यक्ति के लिए निरर्थक होता है। चित्त की ऊपर की ओर उठने जैसी स्थिति अर्थात बीच की अवस्था। काव्य में शब्द और शब्दार्थ होता है। संगीत में स्वरों के द्वारा भाव सामान्य का बोध तो होता है, परन्तु भाव के कारणों एवं परिस्थितियों का बोध नहीं हो सकता। स्वर किसी विशेष अर्थ या विचार के सूचक नहीं होते है। काव्य के द्वारा निश्चित भावों की अभिव्यक्ति होती है।

इसका कारण यह है कि शब्द किसी विशेष अर्थ या विचार के सूचक होते हैं, परिस्थिति या शब्दों के माध्यम से ही चित्रण हो सकता है तारता - तीव्रत भेद, लय, विराम काकू आदि संगीत के अंगभूत तत्व, भाव और अर्थ की व्यंजना में परमावश्यक उपादान है। सच तो यह है कि संगीत और काव्य दोनो का स्वतंत्र स्वरूप होते हुए भी दोनो परस्पर जुड़े हुए है कि एक को दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। "एडगर एलेन पो के अनुसार - "संगीत जब आनन्दायक विचारों से युक्त होता है तब उसे कविता कहते हैं।"[1] कारलायल न संगीतमय विचारो का ही काव्य कहा है। वायरन के अनुसार, कविता राग के सिवा कुछ नहीं है।

मैथिलीशरण गुप्त ने संगीत और काव्य में स्वाभाविक संबंध को वड़े सुन्दर रूप से प्रकट किया है -

केवल भाव भई कला, ध्वनि मयी है संगीत

भाव और ध्वनिमय उभय, जय कवित्त जयनीति।

---

१. ऊषा गुप्तः औष्ण· (लखनऊ विश्वविद्यालय, १९६०) पृ० ८०.

साहित्य के संगीतपरक रूप : काव्य का विशेष संदर्भ

२. काव्य और संगीत : -

संगीत से परिपूर्ण काव्य की मधुरता युगों से मानव मन को रस से सराबोर करती है। संगीत और काव्य ये दोनो ही मनोहारी कला है, सुख और दुख से मिले जुले जीवन में अनजाने रूप में उपस्थित रहती है। संगीत जीवन का सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अभिव्यक्ति बहुत मार्मिक ढंग से करती है हालांकि काव्य कला, संगीत कला की तरह अपने आप में कला नही है, संगीत और काव्य की परिवेश अलग-अलग है। काव्य में भावनाओं की ज्यादा महत्ता है और संगीत में स्वरों की। काव्य और संगीत के परस्पर मिलन से ही मन के भावों को अभिव्यक्ति और सुन्दरता की अनुभूति और मानव मन को तृप्त करने की क्षमता प्राप्त कर लेती है। कविता और संगीत में इतना ज्यादा पारस्परिक संबंध है कि पाश्चात्य विद्वान भी काव्य के विषय में लिखते हुए संगीत का उल्लेख करना नहीं भूलते, उदाहरण के तौर पर एड़कर एलेन पो का कहना है कि संगीत जब आनंददायक विचारों से युक्त होता है तब उसे कविता कहते हैं।

" संगीत का जब किसी प्रीतिकर कल्पना से संयोग होता है तो वह कविता बन जाता है, और बिना कल्पना किए संगीत मात्र संगीत रह जाता है संगीत रहित कल्पना अपनी स्पष्टता अथवा निश्चितता के कारण गदा का रूप धारण कर लेती है।"[1]

"संगीत और कविता दोनों ही एक दूसरे के बिना अधूरे है दोनो ही एक दूसरे के पूरक है। संगीत और काव्य एक दूसरे पर इतने निर्भर है कि एक के बिना दूसरे के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता।

करकाइल ने भी कविता को संगीत से पूर्ण कहा है। पाश्चात्य विद्वानों ने भाषा सौन्दर्य निरूपण, कल्पना, छन्द आदि के साथ संगीत को भी काव्य के लक्षणों में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

---

१. उमा मिश्र, काव्य और सगीत का पारस्परिक सम्बन्ध (दिल्ली, दिल्ली पुस्तक सदन १६६२) पृ. ३७

भारतीय विद्वानों से स्पष्ट रूप से संगीत को लेकर कविता की परिभाषा नहीं बताई पर नाट्यशास्त्र में दृश्य काव्य के संबंध में कहा है :

मृदुं ललित पदार्थ गूढ शब्दार्थ हीनं

बुधंजन सुख योग्य बुद्धिमन्नृत्तयोग्यम्

पहुरसमृतमार्गसंधि संधान युक्तं

भवति जगति योग्यं नाटक प्रेक्षकाणाम् ।[१]

संगीत और काव्य दोनों का जन्म नाद से ही उत्पन्न माना जाता सहै इसलिए दोनो का पारस्परिक सम्बन्ध अटूट है, कहते हैं कि "नाद से वर्ण, वर्ण से पद और पद से आवाज व्यक्त होती है। सारी पृथ्वी, जड़, चेतन, मनुष्य जानवर हर चीज नाद के वश में है।[३]

मन की अवस्था की अभिव्यक्ति ज्ञान की अभिव्यक्ति सोच विचार की अभिव्यक्ति ये सब बोलने के द्वारा ही होती है।

स्वर और शब्दमयी वाणी नाद के आधीन है। अपने विचारों और अनुभव को वाणी के रूप में और स्वर के रूप में स्वर में अपने भावों की अभिव्यक्ति संगीत कहलाई। काव्य और संगीत दोनो ही गतिशील कला है और दोनों को ही कानों के द्वारा सुनकर आनन्द प्राप्त करते हैं। काव्य और संगीत दोनों ही लय और ध्वनि के आश्रित है। संगीत भावनाओं की बारीकियों की अभिव्यक्ति स्वरों के लगाव से अभिव्यक्ति करता है काव्य उसका साक्षात स्वरूप सामने प्रस्तुत कर देता है। सूर और मीरा और महादेवी वर्मा का अनेक पद अपने मार्मिकता और कलात्मक शब्दों का उचित प्रयोग ही के कारण वे इतने हृदयग्राही है :

सूरदास का ये पद -

निस दिन बरस नैन हमारे
सदा रहत पावस रितु हम पर जब ते

---

१. उमा मिश्र काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध दिल्ली' दिल्ली पुस्तक सदन १९९०) पृ० ३८.

३. शारंगदेव, सगीत रत्नाकर (वालूयम-दो) (सम्पा०), (सुब्रह्मण्यम शास्त्री, मद्रास, वसत प्रेस १९४५) पृ० २२

स्याम सिधारे

मीराबाई की ये पंक्ति -

मैं, गिरधर के रंग राती सैयां

पंचरंग चोला पहिर सखी मैं

झुरमुट खेलन जाती ओह झुरमुट मा

मिलो सावरो खोल मिली तन गाती

महादेवी जी का -

मैं नीर भरी दुख की बदली।

संगीत के स्वरों में कविता है और कविता के शब्दों में संगीत है। काव्य के अभिव्यक्ति का माध्यम शब्द और संगीत के अभिव्यक्ति का माध्यम स्वर है, काव्य का क्षेत्र विस्तृत है परन्तु संगीत का क्षेत्र सीमित उन्हीं सात स्वरों में मन की अभिव्यक्ति करनी है जो बहुत कठिन है। काव्य कला का प्रभाव मानव मन, वह भी मनुष्य, जो पढ़ा लिखा, कविता की समझ रखता है। उसके मन पर प्रभाव डालता है पर संगीत के प्रभाव से पशु-पक्षी, संगीत के उतार-चढ़ाव से अनजान व्यक्ति पर भी इसका पूरा प्रभाव पड़ता है, कुछ बातों में काव्य उच्च्य है कुछ गुणों में संगीत।

संगीत और काव्य का आधार नाद है, कोई भी कविता भावना रहित नहीं हो सकती और जहाँ पर भावों का समावेश है वहाँ पर संगीत न हो यह स्वाभाविक नहीं और संगीत में शब्द न हो तो संगीत अधूरा है। संगीत में लय और स्वर जरूरी है। इसी तरह पद में भी यही तत्व काव्य और गद्य में अन्तर बताते हैं। जैसे निराला का इन पंक्तियों में लय का प्रयोग कलात्मक है। संगीत में जिस तरह लयों और तालों का निर्माण होता है उसी तरह कविता में छन्दों का हो -

जूही की कली

विजन वन वल्लरी पर

पूरे संसार में जो काव्य मिलते हैं उनकी रचना ज्यादातर छन्दों में हुई है और छन्दों का संगीत के शास्त्र से अटूट सम्बन्ध है।

कविता के लिए छन्दों का होना जरूरी नहीं है। परन्तु बिना छन्द के कविता (उलजलूल) निरर्थक लगती है जिस तरह संगीत में शब्द के हिसाब से स्वर, लय भावों की अभिव्यक्ति का उतार-चढ़ाव ठीक न हो तो शब्द का अर्थ ही बदल जाता है।

काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध को समझते समय यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि कविता का प्रभाव गाने में ही है और संगीत भी काव्य के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति के द्वारा लोगों पर प्रभाव डालता है। वैसे देखा जाए तो काव्य की उत्पत्ति संगीत गायन के लिए हुआ है। वैदिक काल में ऋचा गान में काव्य और संगीत का का मेल दिखाई देता है। वैसे तो पता चलता है उत्तर मध्यकाल में कवि सिर्फ अपने आश्रय-दाताओं की शान में ही कविता लिखते थे और फिर इस तरह से काव्य और संगीत एक दूसरे से दूर हो गए थे, पर समय के परिवर्तन के साथ-साथ यह साथ काव्य और संगीत का फिर चला और आज दोनो कला एक दूसरे के साथी है। पूरक है एक दूसरे पर आश्रित है और एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। जिस तरह से ब्रह्म निर्गुण भी है और सगुण भी है उसी तरह से अगर काव्य वाणी का साकार रूप है तो संगीत इसका निराकार रूप है। भाषा में शब्दों का अर्थ के कारण स्थूलता आ जाती है। पर संगीत में बिना शब्दों के अर्थ का आभास होता है।

काव्य और संगीत दोनों का जन्म एक ही नाद बिन्दु के माध्यम से हुआ है और इसलिए काव्य और संगीत का आपस में गहरा सम्बन्ध है। नाद के द्वारा वर्ण, वर्ण से पद और पद से ही वाणी की अभिव्यंजना होती है। वाणी के द्वारा ही समस्त सांसारिक कार्यकलाप होते हैं। इसलिए सम्पूर्ण जगत वाणी के अधीन है।[1]

३. संगीत और गीत -

संगीतात्मकता गीतियों की मौलिक विशेषता है। इसी के कारण संस्औत के आचार्यों ने संगीत शास्त्रों के अन्तर्गत इनको ग्रहण किया। गीत गीतिकाव्य का सबसे अधिक प्रचलित रूप है। इसमें

---

१. सारंगदेव संगीत रत्नाकर, (वाल्यूम २/२), (सम्पा०)

गेयता प्रधान होती है। गीत दो प्रकार के होते हैं - गेय और साहित्यिक गेय - गीतों में वाद्य-यंत्र की संगति होती है और संगीत प्रधान होता है। साहित्यिक गीतो में शाब्दिक संगीत से काम चल जाता है। इसमें प्रथम पंक्ति टेक का काम देती है। इसमे संगीतात्मकता बढ़ जाती है। इनकी छंद व्यवस्था सहज ओर सुपरिचित होती है। हिन्दी साहित्यिक साहित्य में उपलब्ध गीत संगीतमय और साहित्यिक दोनों है। भक्त पदावली में सुन्दर संगीत व्यवस्था है, टेक की विधि भी है। छायावादी कवियों के गीतो में भी संगीतपूर्ण शब्दो की कलात्मकता सजावट पाई जाती है। जयशंकर प्रसाद पंतजी, निराला जी, बच्चन जी, महादेवी जी, समान है। कुछ समीक्षको द्वारा पद शैली की दो परम्पराएं मानी गई हैं पहला संतो की पद परम्परा दूसरी कृष्ण लीला की पद परम्परा ये सभी संगीत-धर्मी है।[1]

३.१ लोकगीत :-

लोक साहित्य लोग वार्ता का प्रधान अंग है। लोक गीत साहित्य तीन वर्ग में विभाजित किए जा सकते हैं,

१. लोक गाथा २. लोक नाट्य २. प्रबंध गीत और मुक्तक गीत। लोक गीत विभिन्न व्यक्तियों के प्रयत्नों के फलस्वरूप विकसित हुए है और होते रहेंगे। इनमें गेयता नृत्य की संगति और टेक की व्यवस्था है, जो यह सिद्ध करती है कि इनका जन्म आदि काल से हो चुका है। गान और नृत्य की संगति इसे समुदाय से संबंधित सिद्ध करती है। लोक गीतों में मनोहर कविता के दर्शन होते हैं। लोकगीतों के छन्द आधुनिक कवियित्रियों की रचनाओं में दिखाई देते हैं। ये गीत साहित्यिक गीतियों को प्रभावित करते हैं। इन गीतों में जीवन से संबंधित सभी विषयों का विषय विवरण पाया जाता है जैसे विवाह के गीत, सोहर गीत, विदाई गीत, वीरता के गीत आदि। इन गीतों में साहित्य रसों की सुन्दर अभिव्यक्ति होती है। संगीत और काव्य स्वतंत्र होते हुए भी आपस में बंधे हुए है। नाट्य में लोक-नृत्य का अनुकरण होता है। नाट्य में लोक-नृत्य का अनुकरण होता है। नाट्य में स्वर ताल पद, नृत्य अभिनय, सब कुछ आ जाता है। नाट्य में गीत, वाद्य, नृत्य तीनों का समावेश होने के कारण यह श्रव्य और दृश्य दोनो है। गति गीति काव्य का प्रचलित रूप है गीत श्रृंगार रस पूर्ण है। साहित्य के सभी अंग संगीतयता के कारण अभिव्यक्ति में सर्वश्रेष्ठ रहे।

---

१. रघुवंश प्रकृति और काव्य सस्कृति खड, पु १२१.

तृतीय अध्याय

संगीतात्मक अध्ययन के आधारभूत तत्व

१. संगीत के प्रकार

१.१ शास्त्रीय संगीत।

१.२ भाव - संगीत।

१.३ भारतीय संगीत की विशेषताएं।

१.४ निष्कर्ष

१. संगीत के प्रकार -

संगीत मानव का चिरसंगी है। यह एक ऐसी भावपूर्ण और प्रभावशाली भाषा है जिसका प्रयोग अनादि से अनन्त तक चलता रहेगा। मोटे तौर पर विद्वानों ने संगीत के दो प्रकार माने हैं शास्त्रीय संगीत और सुगम संगीत या भाव संगीत।

१.१ शास्त्रीय संगीत -

शास्त्री संगीत उसे कहते है जो शास्त्र के नियमों का पालन करते हुए गाया बजाया जाय। इसके आधारभूत तत्व है - स्वर, लय, राग और ताल।

इस संगीत का अपना एक विशेष शास्त्र है जो राग-प्रधान है। राग के कुछ निश्चित स्वर होते है जिनका अपना स्थान निश्चित होता है। इसके अलावा स्वरों का चयन, वादी-सम्वादी, उतरांग-पूर्वांग इत्यादि सभी कुछ परम्परागत है शास्त्रीय संगीत का नियमित शास्त्र है उसके अपने कुछ नियम है जिनका पालन आवश्यक है। उस संगीत को भी दो प्रकारों से समझा जाता है।

१. सैद्धान्तिक शास्त्रीय संगीत

२. व्यवहारिक शास्त्रीय संगीत

१. *सैद्धान्तिक शास्त्रीय संगीत -*

सैद्धान्तिक शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत शास्त्रीय संगीत का पूरा सिद्धान्त शास्त्र आ जाता है जैसे नाद, श्रुति स्वर, सप्तक, थाट, राग, वर्ण, अलंकार, आलाप, तान आदि संगीत के तीनों कालों का इतिहास (प्राचीन, मध्य आधुनिक) वाद्यों का विस्तृत वर्णन, तालों का वर्णन आदि शास्त्रीय संगीत का यह अंग लिखित है और अनेक नियमों से बंधा हुआ होने के कारण अत्यधिक विस्तृत है।

२. *व्यवहारिक शास्त्रीय संगीत -*

व्यवहारिक शास्त्री संगीत भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार शास्त्रीय संगीत का सैद्धान्तिक अंग विकसित है उसी प्रकार इसका व्यवहारिक अंग भी प्रबल है। कला का मुख्य उद्देश्य अभिव्यक्ति हैं और खासकर संगीत तो एक ऐसी कला है। जिसका प्रत्यक्ष में ही व्यवहार होता है। व्यवहारिक अंग के अन्तर्गत गायन के प्रकार, वादन और नृत्य के प्रकार, गायकी घराने, आलापका ढंग, तानो का ढंग, गत, तोड़े, जमजमा, सरगम, आदि आता है। भारतीय रागो और गायन-वादन का क्षेत्र बहुत विस्तृत है क्योंकि विभिन्न घरानों में एक राग को विभिन्न ढंग से गाया बजाया जाता है। संगीत का यह पक्ष बहुत प्रबल है।

१.२ भाव-संगीत -

इसको सुगम संगीत भी कहते हैं। इस संगीत में शास्त्रीय संगीत की भांति न तो अधिक बंधन होता है न ही इसका कोई नियमित शास्त्र होता है। इसका मुख्य लक्ष्य रंजकता पैदा करना होता है। इस संगीत में स्वर लय और काव्य तीनों का ही आनन्द प्राप्त होता है। कुछ गीत ऐसे है जिनमें लय का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है - जैसे - भजन, गीत गजल आदि। फिल्मी गीत के द्वारा साधारण व्यक्ति भी आनंदित होता है। ऐसे गीतों में रागों की शुद्धता पर ध्यान नहीं दिया जाता। रंजकता बढ़ाने के लिए कभी-कभी भाव गीतों में शास्त्रीय संगीत का भी सहारा ले लिया जाता है। भाव संगीत सरल और अल्पायु होता है। किसी भी कविता को अपनी पसन्द से स्वर रचना करके गाया जा सकता है। भाव संगीत में काव्य की रचना भावपूर्ण और मधुर संगीत में बद्ध होना चाहिए। शब्द का उच्चारण स्पष्ट होना

चाहिए। आज का मानव अपने कार्य मे इतना व्यस्त है कि उसको खास संगीत सुनने का ज्यादा समय नहीं है। वह कम समय में संगीत का आनन्द प्राप्त करना चाहता है। इस प्रकार भाव संगीत का जन्म हुआ, भाव संगीत का सुख क्षणिक है, जबकि शास्त्रीय संगीत का प्रभाव स्थाई होता है। इसलिए शास्त्रीय संगीत का प्रभाव स्थाई होता है। इसलिए शास्त्री संगीत को 'बंह्मानन्द सहोदर' कहा जाता है।

४. भारतीय संगीत की विशेषताएं -

ललित कलाओं में संगीत का स्थान सर्वोच्च है। वात्सायन के "कामसूत्र" में चौसठ कलाओं का वर्णन मिलता है परन्तु उनमें से संगीत को सर्वोच्च्व स्थान प्राप्त है। संगीत कला में सिर्फ गायन ही नहीं आता, उसमें वादन और नृत्य का भी सम्मिश्रण है। संगीत कला प्रारम्भ से ही सामाजिक कला रही है आर इसीलिए समाज में कला में आए परिवर्तन का संगीत कला पर भी प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार जब हम संगीत के समकालीन रूप को देखते हैं तो उसमें कई परिवर्तन दिखाई देते हैं जो कि संगीत का बाह्मय रूप या आन्तरिक रूप से काव्य और नाट्य का संबंध रहा है। इसलिए यह सामाजिक कला भी है। और इसी कारण से संगीत पर कई दिशाओं का प्रभाव है। परन्तु भारतीय संगीरत का मूल रूप, नाद की आध्यात्मिक धारणा से जुड़ा है इसलिए अनेक उतार चढ़ाव के कारण भी भारतीय संगीत के मूल रूप में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

हमारी संस्कृति की एक विशेषता है कि मानव जीवन के आध्यात्मिक पक्ष पर यथा उचित ध्यान देते हुए भी उपाधि-भौतिक की उपेक्षा नही की गई। जहाँ पर नाद के रूप में संगीत को ईश्वर प्राप्ति का साधन माना गया है। वही पर श्रृंगार रस को भी कम महत्व नहीं दिया गया है। "कला कला के लिए है" इस दृष्टिकोण के स्थान में कर्नाटक संगीत में तो गायन संगीत के लिए एक तरह से आवश्यक हो गया है। हमारे यहाँ कला का अर्थ रहा है। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं को अभिव्यक्ति कई माध्यमों से की जाती है। मानव कंठ या किसी चीज द्वारा उत्पन्न मधुर स्वर नाद कहलाता है तथा समय नियमित गति को लय कहते हैं। और दूसरी कलाओं की अपेक्षा संगीत कला का प्रभाव अधिक व्यापक है।

देशी और मार्गी संगीत दो प्रमुख प्रकार भारतीय संगीत के उच्चकोटि का और शास्त्र सम्मत संगीत मार्गी संगीत है। मार्गी संगीत का संबंध प्राचीन शाम गायन से है जिसकी परम्परा कुछ भागों में है। देशी संगीत विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित है। लोकगीत और गीत प्रकार को कहते हैं। साम गान के बाद छंदो गान, जाति गान प्रचार में आया। जाति गायन के आधार पर राग और उनमें गाये जाने वाले ध्रुवपद, धमार, तराना, चतुरंग आदि गीति प्रकारों का विकास हुआ। इन गीत प्रकारों मे प्रयुक्त होने वाले ताल भी प्रचार में आए। ताल और राग में दो ऐसे तत्व है जो भारतीय संगीत को छोड़कर अन्य किसी पद्धति में नहीं आए। विशिष्ट भावनाओं को प्रकट करने के लिए मधुर स्वर रचनाएँ ही राग है। चित्रकला में रंगो ओर रेखाओं के माध्यम से मन की भाववनाओं की अभिव्यक्ति हाती है। पर संगीत नाद और लय के माध्यम से अभिव्यक्ति होती है। हमार संगीत में ब्रहतुओं के अनुकूल राग की रचना हुई है। कविता में जो स्थान छंद का है वही स्थान ताल का संगीत में है।

हमारे संगीत की एक प्रमुख विशेषता है, मर्यादा और स्वतंत्रता। जहा कलाकार को राग का बन्धन है, वहीं पर उन्हीं स्वरों मे कई प्रकार के आलाप, तान, बोल तान आदि राग को सुन्दर बनाने की अनुमति भी है। इसी तरह ताल के भी बंधन में रहकर उन्हीं मात्राओं में विभिन्न लयकारियों से ताल को सजाता है।

एक कुशल कलाकार एक घंटा तक गा सकता है और अपने सन्मुख बैठी जनता को कुशलता से प्रभावित कर सकता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संगीत कला उच्च कोटि की उत्तम कला है। इस कला की उपासना स्वयं ईश्वर ने की थी। प्राचीन काल से यह बात आज तक यह देखने में आता है कि संगीत कला का प्रचार सदा से महलों से लेकर आम लोगों तक रहा है। संगीत मानव की आत्मा को पृथ्वी से ऊपर उठा देता है वह उसे परम आनन्द देता है। जिससे मानव मन अहंकार आदि को भूल कर उसी में खो जाता है। अपने आपको डुबो देता है। संगीत धर्म निर्पेक्षता का सबसे सरल साधन है। संगीत मानव के लिए एक ईश्वरीय देन है। इसके द्वारा मानसिक और शारीरिक दोनों तरह के शारीरिक सुख की प्राप्ति होती है। मुंशी प्रेमचन्द्र के शब्दों में "मनोव्यथा जब असह्य और अपार हो जाती है तब उसे कोई त्राण नहीं मिलता, जब वह रूदन और क्रन्दन की गोद में भी आश्रय नहीं पाता तो वह संगीत के चरणों में आ गिरता है। वास्तव में मानव करूणा को व्यक्त करने का सबसे अच्छा माध्यम है संगीत अन्य ललित कलाओं में संगीत कला का स्थान

सबसे ऊँचा है। नियम से नृत्य करने से शरीर स्वस्थ रहता है एवं वादन मस्तिष्क के विकास के लिए आवश्यक है। संगीत रूप आध्यात्मिक कला है। संगीत का प्रभाव जन्म से ही दिखाई देता है। आधुनिक मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक मनुष्य में संगीत सीखने सुनने की शक्ति ईश्वरीय है। संगीत केवल शुभ कार्य में नही बल्कि दुःख मे भी प्रयोग होता है। संगीत असीमित है इसकी कोई सीमा नहीं है। हमारे प्राचीन ऋषि मुनि का कहना है कि पथ-प्रदर्शक के रूप में संगीत कला सर्वश्रेष्ठ है। संगीत में कुछ ऐसे तत्व है जिनके द्वारा रोगों की चिकित्सा हो सकती है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति गद्य काव्यों में दर्शनीय है। प्राचीन समय मे संगीत समाज का सांस्औतिक दर्पण था। इसलिए यह काम गीतों के माध्यम से किया जाता ताकि जन साधारण को इससे लाभ हो सके। संगीत केवल समाज की मनोरंजकता का विषय ही नहीं अपितु एक ऐसी भावना का निर्माण करता है जो सम्पूर्ण समाज में प्रेम और मित्रता की नदी बहाती है। संगीत के विषय में डॉ० बर्नर ने लिखा है कि गाने से शरीर में उथल-पुथल होती है जिससे रक्त संचार में वृद्धि होती है। जिससे रक्त संचार में वृद्धि होती है। पाचन-क्रिया में सुधार होता है। भारतीय संगीत में सातों स्वरों का आविष्कार विश्व का महान आश्चर्य है और उन स्वरों से निर्मित राग रागिनियां और कहीं नहीं मिलती। संगीत का अलौकिक पक्ष लौकिक रूप ग्रहण करता गया। इसमे निर्गुण निराकार की सरस उपासना के स्थान पर सगुण साकार क्षण भंगुर मानव शरीर के सौन्दर्य की उपासना से लगाव होता गया इसलिए लौकिक उपभोग उस अलौकिक भावना का उद्दीपन उद्देश्य हो गया तथा पतन की तरफ अग्रसर हो गया भारतीय सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में गति की चमत्कारी शक्ति के प्रभाव का ज्ञान हमारे दूरदर्शी मनीषियों को हुआ जिससे उन्होंने इसके महत्व को जीवन के हर क्षेत्र में प्रतिपादित किया -

"संगीत साहित्य कला विहीन

साक्षात् पशु पुच्छ विषाय हीन।"

चतुर्थ अध्याय

मध्ययुगीन हिन्दी भक्ति-काव्य और संगीत

१. पूर्व-पीठिका।

२. भक्ति-काव्य।

२.१ काव्य का विशिष्ट युग।

२.१.१ निर्गुणभक्ति धाराः ज्ञानमार्गी शाखा, प्रेममार्गी शाखा।

२.१.२ सगुण भक्ति धाराः कृष्ण भक्ति शाखा।

२.१.३ कृष्ण-भक्ति के प्रमुख सम्प्रदाय।

२.१.४ राम-भक्ति धारा।

२.१.५ सम्प्रदाय-मुक्त कवि और मीराबाई।

२.२ संगीत का विशिष्ट युग।

३. भक्त-कवियों की संगीत-निष्ठा।

४. भक्ति काव्य में मानवीय भक्ति-भाव और उसकी संगीतात्मक प्रवृत्तियाँ।

१. पूर्व पीठिका -

अभी तक यह स्पष्ट किया जा चुका है कि साहित्य और संगीत विशेष रूप से काव्य और संगीत का एक विशिष्ट अनिवार्य एवं जन्मजात सम्बन्ध है। साहित्य के कुछ रूप तो है ही संगीतधर्मी। गीत, ग़ज़ल, मुक्तक आदि की संरचना तथा प्रस्तुति दोनों में संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए जिन गीतकारों को संगीत का अच्छा ज्ञान होता है, उनकी गीत रचना उत्तम होती है और जिन संगीतज्ञों को काव्य की समझ एवं पहचान होती है, उनके गायन और वादन में कहीं अधिक पूर्णता एवं कलात्मकता आ जाती है। संगीत और काव्य की यह एकता आधारभूत विशिष्टता रही है। इस काल का प्रबंधात्मक काव्य हो या मुक्तक पद-काव्य, अर्थात् तुलसी का "रामचरितमानस" महाकाव्य हो या मीरा की स्वतंत्र पद रचना, दोनों की रचना में संगीत की

अद्‌भुत जानकारी के असंख्य प्रमाण मिलते हैं। कारण यह है कि मध्ययुगीन भक्ति के रचयिताओं का अपना व्यक्तित्व था, जिसमें आत्म निवेदन की तीखी ललक थी।

इनके लेखन का एक बहुत बड़ा आयाम अपने इष्टदेव की महिमा के गान और उसके माध्यम से इष्टमय हो जाने की तीव्र आकांक्षा ही का दूसरा नाम था। इस आकांक्षा की सुन्दरतम एवं सार्थक अभिव्यक्ति छन्द और लय में ही हो सकती थी। क्योंकि वे जो कुछ लिखते थे वह आम जनता तक पहुँचता था और आम जनता उसे गायन के माध्यम से अपनाकर या सुन-सुनाकर ही जीवन में विशेष स्थान देती थी। दूसरा कारण यह था कि अधिकांश सगुण भक्ति काव्य मन्दिरों में भी गाया जाता था, जहां के भक्त गायकों को रागों और सुरों का गहरा ज्ञान होता था, जिससे वे तन्मयता की स्थिति में गा सकते थे और अपने इष्ट से तादात्म्य स्थापित करते थे। अतः यह समझना कठिन नहीं है कि संगीत काव्य की इस अद्‌भुत एकता की भूमि पर ही भक्तिकालीन प्रबंध काव्य संगीतधर्मी दोहा चौपाई, सोरठा, सवैया आदि छन्दो में रचा गया जबकि मुक्तक पद काव्य तो राग-रागिनियों के नामों तक को शीर्षक के रूप में अपनाता रहा। यदि कहा जाए कि भक्ति काव्य के एक विपुल अंश की अशेषता अथवा अमरता का श्रेय उसकी इसी संगीतात्मकता को जाता है, जो अब भी लोक मानस और लोकाचार में भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए उसी प्रकार अपनायी जाती है जो तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह समय का सबसे बड़ा सच है कि आज ही हम भक्ति काव्य की धमनियों में संगीत के रक्त संचार को अनुभव करते हैं।

२. भक्ति काल : काव्य और संगीत का विशिष्ट युग :-

२.१: काव्य का विशिष्ट युग :-

वैसे तो भक्ति का इतिहास मध्य काल से ही शुरू नहीं हुआ। "नारदीय पंचरात्र" और "शांडिल्य-सूत्र" के द्वारा निर्धारित आध्यात्म का यह मार्ग अपनी प्राचीनता का दावा पुष्ट आधारों पर उस समय से करता आ रहा है, जब ईसाई और इस्लाम धर्म अपनी शैशवावस्था में शायद पालनों में ही क्रीड़ा कर रहे थे।[1]

हिन्दी साहित्य का भक्ति काव्य मध्य काल का पूर्व भाग है। उसके काल का समय (१३७५ - १७०० संवत) से माना जाता है। भक्ति काल में मुख्य रूप से दो धाराएं प्रवाहित हुईं। निर्गुण काव्य

---

[1]. उमा मिश्र, हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में से गीत (लखनऊ : लखनऊ विश्वविद्यालय, १९६०) पृ० १.

धारा और सगुण काव्य धारा। निर्गुण धारा के अन्तर्गत परमात्मा के निराकार रूप की भक्ति, प्रेम और ज्ञान के द्वारा ईश्वर प्राप्ति की बात कही गई है और ईश्वर के सगुण और साकार रूप की उपासना, राम और कृष्ण रूप में विष्णु के अवतारी रूप की कल्पना करके सख्य और सेवक भाव से प्रभु की भक्ति का मार्ग बताया। आगे चल कर निर्गुण भक्ति धारा और सगुण भक्ति धारा के दो दो शाखाएं हो गईं। निर्गुण भक्ति धारा को ज्ञान मार्गी भक्ति शाखा और प्रेम मार्गी भक्ति शाखा। सगुण भक्ति धारा की कृष्ण भक्ति धारा और राम भक्ति शाखा।
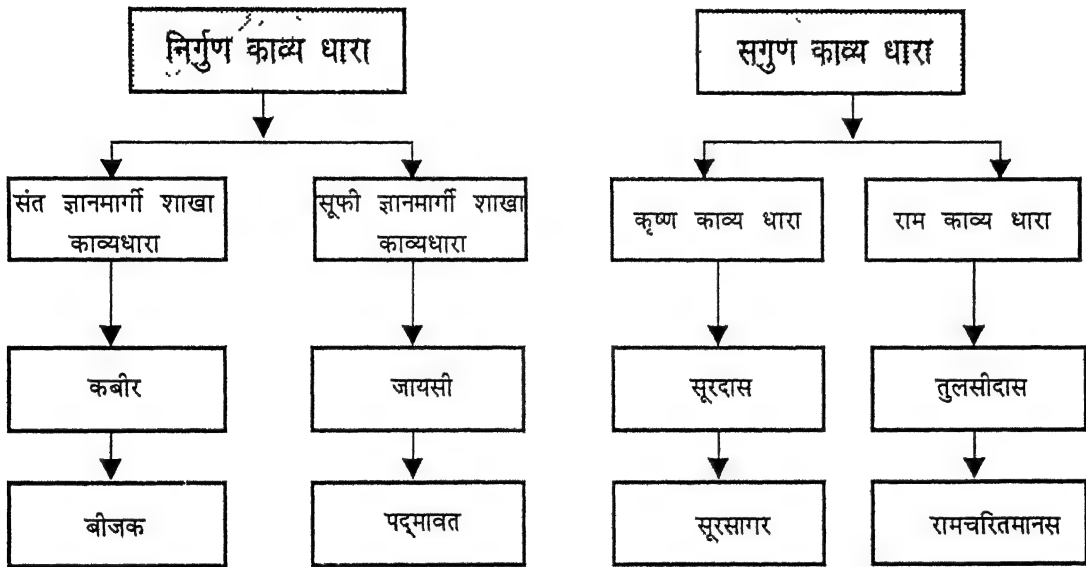
२.१.१ : निर्गुण भक्ति धारा : ज्ञानमार्गी शाखा :

इस भक्ति धारा के अन्तर्गत कबीर, गुरु नानक आदि महान कवि हुए हैं। कबीर इस काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। कबीर दास उच्च कोटि के भक्त कवि माने गए हैं। कबीर आदि कवियों ने हिन्दू मुस्लिम जनता में एकता और परस्परता बनाए रखने का प्रयत्न किया। प्रेममार्गी सूफी कवियों ने हिन्दू मुस्लिम दोनों में सांस्कृतिक एकता की स्तुत्य प्रस्तुत किया। मुसलमान संत कवि ईश्वर को एक ही रूप में मानते हैं और -

"एकै पवन एक ही पानी एक जोति संसारा।

एक चाक तै घड़े सब भांडे एक ही सिरजनहारा।"

संत कवियों ने निर्गुणवाद के आधार पर ही राम और रहीम कृष्ण और करीम की पारस्परिक बद्धता का प्रचार किया। संत कवियों ने निर्गुण भक्ति का उपदेश दिया। प्रेममार्गी शाखा निर्गुण काव्य की दूसरी शाखा है। इसके प्रतिनिधि कवि जायसी हैं। उन्होंने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम को वरण किया।

प्रेममार्गी शाखा के सूफी संत ईश्वर को एक ही मानते हैं। वे आत्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं मानते। सूफी प्रेम काव्यों का यह स्वर्ण युग माना जाता है। श्री परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में "इस काल के प्रथम सौ वर्षो से हमें वस्तुतः पूर्व कालीन बातों की ही आवृत्ति उन पर आश्रित काव्य सौन्दर्य एवं कला चातुर्य की विविध अभिव्यक्तियों के साथ दिखाई पड़ती है। फिर उसके दूसरे सौ वर्षों में हमें इनके पात्रों के क्षेत्रों के अन्तर्गत कुछ अधिक व्यापकता आ गई लक्षित होती है और इनके पात्रों के स्वाभावादि में भी आ गए कुछ न कुछ परिवर्तनों के दर्शन होने लगते हैं, तथा इसी प्रकार कभी इनमें फारसी साहित्य से उधार ली गई कतिपय बातों का अन्तर्भाव भी प्रकट होने लग जाता है। इसके अंतिम दो सौ वर्षों में तो हमें इस बात के भी प्रमाण अच्छी मात्रा में मिलते हैं कि सूफियों की इस रचना पद्धति का मूल उद्देश्य वस्तुतः साम्प्रदायिक रहा होगा। जायसी का पद्मावत सूफी काव्य परम्परा में एक अद्वितीय रत्न है। सूफी संतों ने आत्मा को पति और परमात्मा को पत्नी माना है। "आइने अकबरी" में सूफियों के १४ सम्प्रदायों का उल्लेख है। **१. चिश्ती सम्प्रदाय २. सुहरावर्दी सम्प्रदाय ३. कादरी सम्प्रदाय ४. नकशवेदी सम्प्रदाय।**[1]

२.१.२ : सगुण भक्ति धारा : कृष्ण भक्ति शाखा :-

यह धारा उन भक्तों के अन्तःस्थल से प्रवाहित हुई जो अपने आराध्य की पूजा करते हैं और उन्हीं के ध्यान में तल्लीन रहते हैं। ये जनमानस का कल्याण ईश्वर भजन से उनका कोई संबंध नहीं है। कृष्ण भक्त कुंभनदास ने सम्राट अकबर के राज दरबार के निमंत्रण को ठुकराते हुए कहा था "संतन को कहा सीकरी सो काम"। सगुण कवि मुसलमानों से विरोध नहीं रखते थे। परन्तु उनसे

सम्पर्क रखने की इच्छा भी नहीं रखते थे। मुसलमान शासक हिन्दुओं को मुलसमान बनाए जा रहे थे, इसलिए सगुण भक्त कवियों ने अपने काव्य के द्वारा लोगों में अपने हिन्दू धर्म की रक्षा करने का कार्य किया। रामचरितमानस ग्रन्थ तुलसीदास द्वारा रचित जिसने हिन्दुओं को एक किया बल्कि उनकी रक्षा भी किया। आज भी हर हिन्दू घर में रामचरितमानस का पाठ किया जाता है। सगुण भक्ति धारा दो शाखाओं में प्रवाहित हुई। कृष्ण भक्ति धारा दो शाखाओं में प्रवाहित हुई। कृष्ण भक्ति शाखा के भक्तों ने ब्रह्म के मत और आनन्द स्वरूप का साक्षात्कार कृष्ण के रूप में इस 'बाह्य जगत' के क्षेत्र में किया। अपने भक्ति और प्रेम के लिए उन्होने कृष्ण के मधुर रूप और कृष्ण की लीलाओं को स्वीकार किया। कृष्ण भक्ति के इस क्षेत्र के साधक की साध्य में एकता थी। सभी ने भगवान कृष्ण को अपने आराध्य देव के रूप में लिया है, परन्तु उस सेवाविधि और कृष्ण के अनेक रूपों संबंधी मान्यताओं में अन्तर होने के कारण कई मुख्य सम्प्रदायो का आर्विभाव हुआ, बल्लभ सम्प्रदाय, गौड़ीय सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय। बल्लभ सम्प्रदाय विक्रम की १६वीं शताब्दी में विष्णु स्वामी सम्प्रदाय की उच्छिन्न गद्दी पर श्री वल्लभाचार्य जी बैठे और उन्होंने श्री विष्णु स्वामी के सिद्धान्तों से प्रेरणा लेकर शुद्धाद्वैत सिद्धान्त तथा भगवद् अनुग्रह अथवा पुष्टि मार्ग द्वारा प्राप्त प्रेम भक्ति के मार्ग की स्थापना की।[2]

बल्लभाचार्य जी ने प्रेम भक्ति को अधिक महत्व दिया है। उनके भक्ति में नवमा भक्ति, कीर्तन, दास्य, "सख्य आदि का प्रतिपादन किया है। इस सम्प्रदाय में कृष्ण भक्ति को सर्वोपरि माना है।" बल्लभ सम्प्रदाय में अष्टछाप के कवि विशेष प्रसिद्ध हैं। अष्टछाप के अन्तर्गत सूरदास, परमानंद दास, कुभन दास, कृष्ण दास, अधिकारी नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी तथा हित स्वामी थे। आठ कवि आते हैं।[3]

सूरदास : हिन्दी साहित्य के भक्ति काल जैसे सगुण धारा के कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास जी हैं। इनका जन्म सन् १५३५ और स्वर्गवास लगभग सन् १६३८ या १६३६ है। सूरदास री वल्लभाचार्य के शिष्य थे। श्री बल्लभाचार्य नंद जी के मंदिर में कीर्तन सेवा का कार्य करते थे। सूरदास जी अपने अंतिम समय में भी "खंजन रूप नयन रूप रसभरी" गा रहे थे। इनकी

---

१. शिव कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य · युग प्रवृत्तियां (दिल्ली : अशोक प्रकाशन १६७७) पृ० १८६
२. दीनदयाल गुप्त, अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय (प्रयागः साहित्य सम्मेलन से २००४ पृ० ३)
३. ऊषा गुप्त, हिन्दी के भक्ति कालीन साहित्य में संगीत, (लखनऊ विश्विविद्यालय, सन् १६६०) पृ० ३

प्रमुख रचनाएं सूरसागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी हैं। सूर के काव्य में निर्देशित रस, अलंकार, रीतिगुण ध्वनि आदि चमत्कृतियों से जहां उनका सूक्ष्म वैज्ञानिक अध्ययन परिलक्षित होता है, वहां अपनी भावनात्मक रसानुभूति से अपने अन्तश्चेतन द्वारा वे एक ऐसे दिव्य आलोक का दर्शन कराते हैं जिसके विद्युतिकरण उनकी लेखनी के नोक से प्रस्फुटित होकर जन जन के मोहतम का निसरन कर देती हैं।"[1]

सूरदास के श्रृंगार रस में वियोग रस की प्रचुरता है-

मिलि बिछुरन की वेदन न्यारी

जेहि लगै सोई ये जाने, विरह पीर अति भारी।

सूरदास जी के आराध्य श्रीकृष्ण हैं। वे उनके सखा हैं, स्वामी हैं, सहचर हैं। सूर काव्य के मूल में साम्प्रदायिक सिद्धानत भावना है। सूरदास स्वयं को भावोन्मादिनी नायिका के भावावेश से ओत-प्रोत पाते हैं। सूरदास जी ने संगीत कला के माध्यम से अपने आराध्य तक पहुंचने का प्रयत्न किया। उन्होंने कीर्तन के द्वारा कृष्ण लीलाओ का वर्णन किया है। शास्त्रीय संगीत मे प्रवीण होने के कारण सही वातावरण की प्राप्ति के लिए वे रागों की प्रकृति अनुकूल भावों की रचना करते थे और गाते थे। सूरदास जी ने सूर सागर और सूरसारावली में अनेक राग-रागनियों का वर्णन किया। उनके नाम इस तरह हैं। आसावरी, अप्रना, झिंझोटी, बिहाग, धनश्री, नायकी, पूर्वी, सोरठ, केदारो, बिलाबल आदि। सूरदास जी ने अपने काव्य में राग में राग-रागिनी, बाद्य, नृत्य एवं गीत के पारिभाषिक शब्द आदि का विस्तृत वर्णन किया है।

"सारंग गौड़ी नट नारायण गौरी सुरहि सुनावत

सारंग नट पूरबी मिले रात्र अनूपम गाऊँ।"[2]

संगीत के पारिभाषिक काव्य :

अतीत अनागत संगीत विच ताल मिलाई

सूर ताल रस ध्याउ पुनि मृदंग बजाई।

तीन ग्राम इकईस मूर्च्छना कोटि उन्च्वास तान

---

[1]. गोकुल तैलग, बनवारी लाल भारतेन्दु, सगीत अष्टछाप (हाथरस : सगीत कार्यालय १९६२) पृ० २७.
[2]. राकेश बाला सक्सेना, मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदाय में संगीत, (दिल्ली : राधा पब्लिकेशन, १९९०, पृ० ९२)

सप्त सुरनि के भेद बतावति नागरि रूप अनूप
कोक कला व्युत्पन्न परस्पर, देखत लज्जित काम।

२.१.३ : कृष्ण भक्ति के प्रमुख सम्प्रदाय :

भक्ति कालीन सगुण भक्ति काव्य की कृष्ण भक्ति के संगीतात्मक काव्य के विकास में तत्कालीन सम्प्रदायों का भी विशेष हाथ रहा है जिनका संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार है।

क. गौड़ीय सम्प्रदाय :

गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रचारक चैतन्य महाप्रभु थे। इस सम्प्रदाय में राधाकृष्ण की उपासना मान्य थी। चैतन्य सम्प्रदाय में भक्तों के दीनता नम्रता सहनशीलता आदि गुणों का होना आवश्यक है। चैतन्य महाप्रभु के अनुसार भक्त को तृण से भी अधिक तुच्छ और वृक्ष से भी अधिक सहनशील होना चाहिए। भक्ति में जाति-पाति और ऊँच-नीच का भेद नहीं होता। प्रत्येक धर्म में संकीर्तन को उपासना का सशक्त माध्यम माना है। चैतन्य को श्रीकृष्ण का नाम कीर्तन और लीला गान अत्यन्त प्रिय था। गौड़ीय सम्प्रदाय के अन्तर्गत गदाधर भट्ट सूरदास मदन मोहन आते हैं।

गदाधर भट्ट : शिव सिंह सरोज में गदाधर भट्ट का समय सन् १५८० वि० दिया हुआ है।[1]

शुक्ल जी : इनका रचनाकाल सन् १५८० वि० से सन् १६०० वि० के पीछे तक माना है।

शुक्ल जी ने गदाधर भट्ट की काव्य रचना का विवरण देते हुए लिखा है -

"गोस्वामी तुलसीदास जी के समान उन्होंने संसकृत पदों के अतिरिक्त संस्कृत गर्भित भाषा कविता भी की है।"

भट्टी जी भजन में प्रवीण थे और मधुर वाणी से कथा करते थे। ऐसा भी कहा जाता है कि जीव-गुसाई जी के सम्पर्क में आने से पूर्व ही गदाधर भट्ट जी 'पदों' का गायन किया करते थे जिससे उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक हो गई थी। साधारण तथा इनकी संगीत संबंधी घटना का कहीं कोई विवरण नहीं मिलता। इनका जन्म काल सन् १५८० के लगभग माना जाता है और सन् १६१० के लगभग वे वृन्दावन में आ गए थे और वहां पर गोस्वामी के सत्संग में रहने लगे। उन्होंने रघुनाथ

---

[1]. ऊषा गुप्त हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत (लखनऊ : लखनऊ विश्वविद्यालय) १९६२ पृ० ६

भट्ट गोस्वामी से चैतन्य मत की दीक्षा ली और राधाकृष्ण की माधूर्य भक्ति तथा पद रचना द्वारा अपने जीवन को सार्थक करने लगे।[1]

भट्ट जी का अपना कोई ग्रन्थ अलग नहीं मिलता। केवल विभिन्न राग रागिनियों में उनके रचे हुए कुछ शृंगार भक्ति के स्फुट पद उपलब्ध हैं। जिससे श्री राधाकृष्ण की माधुर्यमयी लीलाओं का रसपूर्ण गायन किया है। उनके पदों का एक छोटा संग्रह "गदाधर भट्ट की वाणी" नाम से प्रकाशित हुआ मिलता है तथा "कीर्तन संग्रहों" में भी उनके कुछ पद मिलते हैं। इनकी एक हस्तलिखित प्रति बालकृष्ण दास ही (बनारस) के पास है जिसमें लगभग ५५ पद विभिन्न रागों में बद्ध मिलते हैं।

भट्ट जी के पदों में रागों का नाम इस प्रकार है- विभास, देवगंधार, भैरव, श्री, रामकली, मल्हार, अड़ाना, काफी, हमीर, बसंत आदि। इस प्रकार भट्ट जी के रचनाओं से उनके संगीतज्ञ होने का पता चलता है। गौड़ीय सम्प्रदाय में भी पदावली कीर्तन का विशेष स्थान है। पदावली कीर्तन ध्रुपद अंग से प्रभावित था। पदावली में कई तालों का प्रयोग हुआ था। श्री चैतन्य, षडगोस्वामी तथा सम्प्रदाय संबद्ध अन्य संगीतज्ञों की असंख्य वाणियों का अवलोकन करने से ये भी सिद्ध होता है कि कीर्तन में संगीत साहित्य तथा भक्ति का मिश्रण पूर्ण रूप से था जो गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्ति संगीत के आध्यात्मिक पक्ष, शास्त्रपक्ष, कलापक्ष की परिपक्व अवस्था को दर्शाता है।

ख. राधावल्लभीय सम्प्रदाय :

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री हित हरिवंश जी हैं। इस सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण की उपासना की गई है। यद्यपि इस सम्प्रदाय में राधाकृष्ण की युगल उपासना में परमानन्द की प्राप्ति मानी है। परन्तु कृष्ण की अपेक्षा राधा की पूजा को अधिक महत्व दिया है। इस सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण के अन्तरंग रति क्रीड़ा को देखना परम काम्य माना गया। राधा बल्लभी सम्प्रदाय वालों का विश्वास है कि "जिन लोगों की मनोवृत्ति लौकिक रति में अत्यधिक लिप्त है और जिनका मन दास्य भाव में नहीं रहता है वे वासना कृत्यों को राधा कृष्ण की श्रृंगार लीलाओं में देखें। श्रृंगार के वियोग पक्ष का पूर्णतयः अभाव है।[2]

---

[1]. राकेश बाला सक्सेना, मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदायों में संगीत (नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन, १९९०) पृ० २४९-२५०
[2]. ऊषा गुप्त, हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत, (लखनऊ : लखनऊ विश्वविद्यालय, १९९२) पृ० ८०.

हित हरिवंश जी : हित हरिवंश जी का जन्म सं० १५८५ वि०. में हुआ था। शिव सिंह जी ने हिन्दी में हित हरिवंश लिखित ''हित चौरासी धाम'' ग्रन्थ का उल्लेख किया है।[1]

इस ग्रन्थ में ८४ पद संकलित हैं। इसलिए इसका नाम ''हित चतुरासी'' रखा गया होगा। इसमें १४ रागों का उल्लेख मिलता है। इस वाणी के सभी पद गेय हैं। इसलिए इनकों रागों में बद्ध किया है:

''छ पद विभास माँझ सात हैं बिलाबल में
तोड़ी में चतुर आसावरी में द्वै बने।
सारंग में षोडश हैं, चारि ही मलार एक गौड़ में
सुहागौ नव गौर इस में सन।

आचार्य जी ने अपने पदों में केवल रागों का ही उल्लेख नहीं किया है, वरन् संगीत के दूसरे तत्वों पर भी प्रकाश डाला गया है। सांगीतिक पारिभाषिक शब्द, सप्त सुर, राग-रागिनी, तान-आलाप आदि का कई स्थानों पर प्रयोग मिलता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राधावल्लभी सम्प्रदाय ने मध्यकालीन कृष्ण काल को अल्याधिक प्रभावित किया है। इस सम्प्रदाय में अनेक सिद्धान्त वादी विवेचन हुए हैं। हित हरिवंश जी ने भावपूरक कृष्ण लीला का गान किया है परनतु उनका चित्त जितना सिद्धान्त पक्ष में रमा उतना काव्य पक्ष में नहीं। इस सम्प्रदाय के दूसरे अनुयायी हरिराम व्यास, श्री ध्रुवदास जी, चाचा वृन्दावन दास, श्री दामोदर स्वामी, सहचरि सुख जी आदि।

ग. हरिदासी सम्प्रदाय :

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी थे। इनकी भक्ति का मन्तव्य राधा-कृष्ण की युगल रूप में उपासना सखी भाव से मान्य थी। सम्प्रदाय का मूल है- नित्यप्रति प्रेम तत्व, जिसकी लीला केलि है, सखि तत्व और जिसका निरन्तर सखी भावी सिद्ध भक्त युगल ध्यान का साक्षात्कार करते हैं। सखी भाव को मन में स्थान देने से अहं का विलय हो जाता है। ''श्याम श्यामा सखी गणों के साथ संयोगावस्था में रहते हुए क्षण पलादि के लिए भी विमुक्त नहीं होते। श्री युगल के रूप

---

[1]. राकेश बाला सक्सेना, मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदाय मे संगीत, (दिल्ली : राधा पब्लिकेशन, १९९०, पृ० ८०)

में निमग्न इन सखियों को शयन तथा भोजनादि बाह्य वस्तुओं की किंचित भी अवश्यकता नहीं होती।"[1]

स्वामी हरिदास जी का जन्म भाद्रपद शुक्ल संवत १५२७ मे ब्राह्मण कुल में हुआ। पच्चीस वर्ष की आयु में आप वृन्दावन आगरा और वहां निधवन निकुंज में अपने प्राण प्रियतमा की भक्ति में तन्मय हो गए। हरिदास सम्प्रदाय में कृष्ण भक्ति का एकमात्र आधार प्रेम माना है। कृष्ण भक्त अपने आराध्य से ममता और घनिष्ठता का संबंध चाहता है। प्रेम, कृष्ण भक्तों में वात्सल्य, सख्य और मधुर इन तीनों रूपों में धारण करता है। सखी सम्प्रदाय के सभी कवि कृष्ण की प्रणय लीला गान में लीन रहे। स्वामी हरिदास को हिन्दी गायन पद्धति के आविष्कार द्वारा भारतीय संगीत की रक्षा का श्रेय प्राप्त है। आपको संगीत के तीनों अंगों पर आधिपत्य था। वृन्दावन में रास-लीला का श्रेय आपको ही है। "स्वामी जी की प्रमाणिक रचनाओं के रूप में १२३ ध्रुपद माने जाते हैं इनमें से १८ सिद्धांन्त के पद और १०८ या ११० केलिमाले के नाम से प्रसिद्ध हैं।[2]

स्वामी हरिदास ध्रुपद गायन के आचार्य थे। स्वामी हरिदास के पदों में रागों के नाम और संख्या - विभास, बिलाबल आदि।

घ. निम्बार्क सम्प्रदाय :

निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रचारक श्री निम्बाकर्क पार्थ जी माने जाते हैं। निम्बार्क के दार्शनिक विचारों के आधार पर इस सम्प्रदाय का दार्शनिक "द्वैताद्वैतवाद" के नाम से प्रसिद्ध है। इस सिद्धानत के अन्तर्गत "ब्रह्म सगुण एवं निर्गुण दोनों प्रकार आते हैं। जीव और ब्रह्म के बीच अवस्था भेद से अभिन्नता और भिन्नता दोनों बनी रह सकती है।"[3]

इस सम्प्रदाय में उपसना करने वाला राधा कृष्ण के प्रेम में मस्त रहते हैं। श्री राधा कृष्ण का परस्पर संबंध इस सम्प्रदाय में स्वकीय भाव को स्वीकार किया गया है। निम्बार्क सम्प्रदाय ब्रज भाषा के कवियों ने राधा को स्वकीया स्वीकार करते हुए उनकी विवाह लीला का गान किया है। इस सम्प्रदाय के कवि ईष्ट की सेवा ध्रुपद व धमार गायन द्वारा करते थे।

---

१. राकेश वाला सक्सेना, मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदायों में सगीत, (दिल्ली . राधा पब्लिकेशन, १९९०, पृ० १७०)
२. नमिता बनर्जी, मध्यकालीन संगीतक्ष एवं उनका तत्कालीन समाज पर प्रभाव (दिल्ली : राधा पब्लिकेशन, १९९६, पृ० १०४)
३. राकेश लाला सक्सेना, मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदायो में सगीत, (दिल्ली · राधा पब्लिकेशन, १९९६, पृ० २०६)

२.१.४ : राम भक्ति शाखा :

श्री राम को अवतार के रूप मे अपना ईष्ट मान कर रचना करने वाले कवि, राम काव्य धारा के कवि कहलाए, राम भक्ति को महानता के शिखर पर पहुंचाने का श्रेय स्वामी रामानुजाचार्य को है। उनके शिष्य रामानन्द ने सारे देश का भ्रमण करके अपने सम्प्रदाय को प्रचलित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने विष्णु के अवतार रूप श्री राम को आराध्य देव माना, उन्होंने राम नाम को अपना मूल मंत्र माना। गोस्वामी तुलसीदास जी राम भक्त कवियों में शिरोमणि हैं। तुलसी से पहले रामानन्द जी की एक रचना "राम रक्षा स्रोत्र" तथा कवि विष्णुदास द्वारा वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद भी उपलब्ध है। भक्ति काल के सगुण भक्ति धारा में राम भक्ति काव्य रचने वालों में तुलसीदास का स्थान महत्वपूर्ण है। भक्ति काल के सगुण भक्ति धारा में राम भक्ति काव्य रचने वालों में तुलसीदास का स्थान महत्वपूर्ण है। "राम भक्ति धारा" में अनेक कवि हुए हैं। पर राम भक्ति धारा साहित्यिक महत्व अकेले तुलसीदास के कारण है। राम भक्त कवियों के राम में शील, शक्ति, सौन्दर्य का समन्वय है। वे मर्यादा पुरुषोत्तम और आदर्श के प्रतीक हैं। राम काव्य में सगुण वाद और निर्गुण वाद दोनों में एकरसता है। राम भक्त कवि अपने और राम के बीच सेवक और सेवकाई भाव को स्वीकार करते हैं। राम कथा रसपूर्ण हैं। राम भक्ति के रसिक सम्प्रदाय में श्रृंगार रस का परिपाल हुआ है। तुलसी के साहित्य "रामचरितमानस" में सभी रसों का समावेश है। राम काव्य में सभी शैलियों की रचनाएं मिलती हैं। राम काव्य की भाषा अवधी है। रचना भेद, भाषा भेद, विचार भेद, अलंकार भेद, के साथ राम काव्य में छन्द भेद भी पाया जाता है। जनश्रुति के आधार पर राम गुलाम द्विवेदी ने तुलसी का जन्म संवत् १५८५ ई० माना है। इनके पिता का नाम आत्मा राम और माता का नाम रत्नावली था। जनश्रुति के अनुसार तुलसी मूल नक्षत्र में पैदा हुए थे। इसीलिए माता पिता ने इनका त्याग किया था। तुलसी के गुरु नरहरि दास थे जिनका राम चरित मानस में कई स्थानों पर वर्णन मिलता है। काशी में रहकर लगातार १६ वर्ष तक वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, भागवत का अध्ययन करते रहे। "रामचरितमानस" तुलसी का सर्वश्रेष्ठ काव्य है। दूसरा ग्रन्थ "राम लाल नहछू", "पार्वती मंगल" "जानकी मंगल", "गीतावली", "कृष्ण गीतावली" "विनय पत्रिका" आदि हैं।

तुलसीदास जी जितने बड़े भक्त कवि थे, उतने महान संगीतज्ञ भी थे। तुलसीदास द्वारा रचित "रामचरितमानस" पूर्ण रूप से संगीतमय है। तुलसीदास शास्त्रीय संगीत के भी ज्ञाता थे। उन्होंने इपने गीति काव्यों में इक्कीस राग रागिनियों का समावेश किया। गीतावली में इक्कीस रागों की चर्चा की है, आसावरी, जयन्त केदार, सोरठ, धनाश्री, कान्हड़ा, कल्याण, ललित, विभास, तोड़ी, सारंग, सूहा, मल्हार, गौरी विभास, भैरव, चचरी, वसंत तथा रामकलीा। उन्होंने अपने गीतों में कोमल स्वर लगने वाले रागों का प्रयोग किया हैं। उन्होंने गीतों का सरल ढंग से तालबद्ध भी किया था।

इन भक्ति कालीन भक्त कवियों के कारण मध्य काल (अकबरी काल) संगीत की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण काल है।

इस प्रकार उपरोक्त भक्ति काव्य की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि इसमें धार्मिक भावना काव्य और संगीत का बहुत सुन्दर और अद्वितीय मिश्रण हुआ है। अधिकांश भक्ति कवि संगीत के अच्दे ज्ञाता भी थे। चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय से संबंधित थे उनका लक्ष्य काव्य और संगीत के द्वार भक्ति का प्रचार करना था। इस भाषा, भाव, लोक कल्याण संस्कृति, सभ्यता संगीत इन सभी दृष्टियों से भक्ति काव्य का साहित्य श्रेष्ठ है। भक्त कवियों ने अपने काव्य के द्वारा सुधारवाद की लहर भी चलाई और जनमानस को ठीक रास्ते पर लाने का प्रयास भी किया। संगीत के आश्रय के बिना यह सम्भव नहीं था। अतः काव्य और संगीत के मिश्रण से यह कार्य सम्पन्न किया और मध्ययुग में अपना विशेष स्थान प्रतिष्ठित किया।

२.१.५ : सम्प्रदाय मुक्त कवि और मीरा बाई :

इस काल में कई ऐसे श्रेष्ठ भक्त कवि भी हुए हैं, जिन्होंने अपने आपको सम्प्रदाय मुक्त रखा। उनके विषय में कोई ऐसा आधार नहीं मिलता है जिससे सम्प्रदाय मुक्त कवियों को किसी सम्प्रदाय में रखा जाए। परन्तु इस कोटि के कई कवि जैसे मीरा बाई, राणा आसकरण गंगवाला आदि। मीराबाई इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं।

मीरा सम्प्रदाय मुक्त भक्त कवियत्री थीं। जहां तक प्रभाव का प्रश्न है तो यह सत्य है कि राजस्थान में रामानंदी साधुओं का पूर्ण रूप से प्रभाव था, पर मीरा का इस सम्प्रदाय से संबंध था ऐसा नहीं कहा जात सकता। मीरा एक सच्ची कृष्ण भक्ता थीं। वे उच्च कोटि की सगुणोपासिका थीं।

मीरा ने अनेक सम्प्रदायों की अच्छी बातों को ग्रहण किया, पर सम्प्रदाय में या गुरु से दीक्षा नहीं ली। मीरा कृष्ण भक्त थीं। मधुर भाव की उपासिका थीं। मीरा के लिए किसी सम्प्रदाय का आश्रय लेना आवश्यक नहीं था। वे मध्यकाल की वह भक्त क्रान्तिकारी स्वतंत्र महिला थीं, जो अपने आराध्य की भक्ति में लोक मर्यादा को छोड़कर वृन्दावन आ गईं और अपने मधुर भक्ति भाव, संगीत से अपने प्यारे कविं बल्लभ को गा रिझाने लगीं। मीराबाई मध्यकाल की अमर स्त्री भक्त गायिका थीं। मीरा वाग्गेयकार थीं। वे स्वयं पद रचना, राग रचना करतीं और उसे तालबद्ध करके स्वयं गातीं थीं। मीरा के नाम से एक राग प्रचलित है जिसे मीरा की 'मल्हार' कहते हैं। मीरा ने गायन और नृत्य दोनों का अभ्यास किया।

कृष्ण के साथ उनके मन की भावना कभी वियोग तो कभी संयोग की थी। श्री कृष्ण के प्रति अपने मन की भावना को व्यक्त करने के लिए उन्होंने काव्य और संगीत को माध्यम बनाया। मीरा की भक्ति का माध्यन भजन कीर्तन था। मीरबाई "गीत-गोविन्द" काव्य से बहुत प्रभावित थीं। मीरा के गीतों में ८० राग-रागिनियों को प्रयोग मिलता है। उनकी भजन शैली में शास्त्रीय संगीत और लोकगीतो का अद्भुत मिश्रण है। मीरा के राग ब्रज, राजस्थान, गुजरात में प्रचलित हैं जैसे राग मांड। अकबर के काल में भारतीय नारियों में नारी की उच्च गरिमा बनाए रखने का श्रेय मीरा को ही है। मुस्मिल प्रभाव से प्रभावित नारियों को मीरा के भक्तिमय और संगीतमय भजनों ने पथभ्रष्ट होने से बचा लिया। मध्यकाल के कलाकारों में मीराबाई का स्थान अद्वितीय है।

२.२ : गीत का विशिष्ट युग :

ग्यारहवीं शताब्दी से मध्य काल की शुरुआत मानी जाती है। इसी काल में संगीत की दो पद्धतियां अलग-अलग हो गईं। उत्तरी संगीत और कर्नाटकी संगीत। धीरे-धीरे उत्तर भारत पर मुलसमानों को आक्रमण होने लगा और मुसलमान उत्तरी भारत पर अपना आधिपत्य जमाने लगे। लगभग १८वीं शताब्दी तक मुसमलमानों ने उत्तरी भारत पर पूरी तरह से अपना अस्तित्व जमा लिया। लोगों का जीवन कष्टमय हो गया था। जीवन में नीरसता आने लगी थी। धीरे-धीरे उत्तरी संगीत में बदलाव आता गया। कई मुसलमान राजाओं ने भारतीय संगीत को बहुत प्रोत्साहन दिया और फिर संगीत की प्रगति धीरे-धीरे होती गई।

१५२६ तक का समय बाबर का था जो स्वयं बहुत बड़ा संगीतज्ञ था और कविता भी करता था। वह अच्छे अच्छे गायकों को अपने दरबार में रखता था। वह संगीत को, मानव हृदय को बदल देने की शक्ति मानता था। वह संगत की उन्नति के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहता था। उसके दरबार में कई गायक थे जिन्होंने नए-नए रागों, ख्यालों और कव्वाली की रचना की। इसी समय उत्तरी भारत में भजन कीर्तन के रूप में संगीत का बहुत प्रचार हुआ। संगीत को भक्ति का मार्ग बनाया गया। १५५० में दक्षिण के रामामात्य ने एक प्रसिद्ध ग्रन्थ ''स्वरमेल कलानिधि'' की रचना की। इसमें श्रुति, नाद आदि की व्याख्या की गई।

हुमायूँ के बाद अकबर का समय आया। अकबर संगीत प्रेमी और विद्वान राजा थे। उनके काल में जाति-पाति का विचार नहीं था। वह हर धर्म की इज्जत करते थे। अकबर स्वयं कलाकार और कलाप्रेमी थे। इसलिए उन्होंने भारत की संस्कृति और सभी कलाओं को अपनी चरम सीमा पर पहुंचाने के लिए प्रयत्नशील रहे, उन्होंने अपने दरबार में महान गायकों तथा वादकों को रखा और उन्हें सम्मान दिया। ''आइने अकबरी'' के अनुसार उनके दरबार में ३६ संगीतज्ञ थे। उनमें से तानसेन सर्वश्रेष्ठ थे जिनका आज भी इज्जत और मान से नाम लिया जाता है।

अकबर चित्रकला के भी प्रेमी थे। उन्होने धर्म प्रचार में संगीत कला के माध्यम को ठीक समझा। अकबर के समय में भारतीय संगीत अपने पूरे यौवन पर था। भारतीय और मुसलमानों की संस्कृति का प्रभाव पड़ने से हमारे संगीत को ज्यादा लाभ हुआ। अकबर के ही काल में संत कवियों ने संगीत के द्वारा अपने पदों को गाकर लोगों को सच्चा मार्ग दिखाया। हर तरफ से देखने पर यही महसूस होता है कि अकबर का काल संगीत का स्वर्ण युग माना जा सकता है।

३. भक्त कवियों की संगीत निष्ठा :

मध्यकालीन सभी कवि काव्यरस के स्रष्टा होने के साथ-साथ संगीत के भी उच्च कोटि के कलाकार हुए हैं। ''किसी भी कवि के संगीत ज्ञान तथा संगीत संबंधी घटनाओं की जानकारी ठोस साक्ष्य अर्थात् उनकी रचनाओं में उपलब्ध आत्मविषयात्मक उल्लेखों तथा प्राचीन वाहि साक्ष्य इन दो पर आधारित होती है।'[1]

---

१ दीनदयाल गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (प्रयाग · हिन्दी साहित्य सम्मेलन, स० २००४) पृ० ८

संगीत शाही दरबारों में रस की वर्षा कर रहीं थी। लोगों के रंजन का साधन बन रही थी। वहीं दूसरी ओर आत्मिक सुख और ईश्वर प्रेम के लिए बृज भूमि में भक्त कवियों का समाज में आम जनता को भक्ति मार्ग पर लाने के लिए पदों को गा गाकर लोगों तक पहुचाने लगे। भक्ति आन्दोलन से जुड़े सभी भक्त अपने पद गाया करते थे।

३.१ : सूरदास जी :

१६वीं शताब्दी संगीत और भक्ति काव्य का समन्वय की दृष्टि से अत्यनत महत्वपूर्ण रहीं है। क्योंकि इसी शती में भक्ति आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर पहुंच कर राजनीति, समाज धर्म पर अपना प्रभाव डाल रही थी।[1] अकबर जैसे बादशाह साहित्य, संगीत और अन्य कलाओं को प्रोत्साहित कर रहे थे। इसी काल में "सूर सागर" के रचयिता, गीति काव्य के प्रकांड पंडित भक्त संगीत शिरोमणि महात्मा सूरदास जी हुए हैं।

आचार्यो की छाप लगी हुई जो आठ वीणाए श्रीकृष्ण के प्रेम लीला कीर्तन करते उठीं उनमें सबसे ऊँची सुरीली और मधुर झंकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी।[2]

ऐसा कौन व्यक्ति है जो सूरदास जी की रचना को सुनकर मंत्रमुग्ध न हो उठा हो। उनकी कविता में अनेकों युक्तियों, अनुप्रास, सुन्दर लोचयुक्त शब्द, रसमय संगीत ज्ञान का उपयोग उनके काव्य के गुण थे, सुर काव्य में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक प्रेम के भाव का निर्वाह किया जाता है। सूरदास जी महान गायक थे। संगीत का पूर्ण ज्ञान था उनके काव्य में। संगीत के समस्त गुणों का समावेश कर दिया था। ध्रुवदास जी ने सूरदास के पद गायन का उल्लेख किया है।

परमानन्द अरू सूर मिलि, गाई सब ब्रज रीति।[3]

भूलि जात विधि भजन की सुनि गोपियन की प्रीति।

८४ वैष्णवन की वार्ता से पता चलता है कि सूरदास जिस समय गऊ घाट पर रहते थे उस समय पदो को बना कर गाया करते थे, उनसे गान विद्या सीखने के लिए बहुत से लोग आने लगे और बाद में उनके सेवक बन गए। सन्तदास ने भी सूरदास के गान, कीर्तन तथा प्रसिद्धि की प्रशंसा की है।

---

[1]. दीनदयाल गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (प्रयाग · हिन्दी साहित्य सम्मेलन, स० २००४) पृ० ८१

[2]. रामचन्द्र शुक्ल, भ्रमर गीत सार (बनारस · साहित्य सेवा सदन, १६६६) पृ० २

[3] ध्रुवदास, भक्त नामावली {प्रयागः इडियन प्रेस, १६८२} पदसंख्या ६५

सूर के समान और भक्त नहीं पाइये

सेवक श्री वल्लभ के तिहुँ लोक गाइये

गुनि तान गालनि परिपूरन अवलोक को।[1]

सूरदास भक्त कवि गायक थे। उनके गान की ख्याति सारे जगत में फैल गई। सूरदास के गान विद्या की प्रंशसा अकबर तक भी पहुँची। स्वय संगीत प्रेमी थे। वह उनसे मिलने और संगीत सुनने के लिए उत्सुक हो उठें। वैष्णवन वार्ता के अनुसार अकबर ने सूरदास जी का गायन सुना और इतने प्रभावित हुए कि उसने सूरदास जी के पदो का संकलन भी करवाया। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य बनकर उनके साथ ही रहने लगे। वल्लभाचार्य जी भागवत के जिस अध्याय की कथा सुनाते सूरदास जी उसी भाव के पद बनाकर गायन करते थे। सुरदास जी श्री नाथ मन्दिर में कीर्तन करते थे। इन्होने आठ लोगों को मिलाकर एक मण्डली बनाई जिसको अष्टछाप कवि कहा गया।

सुरदास जी ने संगीत के गायन, वादन, नृत्य तीनों कलाओं को अपनाया और अपने पदों की रचना रागों में किया। सूरदास की रचना ध्रुपद शैलीं में हुई है क्योंकि उस समय यहाँ गायन विधि का चलन था।

अकबर के आग्रह पर सूरदास जी ने राग बिलाबल में यह पद गाया-

मन रे तू करि माधो से प्रीत समयानुसार रागों पालन उन्होंने अपने पदों में किया हैं ।

संगीत के शास्त्रीय विधि के अनुसार राग का समय सिद्धान्त का पूर्ण ध्यान रखा है। रात्रि कालीन राग गौरी का एक पद-

कमल नैंन हरि कैसै विसारी

राग केदार का यह पद--

मैंया मैं वो चंद खिलौना लैंहों

---

[1] दीनदयाल गुप्त, अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय {प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन, स २००४} पृ० ८१

राग हमीर में एक पद--

जा दिन संत पाहुन आवें।

इस प्रकार सूरदास के पद, वात्सल्य भाव, शान्त भाव, श्रृंगार भाव, दाम्पत्य भाव, भक्त भाव का अपने पदो में सकुशल निर्वाह किया है। सूरदास ने रास नृत्य का भी अपने पदों में वर्णन किया है। जिसे आज हम तांडव नृत्य कह सकते हैं। सूरदास से पहले और बाद में न जाने कितने भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के प्रेम में लिप्त होकर पद गान किया। आज उनकी ध्वनि क्षीण हो गई पर सूरदास ही ऐसे अमर भक्त गायक हुए हैं जो आज भी जनमानस में विचर रहें है। इसका मुख्य कारण उनके पद में राग-रागनियों में रस भाव को देखकर, उन्होंने पदों की रचना की है। सूर वाग्येकार थे, वे पद लिखते राग रचना करते और स्वयं गाते थे, सूर ने काव्य और संगीत का सुन्दर मिश्रण किया है। सूरदास ने कई रागों की भी रचना की है जैसे- "सूर मल्हार" "सूर-सारावली", 'साहित्य लहरी' जिसमें कई तरह के राग-रागनियों में पदों की रचना की है। सूरदास ने संगीत को मोक्ष प्राप्ति का माध्यम बनाया। सूर के पद की सुमधुर ध्वनि आज भी ब्रह्माण्ड में छाई हुई है। ऐसे महान कवियों का देश भारत है।

३.२: चतुर्भुज-

मध्यकालीन भक्त कवियों में सूर का एकाधिक्य माना गया है। सूरदास के जैसे है। भावुक, रसपूर्ण और वैसे ही लिप्तता चतुर्भुज में भी मिलता है। चतुर्भुज को संगीत की शिक्षा बचपन से ही अपने पिता कुंभन दास से मिली। वैष्णव वार्ता में चतुर्भुज के बचपन से ही संगीत में निपुण होने तथा सुन्दर पदों को गाने का विवरण मिलता है।

"चतुर्भुज दास में श्रीनाथ ने इतनी सामर्थ्य भरी जब इच्छा हो आवे तब मुग्धबालक होय जाय और इच्छा आवे तो बोलवे चालवे सब अलौलिक बातें करवे लग जाय।"[1]

इन प्रसंगों से पता चलता है कि चतुर्भुज दास में ईश्वरीय प्रतिभा थी। चतुर्भुज उनके साथ बैठकर उनके गायन का अनुकरण करते हुए ही उनमें संगीत प्रतिभा विकसित हुई। वे भगवान की

---

१. कृष्णदास, चौरासी वैष्णवन वार्ता {मुम्बई. लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, स० १६८५} पृ० २०-२१

लीला का रसपूर्ण गान किया करते थे। चतुर्भुज के पदों में २४ रागों का विवरण मिलता है। रागसमय सिद्धान्त का मध्ययुगीन भक्त-कवियों ने अपने पदों में पूर्ण रूप से निर्वाह किया है। समयानुकूल राग और भावानुकूल शब्दों का भक्त कवियों ने अपने पदों में प्रयोग किया है। राग मल्हार में चतुर्भुज का एक पद-

चतुर्भुज का एक पद--

स्याम सुन नियरों आयों मेहु
भीजेगी मेरी सुरंग चूनरी और पीतपटदेह

राग ललित में उनका एक पद--

अलस अनीधो नाआवत घूमत।[1]
मूंदे अति नीके लागत अरून वरन

कवि ने राग ललित के इस पद में श्रृंगार रस और उपालाम्भ की योजना देकर रस राग सिद्धान्त का अपूर्ण संयोजन किया है। इस प्रकार चतुर्भुज को अपने आराध्य नंद नन्दन की रूपासक्ति के पद, प्रेम रस, संगीत रस, श्रृंगार रस से ओत प्रोत है।

३.३ : स्वामी हरिदास :-

गान कला के विद्वान, ललिता सरिव की अवतार स्वामी हरिदास ब्राह्मण थे। बृन्दावन श्रीकृष्ण भक्त के लिए पूजनीय स्थल है। हरिदास वृन्दावन आकर अपने प्रभु के भक्ति में लीन। और अपने आराध्य श्रीकृष्ण के माधुरी को अपने पदों के द्वारा गान करने लगे। स्वामी हरिदास को संगीत कला के तीनों अंगों का ज्ञान और आधिपत्य था। वृन्दावन में रास लीला का श्रेय स्वामी हरिदास को ही है। स्वामी जी की प्रामाणिक रचनाओं के रूप में १२८ ध्रुपद माने जाते हैं। उनमें १८ सिद्धान्त के और ११० केलिमात के नाम से प्रसिद्ध है। स्वामी हरिदास संगीत के महान गायक थे कहा जाता है कि वे संगीत सम्राट तानसेन के गुरु थे। स्वामी हरिदास ध्रुपद गायन में दक्ष थे।

---

१ प्रभु दयाल मीतल, अष्टदाप परिचय, {मथुरा अग्रवाल प्रेस स०२००६} पद सख्या २०

स्वामी हरिदास ने जीवन पर्यन्त संगीत की साधना मोक्ष प्राप्ति के लिए किया, उनका मन संगीत के माध्यम से अपने भगवान श्रीकृष्ण में लीन रहता था। उन्होंने कई रागों की रचना की जैसे - हरिदासी मल्हार, भक्त माल में नाभादास जी स्वामी हरिदास का वर्णन करते हुए यह लिखते हैं -

"युगल नाम सो नेम जपत नित कुंज बिहारी

गान कला गंधर्व श्याम श्यामा को न्यारी।"

संगीत क्षेत्र में स्वामी हरिदास का महत्व अतुलनीय है। स्वामी जी शास्त्रीय संगीत और शास्त्र के भी ज्ञाता थे। राग विकास में स्वामी हरिदास का एक पद -

"आलस मीन री नैन जमाती आछी भाति सुदेस।"

मन के हारि वे को नाहिने प्यारी कोऊ तो तेन

खसि खेत भीति सुदेस

इस प्रकार कवि की अन्य पदों मे राग सिद्धान्त का पूर्ण रूप से निर्वाह हुआ है।[1]

३.४ मीराबाई :

भारतीय संगीत में आज तक जो गायक वादक हुए हैं उनमें पुरुषों की साधाना होती रही है। पर शास्त्रकारों ने उनका उल्लेख नहीं किया लम्बे काल में केवल मीरा का ही नाम मिलता है। जिन्होंने संगीत के गायन वादन तथा नृत्य को अपने मोक्ष का और भक्ति का माध्यम बनाया। मीरा ने गायन और नृत्य का पूर्ण अभ्यास किया। साज करताल, एकतारा वाद्य लेकर गायन और नृत्य अपने आराध्य के सम्मुख प्रस्तुत करतीं थीं। जिस प्रकार काव्य का जन्म अनुभव से होता है उसी प्रकार संगीत साधना आत्मसुख और आनन्द के लिए किया जाता है। मीरा का लक्ष्य अपने आराध्य का रंजन का, उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना, नृत्य करके उनको रिझाना था। वे अपने प्रियतम के लिए गाती थीं, नाचती थीं। मीरा की कला संगीत साधना की दृष्टि से, मीराबाई महान संगीतज्ञ, भक्त कवि हुई हैं। मीरा ने रागों में अपने पद रचे हैं।

---

१ नाभादास, भक्त माले (लखनऊ - नवलकिशोर प्रेस स. १९३७ ई०) पृ० ६०७.

मीरा ने बरखा गीत की भी रचना की। उनके प्रिय राग-मांड, आसा, आदि थे। मीरा की गायन शैली भजन कीर्तन की थी। मीरा ने गुजरात और राजस्थान के लोक संगीत और लोकगीत की धुनों का उनके पदगायन में उच्चकोटि का मिश्रण मिलता है। उनके पदों में कम से कम ६० रागों का विवरण मिलता है। मीरा के नाम से एक राग की रचना भी प्रसिद्ध है।- "मीरा की मल्हार"

मीरा के पदों में गेयत्व अधिक है। इसीलिए गायन में मीरा के ही पद अधिक मिलते हैं।

मध्यकाल के भक्त संगीत कवियों में मीराबाई का स्थान अद्वितीय है। संगीत रचनाकारों में मीरा का स्थान अलग और सर्वोच्च है।

३.५ : तुलसीदास :

मध्यकालीन भक्त कवि सन्त तुलसीदास का अपना अलग स्थान है। तुलसीदास ने अपने आराध्य श्री राम के जीवन कथा को रामचरितमानस के रूप में लिखा। पूरा "रामचरितमानस" संगीतमय है। तुलसीदास जी कहते हैं।- "कवि न होऊँ राम गुन गावे" तुलसीदास कवि से अधिक अपने आप को भक्त गायक के रूप में समझते थे। वे मूलतः राम भक्त थे। उन्होने राम की कीर्ति का गायन किया। उनकी रचनओं में काव्यात्मक और संगीतात्मक तत्वों का समन्वय दिखाई देता है। तुलसी के काव्य की रचना रागों के आधार पर है। उन्होंने ताल और लय का समन्वय सुन्दर ढंग से किया है। उनकी रचना राग आसावरी, जोगिया, सोहनी आदि में है।

मध्यकालीन कवि कुम्भनदास, कृष्णदास नन्ददास, गोविन्द स्वामी, छिति स्वामी, गदाधर भट्ट, सूरदास, मोइन आसकरण, कबीर आदि संगीत के प्रति पूर्ण निष्ठा रखते थे। संगीत ही उनके भजन का माध्यम था जो उनको उनके आराध्य से तादात्म्य स्थापित कराता था।

४. भक्ति काव्य में मानवीय भक्ति भाव और उसकी संगीतात्मक प्रवृत्तियाँः

मानव मन में भाँति -भाँति के भाव भरे पड़े है। सुखः का भाव, आदि, दुखः आदि, पर प्रेम भाव मानव का बहुत महत्वपूर्ण भाव है। भक्ति के क्षेत्र में प्रेम भाव का बहुत उच्च स्थान है। भक्ति में प्रेम और श्रद्धा का ही वर्चस्व होता है। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल ने भी मनुष्य के मानसिक भक्ति भाव का विश्लेषण करते हुए कहा है कि प्रेम और श्रद्धा भक्ति के दो महत्वपूर्ण अंग हैं। "मनुष्य

अपने आराध्य का जिसको वो चाहता है, जिसकी भक्ति करता है उसके गुणों की ओर आकर्षित होता है और उसके लिए अपने इष्ट के प्रति मन में श्रद्धा जाग जाती है। भक्त अपने आराध्य के प्रति प्रेम आसक्ति का अनुभव करता है और इसी से उसको असीम आनन्द का अनुभव होता है। अपने आराध्य के रूप सौन्दर्य पर आसक्त होकर अपने हृदय में प्रेम की लौ लगा लेता है। प्रायः इन्सानी मन में प्रेम का अनजाना रूप बसा रहता है दबा रहता है पर जब इन्सान अपने इसी अनजाने प्रेम की भावना के किसी उद्देश्य की ओर मोड़ देता है तो वही प्रेम भक्ति का रूप धारण कर लेता है। यह मानवीय भावों का चढ़ाव है।

कविवर पंत जी कहते है :

प्रेम ही का नाम जपा जिसने नहीं
रात्रि के पल को गिने प्रति शब्द से
चौंक कर उत्सुक नयन जिसके उधर
हो न देखा प्यार क्या उसने किया।[1]

मानव मन प्रेम के अधीन है। प्रेम की पराकाष्ठा तब होती है जब एक जान दो शरीर हो जाते हैं और यही स्थिति आत्मा के प्रेम रस और आनन्द से ओत-प्रोत कर देता है।

[1] कृष्ण देव शर्मा, मीराबाई की पदावली (दिल्ली रीगल बुक डिपो, १६७२) पृ० २८

द्वितीय खण्ड

मीराबाई का युग और सर्जक व्यक्तित्व संगीत के विशेष संदर्भ में

प्रथम अध्याय - मीराबाई का युग तथा परिवेश

द्वितीय अध्याय - मीराबाई की व्यक्तित्व संरचना और संक्षिप्त जीवनवृत्त

तृतीय अध्याय - मीराबाई का सृजन संसार

द्वितीय खण्ड

प्रथम-अध्याय
मीराबाई का युग तथा परिवेश

१. कवियत्री मीराबाई का ऐतिहासिक काल खण्ड
२. सामाजिक परिस्थितियाँ
३. मीराबाई का परिवेश :विभिन्न प्रवृत्तियाँ

कवियित्री मीराबाई का ऐतिहासिक काल-खण्ड :

मीराबाई का युग मध्यकाल के उत्तरार्द्ध का युग माना जाता है। मीरा के समय का ऐतिहासिक काल-खण्ड बहुत कठिन था। उनका युग वीरता और बलिदान का युग था। मीराबाई के समय में भारत गुलाम था और लोदी वंश के शासको का अधिकार था। बाद में अकबर ने भारत पर हमला करके अपना अधिकार बना लिया। मेवाड़ उस समय हलचलों का प्रमुख स्थान था। भारत की दशा बहुत शोचनीय थी। मुगलों का शासन राजस्थान की कुछ रियासतो को छोडकर सभी जगह था। कुछ विद्वानों का मत है कि हिन्दु जनता पर मुसलमानों का अत्याचार बहुत अधिक बढ़ गया था। सामन्त भोली जनता को लूटकर और उनके साथ बुरा व्यवहार करके स्वयं भोग विलास मे लिप्त हो जाते थे। पर राजस्थान की स्वतंत्रता से मुगल बादशाह चिन्तित रहते थे। उनका लक्ष्य राजस्थान पर कब्जा करने का था। इसीलिए राजस्थान पर कई बार आक्रमण किया परन्तु मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए सदैव राजपूत तैयार रहते थे। आपसी फूट के कारण राजस्थान के छोटे-छोटे राजय को मुगलों ने आक्रमण करके हथिया लिया। मीराबाई के युग का ऐतिहासिक समय से पता चलता है कि मेवाड़ पर उस समय की राजनीतिक हलचल का बहुत प्रभाव था। मीराबाई के समय का मेवाड़ सुख साधन, धन वैभव से पूर्ण तथा स्वतंत्र राज्य था। वहाँ के राजपूत अपनी वीरता और बलिदान के लिए प्रसिद्ध थे। केवल पुरूष ही नहीं अपितु नारी भी बलिदान देने में संकोच नहीं करती थी। मीराबाई के जन्म के समय मेवाड़ पर रायमल का शासन था। उन्होंने ३६ साल तक शासन किया। सन् १५०६ ई० में रायमल के निधन के बाद मेवाड़ का राज्य राजा सांगा ने अपने हाथ में ले लिया। उन्होंने

मेवाड़ की रक्षा के लिए कई बार शत्रुओं से युद्ध किया। इसी समय बाबर ने लोदी वंश का नाम मिटा कर दिल्ली पर कब्जा कर लिया। मीरा का ऐतिहासिक काल खण्ड युद्ध, बलिदान, संघर्षों, से जूझना आदि का था। मीरा नारी थी उनका राजनीति से कोई संबंध नहीं था। पर व्यक्ति जिस युग में अपने साहित्य की रचना करता है उस युग के चिन्तन को अपने जीवन मे अनुभव और व्यक्तित्व में सम्मिलित करके एक नये रूप को समाज के सामने प्रस्तुत करता है। मीरा अपने युग की देन है।

(अ) राजनैतिक परिस्थितियाँ -

मीरा का युग सोलहवीं शताब्दी से शुरू होता है। भारत पर मुसलमानों का आक्रमण पहले से ही होता आया था। पर मीरा के युग मे मुसलमान शासकों का प्रभुतव पूरे भारत पर हो गया था। फिरोजशाह तुगलक का निधन हो गया थ। फिरोज शाह तुगलक का निधन हो जाने पर राजस्थान के छोटे-छोटे रजवाड़े स्वतंत्र हो गए। राजस्था के इन छोटे राज्यों में मेवाड और मारवाड़ शक्तिशाली राज्य थे। काफी समय तक को राजस्थान में मेढ़ता राजनीतिक षड़यंत्र का शिकार बना रहा। चित्तोड़ प्रारम्भ से ही मुगल राज्य का विरोधी रहा। पर इन राज्यों को दिल्ली गुजरात और मालवा की ओर से होते आक्रमण को भी झेलना पड़ता था। इसी कारण यहॉ की राजनैतिक स्थिति अस्थिर और संघर्षपूर्ण रही। मीरा के जन्म के समय मेवाड़ पर रायमल का शासन था। रायमल ने ३६ साल मेवाड़ पर शासन किया। उनके निधन के बाद १६०५ ई० में राणा सांगा ने सत्ता की बागडोर अपने हाथ में ले लिया। राणा सांगा ने मेवाड़ के गौरव को बनाए रखने के लिए कई बार शत्रुओ से टक्कर लिया और विजयी हुए, परन्तु "खानवा" नामक स्थान पर बाबर के साथ युद्ध करते हुए राणा सागा पराजित हो गए। उसके बाद राणा रत्नसिंह ने शासन की बागडोर संभाली। रत्नसिंह नि·सन्तान थे। उनकी मृत्यु हो जाने पर उनका छोटा-भाई विक्रमादित्य ने सन् १५३१ में राज्य सभाला। विक्रमादित्य के समय दो बार मेवाड़ पर बहादुरशाह के आक्रमण हुए। मीरा की मृत्यु उदयसिंह के शासनकाल मे हो गई थी। मारवाड़ राज्य १४वीं शताब्दी में उदित हुआ। इसके शासक राठौर के मेड़ता के प्रवर्तक रावदूदा जी थे। इनके पिता जोधा जी उन्होंने जोधपुर बसाया। १५१५ में राव दूदा जी ने खिलजी को हराकर मेड़ता पर अपना अधिकार कर लिया राव दूदा जी के पाँच पुत्र - वीरमदेव, रायसता, पंचायव, रत्नसिह तथा रायमल, वीरमदेव के पुत्र जयमल जिनका पालन-पोषण रावदूदा ने किया। जयमल मीरा के बाल-सखों और भक्ति की भावना से पूर्ण थे। पहले वीरमदेव ने राज्य किया उसके

बाद जयमल गद्दी पर बैठे। इस समय के राजनीतिक संघर्षों का मीरा के व्यक्तित्व और जीवन पर बहुत गम्भीर प्रभाव पड़ा। युद्ध और संघर्ष की छाया में भी भक्ति पनप रही थी। मीरा राजा भोज की पत्नी बनी। भोजराज युद्ध मे लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। मीरा विधवा हो गई और उस समय की राजनैतिक संघर्ष की बलि चढ़ गई। उसके बाद उनके श्वसुर का भी एक युद्ध में देहान्त हो गया। इन दुःखद परिस्थितियों का मीरा के कोमल हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। मीरा को राणा विक्रमादित्य के द्वारा बहुत यातनाएँ मिली उससे मीरा का मन सभी तरफ से हटकर पूर्ण रूप से भक्ति में रम गया और इन्हीं राजनैतिक परिस्थितियों ने मीरा के काव्य पर अमिट छाप छोड़ गया।

(ब) सामाजिक परिस्थितियाँ -

डा० रागैय राघव लिखते है कि "भक्ति आन्दोलन के प्रतिपक्षी इस्लाम और हिन्दू उस समय नहीं थे। उस समय की निम्न जातियों और ब्राह्मण तथा उच्च जातियॉ। दक्षिण के अडयार और आलवारों से प्रारम्भ हुआ। भक्ति का यह प्रभात पशुपातों में संबल पाता रहा, फिर भागवत सम्प्रदाय बन कर वैष्णवों पल्लवित हुआ और उसका शैव समानांतर लिंगायत में प्रकट हुआ।

पूर्व में सहज यान, भक्ति के रूप में बदल गया। समस्त भक्ति सम्प्रदाय उच्च वर्गो के अधिकारों के विरूद्ध था। वास्तव में समाज में जातीय संघर्ष की प्रधानता थी। उच्च वर्ग निम्न वर्ग को उनके अधिकार देने के लिए प्रस्तुत नहीं थे और निम्न वर्ग अपने अधिकारों को लेने के लिए कटिबद्ध थे। संतो ने निम्नवर्ग को अपनाया और उन्हीं की भाषा में साहित्य का सृजन किया।"[1]
मीरा के समय में सामाजिक स्थिति बहुत दयनीय थी। हिन्दुओं में जाति-पाति, छुआछूत का बोलबाला था। उच्च कुल के हिन्दु शूद्रों को नीच और मुसलमानों को म्लैच्छ समझते थे। और उनसे घृणा करते थे। जो अछूत थे वे मंदिरो में नहीं जा सकते थे। सबसे अधिक दयनीय स्थिति शूद्रों की थी। उनके लिए पेट भरने और तन ढकने की कोई व्यवस्था नहीं थी। हिन्दुओं में ब्राह्मण और उच्च वर्गों के तिरस्कार से शूद्रों में भी कई उपजातियां बन गई। चूंकि मुसलमानों के सूफी उदार और नम्र स्वभाव के थे इसलिए अधिकतर शूद्रों ने इस्लाम धर्म अपना लिया। इसी कारण मुसलमानों की शक्ति और सुदृढ़ हुई और हिन्दुओं की शक्ति क्षीण हुई। मीरा के समय में सती-प्रथा सबसे बड़ी कुरीति थी।

---

१. प्रो० नारायण शर्मा, मीरा की काव्य कला और जीवनी, (इलाहाबादः सरस्वती पुस्तक सदन, १९६५) पृ. ४

मुसलमानों के अत्याचारों के डर से लोग लड़कियों के जन्म पर दुःखी होते थे और अपने सम्मान को बचाए रखने के लिए छोटी आयु में उनका विवाह कर देते थे। मीरा का विवाह १२ वर्ष की आयु मे कर दिया गया था। विधवाओं की संख्या अधिक थी। पुनः विवाह की कोई आशा नहीं थी। स्त्रियो की दशा उस समय बहुत दयनीय थी। सती प्रथा चरम सीमा पर थी। पर जब मीरा के पति का निधन हुआ तो मीरा अपने पति के साथ सती नहीं हुई। और अपने देवर विक्रमादित्य के कोप का भाजन बनी। मीरा कहती है -

"वर हीणों अपणो भलो है कोंढ़ी, कुष्टी कोई।
जोके संग सीपारता है, भला कहै सब कोई।।"[१]

मीरा ने सती प्रथा का विरोध किया और क्रान्तिकारी रूप के साथ-साथ समाज में आई और कहा "सती ने होस्या गोविन्द गास्यो"। समाज में नृत्य संगीत में रूचि बढ़ने लगी, राजघरानों में भी नृत्य कला और संगीत कला पनपने लगी।

कृष्ण जन्माष्टमी, राम नवमी, होली आदि त्यौहार मनाये जाने लगे। राजघरानों के अनुकरण पर देव मंदिरों में भी प्रभु को प्रसन्न करने के लिए नृत्य एवं संगीत की व्यवस्था शुरू हो गई।

(स) धार्मिक परिस्थितिया :-

प्रत्येक मनुष्य के ह्रदय में भक्ति का बीज जन्म से ही होता है। अगर युग की परिस्थिति अनुकूल है तो वही भक्ति का बीज मन से बाहर निकलता फलता फूलता है और अपना सुगंध चारो तरफ के वातावरण में बिखेर देता है और अगर परिस्थिति प्रतिकूल हो तो मन दब जाता है। मीरा का युग धार्मिक आन्दोलनों का था। भारत के कोने-कोने में भक्ति-भावना की नदी बह रही थी। मीराबाई के समय को जितना महत्व राजनीतिक दृष्टि से प्राप्त हुआ होगा उससे कहीं अधिक उसे धार्मिक और साहित्यिक दृष्टियों से भी दिया जा सकता है। मीरा के पहले और इसके समय मे उत्तरी-भारत में भक्ति का अगाध धारा बह रही थी। ज्ञान, प्रेम और भक्ति की त्रिवेणी में भारतीय जनता नहा रही थी। डॉ० श्री कृष्ण लाल के शब्दों में "यह राजपूतों के वीरता का युग था महाराणा

---

१. श्री परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, (प्रयागः हिन्दी साहित्य सम्मलेन, शक १८८४) पृ.१८.

सांगा और प्रताप वीर श्रेष्ठ जयमल और पुता राव जोधा जी और मालदेव जैसे मालधनी वीरो की कीर्ति से सारा राजपूताना गूंज रहा था। यह कबीर, दादू, नानक रैदास तथा नरसी मेहता जैसे ईश्वर परायण भक्तों का युग था। यह एक अवतारी युग था जब गोसाई तुलसी दास आदि कवि, महर्षि बाल्मीकि के, गौरांग महाप्रभु श्री चैतन्य देव भगवान कृष्ण के, महात्मा हरिदास, ललिता सखी के और गोसाई हरिवंश भगवान मुरलीधर की मुरली के अवतार समझे जाते थे। मीरा द्वापर युग की ब्रज गोपी का अवतार प्रसिद्ध थी। यह युग हरिदास, तानसेन, बैजूबावरा, जैसे गायको का युग था और मीराबाई एक अलौकिक गायिका थी।[१]

यह सूरदास, तुलसीदास, विद्यापति तथा कबीर जैसे महाकवियों का युग था। और मीरा एक जन्मजात कवि थी। मीरा के युग में भक्ति की दोनो धाराएँ प्रभावित हो रही थी। निर्गुण भक्तिधारा। सगुण भक्तिधारा के अन्तर्गत राम भक्तिधारा और कृष्ण भक्तिधारा के आदि है और निर्गुण भक्तिधारा मे ज्ञान श्रुंति शाखा और प्रेम मार्गी शाखा आते हैं। भक्ति की यह धारा उत्तर और दक्षिण में समान रूप से बह रही थी। इस युग में निर्गुण और सगुण की आपस की दूरी कम हो रही थी। ईश्वर के दोनो रूपों को जनता अपना रही थी। मीरा के रचनाओं में निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार की भक्ति भावना का समान सार मिलता है। मीरा अपने युग की धार्मिकता से पूर्ण रूप से जुड़ी थी। श्री भुवनेश्वर जी के शब्दों में, श्रृंगार की मिलन माधुरी की जो पराकाष्ठा गीत-गोविन्द में मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसी प्रकार मैथिल कोकिल विद्यापति के "जन्म अवधि हम रूप निहारल नैन न तिरपत भेल" में भी प्रेम की अनन्य अतृप्त आकांक्षा की बड़े ही भावपूर्ण मधुर छंदो में उदभावना हुई है।[२]

नवद्वीप की यही पुनीत प्रेमधारा जो गीतो में बह रही थी। मिथिला की अमराइयों में विरमती हुई ब्रजभूमि में अपने प्राण वल्लभ की चरण रज को लेकर नवीन चेतना एवं प्राण से अनुप्राणित होती हुई राजस्थान की प्रेम की उस पगली पुजारिन के आंगन में उतरी।

मीरा युग की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक, सांगीतिक-पृष्ठभूमि मे मीरा के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ।

---

१. श्री कृष्ण लाल, मीराबाई, (प्रयागः हिन्दी साहित्य सम्मेलन, शक १८८२३) पृ.३.
२. भुवनेश्वर मिश्र "माधव", मीरा की प्रेम साधना, (दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, १९५६ पृ० १५२)

३. मीराबाई का परिवेश - विभिन्न प्रवृत्तियाँ :

राजस्थान की धरती वीर की भक्ति के श्रृंगार का संगम है। राजस्थान की भूमि के कण-कण मे वीरों के खून के छींटे मिलते हैं। तो दूसरी ओर संत भक्त कवियो के उदय होने से मुसलमानों के भारत आगमन से देश की जनता पर अत्याचार के बादल टूट पड़े। मुसलमानो के कट्टरपथी शासको ने हिन्दुओं पर कहर ढाए। पर यहाँ के देशी शासक अतिम दम तक प्राणो की बाजी लगा स्वाधीनता की रक्षा के लिए जूझते रहे।

अकबर, जहॉगीर, शाहजहाँ के समय को छोड़कर मुस्लिम काल का सारा समय मारकाट, गृह-कलह, विदेशी आक्रमणों के आतंक से भरा था। मुस्लिम संस्कृति ने भारत पर अधिकार जमा लिया था। पर हिन्दुओं की आस्था धर्म में थी। भक्ति की भावना समाज में पूर्ण रूप से पनप चुकी थी। भुस्लिम शासको के अत्याचारों से तंग आकर लोगो का झुकाव ईश्वर की भक्ति तरफ हुआ, मंदिरो मे साधना और कीर्तन होने लगे, भक्ति काल मे ही संगीत के विद्वान भक्त कवि हुए है - हरिदास, मीरा, सूरदास आदि भक्त संगीतज्ञ हुए है जिन्होंने उस समय के दु:खी जनता को अपने भक्ति काव्य और संगीत के द्वारा उनके मन को ठंडक पहुँचाया। धीरे-धीरे जनता की रूचियां बदलने लगी। लोग संगीत साहित्य में रूचि रखने लगे। कई शास्त्रों का निर्माण हुआ। इस युग में श्रेष्ठ गायक, सगीतशास्त्रीयों का उदय हुआ - जैसे बैजू बावरा, तानसेन आदि गायक हुए और गायन शैलियो का भी आविष्कार हुआ। लोगो की प्रवृत्तियं बदली। चित्रकला, साहित्य, कला, संगीत-कला अपनी चरम सीमा पर पहॅुच चुकी थी। मीरा स्वयं संगीतज्ञ थी। मीरा का युग अधिकतर ललित कला, संगीत कला एव· धर्म की प्रेरणा से रचित हुई।

क. कलात्मक प्रवृत्तियाँ -

सभ्यता, संस्कृति और साहित्य के निर्माण में शासक का बड़ा हाथ होता है। भारत के राजनीतिक वातावरण के कारण उसकी कलात्मक अभिरूचि पर गहरा प्रभाव डाला। मध्ययुग में वास्तुकला, स्थापत्य कला, चित्रकला का जो वेग था। मुसलमानों के आने से उसमें रोक लग गई। चित्रकला का प्रोत्साहन देने वाली सबसे मजबूत भावना धर्म की थी। मंदिर, गिरजा, बौद्ध भवन में उच्चकोटि के चित्रों के नमूने लगे होने पर मस्जिदों में वही स्थान सूने पड़े रहते। इसका कारण

इस्लाम की धार्मिक प्रवृत्ति थी। अकबर ने इस क्षेत्र में काफी साहसी कदम उठाया। अकबर उन लोगो को अच्छा नहीं समझते थे जो कला को नापसंद करते थे अकबर उदार ह्रदय और धर्म निरपेक्ष शासक था। हिन्दू सस्कृति धर्म और कला को बहुत सम्मान देता था। इसी कारण उन्होंने भारत की सभी कलाओं को आदर और प्रोत्साहन दिया। अकबर के ही समय में संगीत का स्थान अपने शिखर पर था। लोगों का झुकाव साहित्य, संगीत और दूसरी कलाओं की ओर बढ़ने लगा। मुगल संस्कृति और कलाओं का प्रभाव हिन्दुओं पर पड़ा और हिन्दुओं के कला और संस्कृति का प्रभाव मुसलमानों पर पड़ा। इस प्रकार दोनों ही सम्प्रदाय के लोग संगीत समारोहों का आयोजन करने लगे। लोगों के मनो में कला के प्रति जिज्ञासा होने लगी। सामूहिक रूप से गाना नाचना, संगीत सुनना, कला के लिए उनकी भावना की पुष्टि की। उस युग के एक समय और सुशिक्षित व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के लिए संगीत, साहित्य, कविता, नृत्य कला, चित्रकला आदि का परखने की क्षमता हो वही व्यक्ति सभ्य कहलाता था। योग्य समझा जाता था और समाज में सम्मान का हकदार समझा जाता था। भक्ति संगीत का प्रभाव भी समाज पर पड़ा लोग मन्दिरों में जाते और कीर्तन भजन करते और सुनते। इसी युग में कई महान भक्ति साहित्य और संगीत के भक्त कवि हुए है जिन्होने संगीत को उच्च शिखर पर पहुँचाने में भारतीय संगीत की सहायता की। मीरा ने स्वयं गुजरात और राजस्थान के लोग परम्पराओं से प्रभावित होकर लोकगीतों को शास्त्रीय रूप दिया। डॉ० श्री लाल जी का कहना है देश मे जब चित्रकला का विकास होता है। जब साहित्य में भी चित्र कल्पना प्रधान हो उठती है और जब देश में संगीत की उन्नति होने लगती है तब साहित्य गीति-काव्यों की प्रधानता दिखाई पड़ती है। इन सब तथ्यों को देखकर अनुभव होता है कि मीरा के युग में जनता के ह्रदय में कलात्मक प्रवृत्तियों की जाग्रति पूर्ण रूप से हो चुकी थी।

ख. मीरा कालीन संगीत गायकी :-

भक्तिकालीन कवियों के समय में ध्रुपद गायकी का प्रचलन हो गया था। अकबर का समय भक्तिकाल का समय था। और उसी काल को काव्य और संगीत का स्वर्णकाल कहा जाता है। अकबर स्वयं अच्छे संगीतकार एवं संगीतप्रेमी थे। इसलिए उन्होंने सभी कलाओं को ऊपर उठाने का

---

१. ऊषा गुप्त, हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में सगीत, (लखनऊ लखनऊ विश्वविद्यालय १९६०) पृ ३५३.

प्रयत्न किया। कहा जाता है कि "सबसे पहले ध्रुपद का आविष्कार राजा मानसिंह तोमर ने किया था।[1] "ऐसा माना जाता है कि मानसिंह तोमन वर्तमान ध्रुपद शैली के प्रवर्तक है।"[2]

"ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर (१४८६ ई०-१५२६ ई०) ने ध्रुपद की गायकी का उत्थान कर उसे बहुत प्रोत्साहित किया। कुछ विद्वानों का मत है कि ध्रुपद की गायकी का इन्होंने आविष्कार किया। "ध्रुपद" का अर्थ है - ध्रुव अर्थात निश्चित पद।[1]

इसके निश्चित बंधे हुए पद होते हैं। इसके चार अवयव होते हैं - स्थाई अन्तरा, संचारी, आभोग कुछ ध्रुपद ऐसे भी मिलते है जिनमें स्थाई अन्तरा केवल दो ही अवयव होते हैं। यह ज्यादातर चौताल, सुलफाक ताल, गजझंपा, तीव्रा, ब्रह्म, रूद्र आदि तालो में गाया जाता था। ध्रुपद में तान मुर्की का प्रयोग नहीं होता। इस शैली में वीर रस, श्रृंगार रस और शान्त रस की प्रधानता रहती है। मध्य काल में ध्रुपद गायक को "कलावन्त" कहते थे, परम्परागत प्रबंध गायन के आधार पर एक नई शैली का आविष्कार हुआ जो ध्रुपद कहलाई। ध्रुपद शैली दो प्रकार की हुई पहली- जो मंदिरो में गाई जाती थी दूसरी-राज दरबारो में। अनूप संगीत रत्नाकर के रचनाकार भावभट्ट ने ध्रुपद की परिभाषा इस तरह दी है। -

" अथ ध्रौपद लक्षणम

गौर्वाणामध्यदेशीय भाषा साहित्य रजितमा

द्विचतुर्वाक्यसंपन्नं नरनारी कथाश्रयम्।

भारतखडे सगीत शास्त्र में लिखा है, "ध्रुवपद के बहुधा चार भाग होते हैं जिन्हे गायक तुक कहते हैः इन भागो के नाम स्थाई, अन्तरा, संचारी, आभोग" है। राग में विशेष महत्व का भाग स्थाई अन्तरा है, अंतिम भाग का आभोग कहते हैं, अस्थाई तथा आभोग के बीच में अन्तरा आता है।

संचारी में इन तीनों भागों में आए स्वरो का मिश्रण होता है। इन चारो भागों मे से प्रत्येक भाग में कितने चरण रखे जाए यह गायक की इच्छा पर निर्भर करती है। वैसे तो प्रत्येक भाग में

---

२. भातरखण्डे, उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, (हाथरस, सगीत कार्यालय, १९६४) पृ. २३.
१. जयदेव सिह : भारतीय सगीत का इतिहास (हाथरसः संगीत कार्यालय, १९५६) पृ० ६९१.
२. भातखडे संगीत शास्त्र (प्रथम भाग) हाथरसः भातखंडे प्रकाशक संगीत कार्यालय हाथरस १९६४ पृ०

नियमानुसार चार चरण होते हैं परन्तु आगे चलकर यह नियम उपेक्षित होता गया, प्राचीन ध्रुवपदों में शब्द अधिक होते थे। ध्रुवपदो के साथ जो वाद्य बजाए जाता है उसे परवावज कहते हैं।[२]

कृष्णभक्तिकालीन कवियों के कुछ ऐसे पद मिलते है जिनके ऊपर ध्रुवपद शब्द लिखा हुआ नहीं मिलता पर वह ध्रुवपद की गायकी में गाए जा सकते हैं। जैसे - स्वामी हरिदास का यह पद -

राधे चलि री हरि बोलत कोकिला अलापत
सुर देत पंछी राग बन्यो
जहाँ मोर काछ बांधे नृत्य करत, मेघ परवावज
बजावत बंधान गन्यो
प्रकृति को कोऊ नाही याते श्रुति के उनमान
गहि हैं। आई मैं जन्यों
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज विहारी
की अटपटी और कहत कछु और भन्यो।[१]

(हरिदास)

कृष्ण भक्त कवियों के गायन के साथ मृदंग बजाया जाता था।
हरिदास जी का एक पद जिसमें ध्रुपद का वर्णन हुआ है -
"परस्पर राग जम्यों समेत किन्नरा मृदंग सो तार
तीन हु सुर के तान बंधान धुर ध्रुपर उधर।[२]

ग. धमारः-

कृष्ण भक्त कवियों में धमार गायन का महत्वपूर्ण चलन था। होरी एक प्रकार की गायन शैली है जिसको धमार ताल मे गाई जाती थी। इसलिए कभी-कभी इसे धमार ही कह देते हैं। इसमें ज्यादातर श्रीकृष्ण और गोपियों की लीला का वर्णन होता है, इसको पहले विलम्बित लय में गाते हैं

---

१. पदसंगह प्रति सं. ३७१/२६६ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी पद सं. ११
२. वही, पृ० ३७१/२६६. पृ० १६. पद स० १६१.
३. सूरदास, सूरसागर (काशीः नागरी प्रचारिणी सभा, सवत-२००७) पृ० १२२७.
४. प्रभु दयाल मीतल, अष्टछाप परिचय (मथुराः अग्रवाल प्रेस, सं २००६) पृ० ३२६.

फिर दुगुन, तिगुन, चौगुन में गाते हैं। यह हमारी परम्परा है कि होरी को धमार ताल में गाया जाता है। कृष्ण भक्ति काव्य में धमार का उल्लेख मिलता है।

१. "इक गावत है धमारि इक एकानि देत गारी।[३]

२. "डोल झुलावत सब ब्रज-सुंदरि झूलत मदन गोपाल
गावत फाग धमार हरीष भर हलंधर और सब ग्वाला।"[४]
- नंद दास

३. होरी पिया विण म्हाणे णा भावा घर आंगण णा सुहावा
वा विस्यां कब होशी म्हारी हंस पिय कंठ डगावॉं
मीराँ होरी गावा"[१]

और इसी समय उत्तर में कव्वाली, त्रिवट, धमार, तराना, चतुरंग, आदि गायन शैली में प्रचार में आई।

घ. भजनः -

मीरा के समय में और एक शैली प्रचलित थी जो संतो और कृष्ण भक्त कालीन भक्तों की शैली थी। वह भजन और कीर्तन शैली थी। कृष्ण भक्त काव्य में ऐसे बहुत से पद है जो भजन और कीर्तन की शैली में गाये जाते थे। ईश्वर का नाम प्रेम-भक्ति का पाठ सस्वर ऊँचे स्वर में गाने को कीर्तन कहा जाता है। भजन कीर्तन मे अपने आराध्य की उपासना करते समय करताल, झांझ, मृदंग, मजीरा, एकतारा आदि वाद्यों का गायन के साथ संगत होती थी। इसमें करूणा, प्रेम और वात्सल्य भावों की अपेक्षा रहती है। मीरा और सूरदास के पद आज भी गायकों में प्रसिद्ध है। मीरा के भजन की संगीतकारो में ज्यादा प्रचलन है। मीरा का भजन गेयता सरल और रसपूर्ण और मधुरता से परिपूर्ण है। मीरा का जीवन राजस्थान और गुजरात में बीता था। मीरा ने राजस्थान और गुजरात के लोकगीतों को शास्त्रीय रूप दिया। मीरा की गायन शैली में शास्त्रीय संगीत की राग-रागिनियॉं तथा लोकधुनों का बहुत सुन्दर मिश्रण किया है। मीरा के समय में मुसलमान सूफी कवि गायकों ने

कव्वाली शैली का प्रचार किया। इन शैलियों के अलावा एक शैली और भी थी, जो मीरा ने राजस्थान मे धुन शैली का प्रचार किया। भक्ति काल में अलग-अलग सम्प्रदाय की अपनी अपनी गायन शैली प्रचलित थी। भक्तिकालीन गायन शैली में लोक गीत का बहुत महत्ता है। यह भी अपने आप में एक गायन शैली है जो आम लोगों के लिए सरल सरस और उनकी अपनी बोलचाल की भाषा में होती है, ध्रुवपद, धमार, चतुरंग आदि शैलियॉ विद्वानों और संगीतकारो के लिए थी पर जो संगीत और शास्त्र को नही समझे थे उनकी अपनी सरल और सीधी शैली थी जो लोकगीत कहलाई। लोकगीत के अन्तर्गत सावन के गीत, रसिया होली, बारहमासा आदि।

च. निष्कर्ष

मीरा का युग भक्ति का युग था। भक्ति साधना में मीरा का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने राजघराने की स्त्री होते हुए भी तत्कालीन परिस्थितियों के बंधन को तोड़कर क्रान्ति का सन्देश दिया। मीरा ने अपनी काव्य रचना के द्वारा लोगो में भक्ति भावना का सन्देश दिया। इसी काल समाज मे हिन्दू-मुस्लिम दो विरोधी विचार धाराओं से संघर्ष था। इसी काल में संगीत साहित्य और कला का प्रचार हुआ। मुस्लिम राजा अकबर संगीत प्रेमी होने के कारण भारत के सभी कलाओं की उन्नति के लिए प्रयत्न किया। अपने राजय दरबार में बड़े-बड़े संगीतकारों को आश्रय दिया। मीरा के काल में संगीत, साहित्य और कला खूब फल फूल रही थी। अकबर काल में भारतीय नारियों मे नारीत्व की गरिमा जाग्रत करने का श्रेय मीरा को है। मुसलमानों के प्रभाव से प्रभावित स्त्रियाँ मीरा के संगीत को सुनने से पथ-भ्रष्ट होने से बच गई।

मीरा अपने समय की महान विभूति थी और आज भी हैं।

---

१. उषा गुप्ता, हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत (लखनऊ· लखनऊ विश्वविद्यालय१९६०) पृ० ११३.

द्वितीय खण्ड

द्वितीय-अध्याय
मीराबाई की व्यक्तित्व संरचना और संक्षिप्त जीवनवृत्त

१. मीराबाई : संक्षिप्त जीवनवृत

२. व्यक्तित्व की मूल प्रवृत्तियाँ

३. सर्जनात्मकता की क्षमता और उसके भक्ति का संगीतात्मक श्रोत

४. महासमर्पण

५. निष्कर्ष

१. मीराबाईः सक्षिप्त जीवन-वृत्तः -

अन्य भक्त कवियों की भांति मीराबाई के जन्ममरण और सम्पूर्ण जीवन-चर्या के विषय में निर्विवाद एवं निभ्रान्त होकर कुछ निर्णय देना कठिन है। उनके जीवन की जानकारी पर्याप्त कुहासो से ढकी है। जो प्रकाशमान है, वह भी अनेक रूपों में प्रश्न चिन्हित है।

१.१ जन्म-तिथि एवं जन्म स्थान :-

मीरा की जन्म तिथि के विषय मे अनेक मत हैं। श्री परशुराम चतुर्वेदी इनका जन्म सं. १५५५ था इससे कुछ पीछे का मानते हैं।[1]

श्री सुखबीर सिंह गहलोत के अनुसार मीरा का जन्म श्रावण शुक्ल संवत १५६१ को हुआ। "मिश्रबंधु विनोद में इनका जन्म सं० १५७५ लिखित है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने इतिहास में विनोद के मत की आवृत्ति की है। गुजरात के एक विद्वान श्री नटखट लाल रणछोड़दास

---

१. लीलाधर वियोगी, काव्य कोकिला, मीराबाई (दिल्लीः सूर्य प्रकाशन १९७४) पृ० २.

२. शंभू सिंह मनोहर, मीरा पदावली (जयपुरः रिसर्च पब्लिकेशन्स १९६६) पृ० ३.

३. शभू सिंह मनोहर, मीरा पदावली, (जयपुर· रिसर्च पब्लिकेशन्स १९६६) पृ०३

४. प्रभात, मीराबाई, (बम्बईः हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, १९६५) पृ० १२१.

ने इनका जन्म संवत १५०३, १५०५ के मध्य निर्धारित किया है। डा० प्रभारत ने मीरा विषयक अपने शोध ग्रन्थ में विभिन्न श्रोतों से प्राप्त सामग्री के विश्लेषण ऐतिहासिक घटनाओं के साथ उसकी संगति और ज्योतिष के आधार पर, तिथि गण आदि साक्षियों के आधार पर श्रावण सुदी। सवत १५६१ को ही मीरा का जन्म तिथि सिद्ध किया।[२]

इतना तो निश्चित है कि मीरा का जन्म सोलहवीं शती में हुआ। जयपुर के प्रसिद्ध विद्वान हरिनारायण जी की यही मान्यता है कि मीरा का जन्म मेड़ता परगनै के बाजोली नामक ग्राम में हुआ था। बाद में कुड़की गॉव में आ गये। मुंशी देवी प्रसाद जी ने लिखा है ''रत्न सिंह जी की इकलौती लड़की यही मीराबाई थी जो ग्राम कुड़की में पैदा हुई थी।[३]

१.२ माता-पिता एवं संबंधी :-

जेम्ब टॉड ने अपने राजस्था के इतिहास में राव दूदा जी को मीरा का पिता लिखा है।[४]

किन्तु मीरा राव दूदा की पुत्री नहीं पौत्री थी यह प्रमाणित हो चुका है। मेड़तिया शाखा के प्रवर्तक रावदूदा जी रावजोधा जी के चतुर्थ पुत्र थे। राव दूदा जी के दो पत्नियॉ थी एक सीसोदनी चन्द्रकॅवरी और दूसरी चौहान मृग कुॅवरि। दोनो रानियो से राव जी के ५ पुत्र और एक पुत्री गुलम्ब कुंवरि उत्पन्न हुई। मीरा राव दूदा के पुत्र रत्नसिंह के बेटी थी। स्थानीय किवदंतियों के आधार पर डोडवाना के विद्यानन्द शर्मा ने लिखा है कि मीराबाई की माता का नाम कुसुम कुंवर था। वे टाकली राजपूत थी।

मीरा बाई के नाना कैलन सिंह जी थे। मीरां की माता कहॉं की थी, इसका उन्हें पता नहीं लगा।[१]

हरिनारायण पुरोहित के अनुसार, ''मीराबाई के माता का नाम वीर कुॅरि और नाना का नाम सुल्तान सिंह था। ये जाति के झाला राजपूत थे।[४]

---

१. प्रभात, मीराबाई, (बम्बई: हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, १९६५) पृ० १२५.
२. वही पृ० १२५.
३. परशुराम, मीराबाई की पदावली, (प्रयाग. हिन्दी-साहित्य सम्मेलन १९८४) पृ० २२.

मेवाड़ मे प्रचलित जब मीरा दो वर्ष की थी तब उनके माता का देहान्त हो गया। तब राव दूदा ने मीरा को मेड़ते अपने पास बुला लिया।

१.३ शिक्षा-दीक्षा :-

मीरा की प्राथमिक शिक्षा अपने दादा रावदूदा जी के पास रह कर हुआ। राव दूदा जी वैष्णव थे। अतः उनके प्रभाव से मीरा के मन पर भक्ति का बीज पड़ा। मीरा के साथ उनका चचेरा भाई जयमल भी शिक्षा पा रहा था। भक्ति भावना की तन्मयता और वीरत्व की महानता और गहराई उनको अपने दादा से प्राप्त हुई। दूदा ने बचपन से ही मीरा को भक्ति की ओर अग्रसर कर दिया था। राज-घराने में साहित्य और कला का विशेष महत्व था। कलाकारों द्वारा गाने बजाने का कार्यक्रम चलता ही रहता था। मीरा को भी संगीत की शिक्षा अवश्य मिली।

१.४ विवाह एवं ससुराल :-

मीरा का विवाह मेवाड के प्रसिद्ध महाराणा सांगा के बड़े पुत्र कुँवर भोजराज के साथ सं० १५७३ में आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ।[३]

मीरा मेड़ते से अपने ससुराल मेवाड़ आकर प्रथानुसार महल में मेड़ती कहलाई। उनका वैवाहिक जीवन अपने पति के साथ सुख से बीत रहा था। मीरा कृष्ण की उपासना में लीन रहती। उनका देवर राणा मीरा के इस भक्ति से चिढ़ता था। राणा के क्रोध का मीरा शिकार भी बनी। पर मीरा जिस भक्ति पथ पर चल पड़ी थी वहां से वापस लौटना असभव था। अचानक उनके ऊपर ब्रजपात हुआ। सं० १५८० के करीब राजा भोज का देहान्त हो गया। इस प्रकार मीरा अपनी छोटी सी आयु में पति सुख से वंचित रह गई।

१.५ भक्ति भावना और कीर्तन गायन :-

मोर मुकुट धारित, श्याम वर्ण कृष्ण को अपना आराध्य मानने वाली भक्त श्रीकृष्ण के आगे मतवाली होकर नाचने वाली प्रेम की दीवानी, मीरा हिन्दी साहित्य और संगीत की एक भक्त कवियित्री हुई है। ईश्वर के प्रति प्रेम और श्रद्धा ही भक्ति है। भक्ति की भावना मानव मन मे प्रारम्भ से ही होती है। मीरा को भी अपने ईष्ट श्रीकृष्ण के साथ बचपन से ही प्रेम हो जाता है। उनके पदों को

देखते हुए अनुभव होता है कि मीरा "जनम जनम की प्यासी" हृदय के भावों को गीति काव्य का आश्रय लेकर अपनी आराध्य को श्रद्धा सुमन अर्पित किया है। इसलिए मीरा पहले भक्त गायिका हैं बाद में कवियित्री, जिसने हृदय की चोट से संगीत के सुरों को काव्य मे समेट कर अपने आराध्य को समर्पित किया। मीरा के समय में शास्त्रीय संगीत अपनी उन्नति पर था। सूर, तुलसी, मीरा आदि कवि अपने भक्ति-संगीत में आत्म विभोर होकर एक अलग ही प्रकार के संगीत का गान कर रहे थे। जो भक्ति संगीत कहलाया। मीरा इसी संगीत की अमर गायिका है। मीरा के एक-एक पद, रस से सराबोर है, जहां सारी कलाएँ मुक्त हो जाती है। वहां संगीत ही एक ऐसी कला है जो इन्सान के मन को छू लेती है। मीरा संगीत के इस व्यापक रूप को पहचान किया और संगीत के इस रूप को भक्ति का माध्यम बनाया। मीरा की आत्मा अपने प्रिय से मिलने के लिए आतुर रहती थी। मिलने के सारे रास्ते बंद हो चुके थे परन्तु मीरा को कहीं भी प्रभु मिलन की आशा न दिखाई दी, तब मीरा हाथ मे इकतारा लेकर संगीत के सुरों को अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बना कर गा उठी - गली .... तो चारों ओर बंद हुई है प्रिया से मिले कैसे जाएं-। भक्ति के नौ प्रकारों में भजन कीर्तन का स्थान सर्वोपरि है। कीर्तन और भजन के द्वारा हृदय की भक्ति भावना सरलता से ईश्वर के सामने प्रस्तुत की जा सकती है। आत्मा और परमात्मा का आपसी तादात्म्य संगीत की मधुर स्वरों के द्वारा आसानी से हो जाता है। मीरा के प्रेम और भक्ति ने पूर्ण पदों के द्वारा नृत्य करके अपने हृदय का सदेश उस सांवरे सलोने श्रीकृष्ण के पास पहुंचाया और सांवरे के रंग में रच गई। मीरा के पद कीर्तनीय भाव से परिपूर्ण है।

उनको पता था कि इस नश्वर देह का उद्धार हरि के गुणगान, भजन-कीर्तन से ही होगा।

"मीरा के प्रभु गिरधर नागर
भजन बिना नर फीको।"

प्रभु-भक्ति ने ही उन्हें कवियित्री एवं गायिका बनाया। कृष्ण के प्रेम में लिप्त संगीत धारा पदों व भजनों के रूप में उनके हृदय से निकली।

१.६ देहावसान :-

मीरा कब परलोक वासी हुई इसका कुछ निश्चित समय और मत नहीं मिलता। कहा जाता है कि जयमल ने मीरा के द्वारका जाने का पता लगा कर मेवाड़ और मेड़ता के ब्राह्मणों को भेजकर वापस मेवाड़ या मेड़ता लाने को कहा। परन्तु मीरा नहीं गई, तब ब्राह्मणों के धरना देने पर मीरा रणछोर जी के मंदिर मे गई फिर, वापस नहीं आई। यह घटना सं. १६३० की है। मीरा का सम्पूर्ण जीवन दुःख और वेदना से परिपूर्ण था। मीरा केवल भक्त ही नहीं थी वे एक कवि, गायिका और सरल ह्रदय की भक्त थी। मीरा के स्वर और पद आज भी लोक ह्रदय में गूंजते है।

२. व्यक्तित्व की मूल प्रवृत्तियाँ :-

मीरा के दादा रावदूदा जी बड़े धर्मात्मा और उदार प्रवृत्ति के थे। कहते हैं मीरा की माता कृष्ण-भक्त थी। मीरा के दादा साधु-संतों की खूब सेवा करते थे। ऐसा कहा जाता है कि एक बार मीरा ने एक साधु के पास गिरधर की मूर्ति देखकर आकर्षित हो गई और मूर्ति पाने के लिए विकल हो गई पर साधु ने मूर्ति देने से इन्कार कर दिया। कहते हैं कि रात में साधु को भगवान ने मूर्ति वापस देने की प्रेरणा दी और अगले दिन मीरा को गिरधर की मूर्ति दे दी गई। हो सकता है इस कथा की सत्यता पर शंका हो पर यह तो हो ही सकता है कि मीरा के मन में बचपन से ही श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति भावना व्याप्त थी। मीरा को बाल्यावस्था से ही साधु सन्तों का संगत मिला। इसी कारण उनमें भक्ति की अधिकता दिनों-दिन बढ़ती गई। राव दूदा वैष्णव थे। उनके यहाँ सभी सम्प्रदायों के साधु संतो का आदर-सत्कार होता था। राव दूदा के साथ बैइकर भाई जयमल और मीरा भगवान की चर्चा में आनंदित हुआ करते थे। इसी कारण साधु सन्तों के सत्संग में भगवत चर्चा सुनने से मीरा में आध्यात्मिकता का विकास हुआ। इसके अलावा उनमें वीरता एवं साहस की कोई कमी न थी। ऐसा भी कहा जा सकता है कि उनमे पूर्व जन्म का संस्कार था जिसके कारण इस जन्म में भगवत भक्ति प्राप्त हुई।

इसी तरह मीरा में बचपन से ही भक्ति की तरफ झुकाव था और आगे चलकर यही उनके जीवन का आधार बना। मीरा का साधु-महात्माओं के प्रति असीम श्रद्धा और स्नेह मीरा की विशेषता है।

पड़ता। मीरा ने अनेक पदों में उस हरि अविनाशी को ही परम ऐश्वर्यशाली एवं लीलामय भगवान को सगुण रूप में अंकित किया है।[1]

जीवन के अन्तिम क्षणों में भी मीरा अपने आराध्य के चरणो में विलीन हो गई। मीरा की मन की साध पूरी हुई और अपने प्रिय के सामीप्य को प्राप्त हुई। जीवन भर जिस प्रिय की चाह मे जलती रही। मरने के बाद उन्हीं में लीन हो गई। मीरा की वेदना, कराह, प्रेम विरह ही उनके गीतो में फूट पड़ा और जो आज तक जनमानस में विचर रहा है।

२.२ अनासक्ति :-

मीरा का सम्पूर्ण जीवन अभावपूर्ण रहा। संसार से उनको विरक्ति हो गई उसका कारण उनका संत्राश पूर्ण जीवन था। अपने छोटी सी आयु में अपने प्रियजनों की मृत्यु देखी, वैधव्य देखा, जिससे उनके जीवन में कठिनाई ही कठिनाई उत्पन्न हो गई। पारिवारिक जीवन छिन्न-भिन्न हो गया था। दुखी मीरा ने अपने मन की शांति के लिए प्रभु भक्ति का मार्ग अपनाया तो ससुराल वालों ने तंग करना शुरू कर दिया। उनके भक्ति के रास्ते में विरोधी बनकर खड़े हो गये। स्वयं स्त्री जीवन के प्रति और जगत संसार के प्रति उनकी विरक्ति बढ़ती गई। भक्ति के रास्ते पर चलते हुए उन्होंने हर अत्याचार को सहा विरोध को सहा और विरोधों ने ही उन्हें और दृढ़ बना दिया। संसार की नश्वरता सांसारिक कटुता ने मीरा को जीवन के प्रति अनासक्त बना दिया था। मीरा बाल्यकाल से ही कृष्ण की दीवानी थी। और इस भक्ति की राह पर चलने से सांसारिकता उनके मार्ग में बहुत बड़ी बाधा थी। जिसने मीरा के मन की भावना को हिला दिया। सांसारिक तिरस्कार, आराध्य से मिलन की तीव्र इच्छा, इच्छापूर्ण हाने में सामाजिक बाधा इन सब कारणों से मीरा का मन विद्रोह से भर उठा। उस कोमल हृदय नारी जो किसी से कुछ नहीं मांगती, फिर समाज, परिवार-जन उसके पीछे पड़े है। वो तो केवल अपने आराध्य श्रीकृष्ण का सामीप्य चाहती है। किसी का धन, घर-बार, राज-पाट गहने कपड़े कुछ नहीं चाहती केवल अपने प्रिय आराध्य का प्रेम चाहती थी। उसको भी समाज सहन नहीं कर सका। ऐसी स्थिति में उसको संसार और समाज के ठेकेदारों से विद्रोह करना पड़ा। इसी कारण उनको संसार से विरक्ति हो गई।

---

१. पं. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, (प्रयागः हिन्दी-साहित्य सम्मेलन शक् १८८४) पृ० ३६-३७.

सम्पूर्ण संसार मीरा के लिए असत्य है अगर कुछ सत्य है तो वह है उसके आराध्य श्रीकृष्ण की भक्ति मीरा प्रेम दीवानी अपने प्रभु की दासी अने सबसे बड़े विरोधी राणा, जिसने मीरा को मारने का हर सम्भव प्रयास किया।

कभी विष भेज देना जिसको अमृत समझ कर पी लेती, एवं कभी सालिग राम समझ कर, साँप पकड़ लेती-

"राणा जी थे क्यानें राखों म्हासूं वैर"

मीरा के दुखी मन से राणा के लिए ये अनुनय विनय निकला पर उसके दुःख को कोई नहीं समझता। मीरा सबसे प्रार्थना करती है मुझे दुखी मत करो। विरोध करने पर कोई सुनता ही नहीं। तो वे व्यथित हो कर तुलसीदास जी को पत्र लिखती है।

"घर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरू भजन करत मोहि देत कलेस मचाई,
मेरे मात पिता के सभ हौ, हरि भक्त सुखदाई,
हमको कहा उचित करिवों है सो लिखियो समझाई।

इस पर गोस्वामी तुलसीदास जी ने "विनय-पत्रिका का यह पद लिख कर भेजा -

"जाके प्रिय न राम वैदेही।
सो नर तजिय कोटि, बैरी सम जच्यपि परम सनेही।
नाते नेह राम के मनियत, सुहृदय सुसेव्य जहाँ लौ।
अंजन कहा आँख जो फूटे बहुत तक कहौ कहां लौ।

चारो ओर से निराश होकर मीरा अपने ईष्ट से प्रार्थना करती हुई कहती है -

तुम बिन मेरी कौन खबर ले गोबरधन गिरधारी।
औरन कू तो और भरोसो, हमको आश तुम्हारी।।

जब मीरा की उपासना माधुर्य भाव की है वे अपने इष्ट देव श्रीकृष्ण को पति के रूप में मानती हैं। जब वह मंदिरो में भजन कीर्तन के लिए पुरूषों के सामने जाती तो लोग उन्हें मना करते। वे कहती कि श्रीकृष्ण के अलावा रहा, पति की मृत्यु के बाद उनके जीवन मे नया मोड़ आया। उस समय सती प्रथा प्रचलित थी पर मीरा अपने पति के साथ सती नहीं हुई। इन्होंने सती-प्रथा का डटकर मुकाबला किया। नारी को जीते जी जला दिया जाये मीरा ने इसका विरोध किया -

"मीरा के रंग लग्यो हरि को
और संग सब अटक परी
गिरधर गास्या सती न होस्या
मन मोहयो धन नामी।"

मीरा ने राजकुल की मर्यादा का उल्लंघन किया था। सती न होना सामंती प्रथाओं के प्रति मीरा का एक कठोर और साहसिक कदम था। हिन्दू नारी के लिए सुहाग से मूल्यवान और कुछ नहीं होता, पर मीरा के अन्तर्मन ने जो ठीक समझा वही किया।

"जग सुहाग मिथ्या, री सजणी होवां हो मर ज्याशी,
वरन् करयो अविनाशी म्हारो काल व्यालण खाशी।"

यह आस्था कृष्ण भक्त की है जो इस संसार को नश्वर समझती है। सुहाग जैसे मूल धारणा पर कटाक्ष मीरा जैसी अदम्य साहसी और सच्ची नारी ही कर सकती है। मीरा अपने गिरधर की अखंड सुहागिन है। वह अपने आप को विधवा नहीं समझती लौकिक पति के न होने पर भी विधवा और सती होने को सोच भी नहीं सकती।

वह तो अपने आराध्य की चिर सुहागन है। लौकिक बंधन टूटने के पश्चात मीरा का सारा ध्यान अपने ईष्ट की भक्ति में रम गया। पर मीरा की भक्ति के संरक्षक उसके ससुर और देवर रतनसिह की मौत के बाद कोई नहीं बचा जो उनके ईश्वर भक्ति, भजन, कीर्तन, साधु, समाज में उठने बैठने और नृत्य करने का संरक्षण देता। विक्रमादितय तो वीरों के विरोधी थे। और जब वह राजगद्दी पर बैठे तो उसका विरोध करने का मार्ग खुल गया और अपनी बहन से मिलकर मीरा को भजन कीर्तन और साधु-संगत से दूर करने का प्रयास किया -

"उदो थोड़ वरज मैं हारा, भाभी मानो बात हमारी।
राणे रोस किया था पर साधो ये मत जारी।
कुल को दाग लगा छै भाभी, निन्दा हो रही मारी।
साधो रे संग बन बन भटको लाज गमाई सारी।
बड़ा घरों में जनम लिया छै नाचो दै दै तारी"।

राणा ने मीरा को अगाध दुख दिया उसको विष का प्याला देकर मारने का प्रयत्न किया फिर काले नाग का पिटारा भेजन कर उनको मारने का यत्न किया -

"राणा भेज्या विखरो प्यालो चरणामृत पी जाणा।
काला नाग पिटारया भेज्या शालग राम पिछाणा।

मीरा का साधु संग और भजन करने के लिए परिवार जन मना करते हैं तो मीरा निडर होकर कहती हैं -

चोरी करां न मारगी नही मै करूं अकास।
पुन्न के मारग चालतां झक मारो संसार।

इस पद में यह सिद्ध होता है कि मीरा ने आराध्य की लाज, संसार ससुराल पीहर आदि की परवाह नहीं किया, राणा के डराने धमकाने पर भी मीरा अपने भक्ति मार्ग पर अडिग चलती रही।

सी सोधो रूठयो तो म्हारो काई कर लेसी
म्हे तो गुण गोविन्द का गास्या हो भाई।

मीरा राणा के विषय में कहती हैं -

थे तो राणा म्हाने उसड़ा लागो ज्यों ब्रच्छन मैं कैर

मीरां ने राणा की मूर्खता को अनुभव बहुत निकट से किया। उन्होंने राणा को अन्यायी भी कहा। मीरां को भारी लोक निन्दा भी सहनी पड़ी। जब घर के ही लोग अपने स्वजन की निन्दा करेंगे तो बाहर के लोगों का क्या कहना। पर मीरा ने अपने भक्ति मार्ग की सारी बाधाओं, परिस्थितियों, परम्पराओं और राजकुल के नियमों को बड़े साहस के साथ स्वीकृतिया किया और उनके बुरे

परिणामों को दृढ़ता से सहन किया। मीरा स्वतंत्र स्वभाव की थी, वह समाज के बनाए मिथ्या रास्ते पर चलना नहीं चाहती थ मीरा ने नारी धर्म के किसी भी विवशता को अपने जीवन में स्थान नहीं दिया। सबकी सुनी पर किया अपने मन का।

मीरा जीवन मे कटुता के विरूद्ध अनवरत संघर्ष करती रही। अपने मन को मधुर बनाए रही, उसका कारण उनकी आत्मशक्ति प्रकृति और प्रारंभिक शिक्षा थी। यह शिक्षा कटु संघर्ष के प्रति निरन्तर अपराजित भाव जीवन के प्रति स्वतंत्र दृष्टिकोण मानसिक दृढ़ता और उदारता की थी।"[१]

मीरा को अपनी भक्ति पर विश्वास था उन्होंने चित्तौड़ छोड़ दिया पर अपने आराध्य की भक्ति का मार्ग नहीं छोड़ा, उन्होंने जबसे नाता तोड़ा लोक रूढ़ियों, लोक-परम्पराओ लोक-मर्यादाओं और नारी की परतंत्रता को तोड़ा। मीरा एक साहसी, भक्त, सामंती युग और समाज की पहली विद्रोहिणी भक्त थी।

२.४ संतों की संगति और धर्म निरपेक्षता :-

मीरा राव दूदा जी की पौत्री थी, रावदूदा धार्मिक और भगवान चतुर्भुज के उपासक थे। राव दूदा के कारण मीरा के परिवार में धार्मिक भावनाओं का बाहुल्य था। इसी कारण बचपन से ही मीरा को ईश्वर से प्रेम हो गया था। मीरा कृष्ण भक्त थी। बचपन मं एक बारात को देखकर उन्होंने अपनी माता से पूछा था कि मेरा वर कौन है तो माता ने श्रीकृष्ण की मूर्ति की ओर संकेत किया उसी दिन से मीरा ने अपने ह्रदय में श्रीकृष्ण को बिठा लिया। कृष्ण प्रेम का वही अंकुर आगे चलकर प्रगाढ़ प्रेम का रूप ले लिया। राज परिवार मं भजन-मंडलिया और धर्म प्रचारक आया जाया करते थे। संत समागम और हरि कथा को सम्मान जनक कार्य समझा जाता था। मीरा के पदो में संत समागम और हरि कथा का उल्लेख मिलता है। मूर्ति-पूजा का प्रचलन होने के कारण नित नेम का महतव था। सवेरे उठते ही पहले प्रभु का दरसन करना कर्तव्य समझा जाता था-

"चरणां मत को नेम हमारे नित उठ दरसन जास्या"

---

१. प्रभात, मीराबाई, (बम्बई हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर १९६५) पृ० १२९.

मीरा साधु संतो का बहुत आदर-सत्कार करती थी। सभी धर्मो और सम्प्रदाय के साधु संतो की सेवा की एवं उनसे भक्ति सत्संग का लाभ उठाया। राणा परिवार में शंकित दृष्टि से देखे जाने पर भी उन्होंने संत समागम को नहीं छोड़ा। मीरा विविध सम्प्रदायों के साधु-संतो से भगवद चर्चा करती। कृष्ण के लीला की चर्चा सुनती। उनका विश्वास था कि हरि चर्चा सुनने से पापों का नाश होता है। और आत्मा का उद्धार होता है।

"म्हा सुण्या हरि अधम उधारण
अधम उधारण भव भय तारण।"[1]

मीरा साधु संतो के बीच बैठकर भजन कीर्तन और नृत्य किया करती थी।

"मीरा रे प्रभु गिरधर नागर भजण बिणा नर फीका।"

साधु संतों और समाज में हरि कीर्तन की यह परम्परा मीरा के युग मे पूरे देशों में प्रचलित थी। मीरा के समय में राजस्थान में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय और पंथ का प्रभाव था। मीरा हर सम्प्रदाय और पंथो के साथ हरिचर्चा करती थी। और सुनती भी थी। मीरा ने उस समय के विभिन्न सम्प्रदायों में प्रचलित कृष्ण भक्ति के स्वरूप को समझा था। भक्तिकाल की यह चिन्तनधारा दो रूपो में मिलती है, सगुण भक्ति धारा और निर्गुण भक्ति धारा।

आगे चलकर सगुण भक्ति धारा का कृष्ण भक्ति धारा और राम भक्ति धारा और निर्गुण भक्ति धारा का ज्ञान मार्गी धारा और प्रेम मार्गी धारा प्रचलन में आई। मीरा के काव्य का जब सृजन हुआ। उस समय नाथ सम्प्रदाय, संत मत सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदाय प्रचलित थे। नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक गुरू गोरखनाथ थे। इसे सम्प्रदाय की साधना पद्धति हठयोग के नाम से जानी जाती थी। नाथ मत में हठयोग, तंत्र-मंत्र आदि का महत्व था। राजस्थान में नाथ सम्प्रदाय योगियों का काफी प्रभाव था। ये योगो द्वारा अपने ईष्ट को योगी के रूप में देखते थे। मीरा के पदों में कुछ ऐसे पद मिलते है जिससे नाथ मत का कुछ प्रीााव उनके काव्य में झलकता है। मीरा अपने अनेक पदों में जोगी जोगियाँ शब्द का उच्चारण करती है। उनके प्रेम में स्वयं जोगन बनने को तैयार है -

---

१. डाकोर की प्रति पद, ३४

१. " माला मुंदरा मेखला रे वाला खप्पर लूंगी हाथ
जोगीण होई जग ढूंढसें रे म्हारा शवलिया री साथ।

२. जोगिया जी आस्यों जी रण देस
नेवाज देखू नाथ नै धार कसै आदेश।

३. जोगी मत जा मत जा मत जा
पाई परू मै तैरी चेरी हो।

नाथ सम्प्रदाय के प्रचलित परम्पराओं को मीरा ने अपने काव्य में कभी नहीं अपनाया। नाथ मत के कुछ शब्द मीरा ने अपने काव्य में प्रयोग किया है पर उनका नाथ सम्प्रदाय से कोई लेना देना नहीं था। जोगी और जोगिया शब्द राजस्थान में आज भी प्रचलित है और इसका प्रयोग स्त्रियां भी करती हैं। मीरा का काव्य में नाथ पंत जैसी कट्टरता नहीं है। मीरा के इस पद से अनुभव होता है कि वह नाथ पंथ की कट्टरता को नहीं मानती थी -

" कहा भयां था भगवा पहरया
[illegible] तजि भयो सन्यासी
जोगी होया जुगत णा जाणा उलट जणमण
की फांसी।।"[1]

२.४ मीरा का सम्प्रदाय :-

साहित्यकार जिस समय जन्म लेता है उस समय की चिंतन धारा का उस पर प्रभाव अवश्य पड़ता है अगर मीरा के साहित्य पर उस युग के चिंतन का प्रभाव पड़ता है तो यह कोई अनहोनी नहीं है। मीरा एक भक्त साधिका थी अपने प्रिय के लिए पूरी तरह से समर्पित है। उनको किसी सम्प्रदाय का नहीं कहा जा सकता है। वह भक्त थी वह अपने जीवन में साधु-संतो के सम्पर्क में आई और भ्रमण किया। इसी दौरान जिसके सम्पर्क में आती थी अगर उसका कुछ प्रभाव पड़ता है तो यह स्वाभाविक ही है लेकिन उन्होंने कभी साम्प्रदायिक भावना को लेकर नहीं चली। उनके साहित्य में नाथ सम्प्रदाय के शब्द "जोगी", "जोगियाँ" संत सम्प्रदाय के साम्य माने और चैतन्य और बल्लभ

---

१. डाकोर की प्रति, पद २

'सम्प्रदाय' के कुछ विशेष वार्ता की झलक मिलती है लेकिन कुछ बातो में समानता ाक यह अर्थ नहीं है कि वह किसी विशेष सम्प्रदाय से सम्बन्धित थी। मीरा के कई पदों से यह स्पष्ट होता है कि वे किसी विशेष सम्प्रदाय से दीक्षित नहीं थी। मीरा के जीवन का बस एक ही लक्ष्य था अपने ईष्ट कृष्ण के दर्शन करना और उन्हीं की भक्ति में लीन रहना उनकी चर्चा उनके लीला की चर्चा, कीर्तन और पद गायन में व्यस्त रहती थी। मीरा के पदों से उल्लेख ये बात और भी स्पष्ट होती है कि वह किसी सम्प्रदाय की नहीं है। वे हमेशा कहती ''मुझको गिरधर मिले यह मेरे पूर्व जन्म का भाग्य है। मेरी और कृष्ण की प्रीत जन्म-जन्म की है।[१]

३. वैष्णव मत :-

मीरा का आविर्भाव जिस युग में हुआ। उस युग में रामानुजाचार्य के वैष्णव मत का अत्यधिक प्रचार हो चुका था। वैष्णव धर्म का उनके राजकुल में भी प्रभाव था। इसलिए मीरा के चिन्तन पर भी इसी मत का प्रभाव पड़ा। समाज के परिवेश के वातावरण का मनुष्य की सोच पर काफी प्रभाव पड़ता है। मीरा के वैष्णव होने के विषय मे श्री तारक नाथ जी कहते है इतिहास के पृष्ठ उसके साक्षी है कि मीरा का घरेलू वातावरण विष्णु भक्ति से प्रभावित था। मीरा का काल भागवत पुराण मे कहे गये वैष्णव भक्ति के नवीन रूप से परिप्लावित था। अतएव मीरा का पितृकुल और श्वसुर कुल भी इससे अछूता न था। मीरा ने अपने ईष्ट के साकार रूप को पूजा।[२]

वैष्णव भक्ति में श्रद्धा, विश्वास और प्रबलता की प्रधानता होती है। मीरा के पदो में वैष्णव सम्प्रदाय की झलत मिलती है। वैसे सच्चाई यही है कि प्रेम दिवानी मीरा किसी भी सम्प्रदाय से बंध कर रचना नहीं की। मीरा ने तो केवल अपने प्रेम को शब्दों में बांधा है। यह तो संयोग मात्र ही है कि मीरा के काव्य पर हर सम्प्रदाय की थोड़ी बहुत झलक दिखाई पड़ती है। मधुर रस का विषय अलौकिक है। इसका आनन्द इन्द्रियों से अलग होता है। मीरा सगुण रूप की आराधना की है -

म्हारो प्रणाम बांके बिहारी जी

मोर मुकुट माथ्या तिलक विराज्या

कुंडल अवलोकारी जी।

---

१. सं० ब्रजरत्नदास. मीरा स्मृति ग्रन्थ, (काशीः हिन्दी साहित्य कुटीर सवत् २००५) पृ० ३६-३६.

अधर मधुर धर वंशी बजावा श्रीझ, रिझावा ब्रजनारी जी
या छवि देख्या मोध्यां मीरा मोहना गिरधर धारी जी।[1]

३. सर्जनात्मक की क्षमता और उसके भक्ति का संगीतात्मक श्रोत

३.१ ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा :-

मानव के हृदय की वे भावनाएँ जो शांति के समय मन में उदित होती है और कविता के रूप में प्रकट हो जाती है। कोमल मन का कवि अनुकूल अवसर पाते ही अपने काव्य का सर्जन करने लगता है। कवि के मन पर उस युग का परिवेश या वातावरण का प्रभाव किसी न किसी रूप में पड़ता ही है। मध्य-कालीन काव्यकारों की कविता की सर्जना स्वान्तः सुखाय और बहुजन हिताय होती थी। मनुष्य के हृदय पर चोट या उसके अहं को चोट पहुंचाई जाती तो उसके मग्न हृदय से जो शब्द फूटते है वह काव्य बन जाते है। मीरा को बचपन से ही श्रीकृष्ण से प्रेम हो गया था और आगे चलकर उन्हीं संस्कारों का विकास हुआ मीरा में गजब की सर्जनात्मक शक्ति थी सर्जनात्मक की इच्छा जितनी प्रबल होती थी उतनी ही तीव्रता से वह बाहरी शक्ति पर प्रहार करती। मीरा कीर्तन किया करती थी और आनन्द मग्न हो जाती थी। और आगे चलकर उनमे सर्जना की शक्ति जाग्रत हुई। वे पदों की रचना करती फिर संगीत और ताल में बांधकर गाती। उनके व्यक्तिगत जीवन में दुःख प्रताड़ना और संघर्ष के माध्यम से उनके काव्य में जिस व्यथा पीड़ा विरह संसार के जीवो से निराशा के जिस ओज का संचार हुआ है वह शायद ही कोई कवियत्री भक्त में हो। मीरा अपनी हर प्रकार की अभिव्यक्ति को सर्जन करने की क्षमता रखती है। वह बहुत निडर और साहसी नारी है। मीरा के पद बहुत सरल और हज भाव के हैं। कीर्तन और भजन के द्वारा हृदय की भक्ति सरलता से ईश्वर तक पहुंचती थी क्योंकि "सुर" स्वयं ओंकार है और आत्मा और परमात्मा के रास्ते जोड़ने में भजन और कीर्तन का रास्ता सीधे परमात्मा तक पहुंचता है। इस प्रकार मीरा ने अपने सुरमयी पदारें को गाकर और नृत्य करके अपने हृदय की इसी कार उन्होंने सुरो की मोहनी शक्ति से प्रभु श्रीकृष्ण को

---

२. मीरा स्मृति ग्रन्थ, पद १३, धर्म सम्प्रदाय (लाजवंती) पृ० १४६.
२. शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्यः युग प्रवृत्तियाँ (दिल्लीः अशोक प्रकाशन, १६७७) पृ० १२४.

भी अपने वश में करके लीन हो गई। मीरा को प्रभु शक्ति की लगन ईश्वरीय देन है। परमात्मा ने उनके हृदय को काव्य और संगीत के गुण से भर दिया। महादेवी जी कहती है, "सुख दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेष कर गिने चुने शब्दो में स्वर साधना के उपयुक्त चित्र कर देना ही गीति है।"[1]

३.२ गुरू कृपा :-

साधना करना मानव जीवन का लक्ष्य है। वह साधना किसी भी रूप में हो सकती है। परन्तु गुरू की साधना का अर्थ तो यही बनता है कि वह अपने शिष्य को साधना का सही मार्ग दर्शाए -

गुरू गोविन्द दोऊ खड़े काके लागो पायँ

बलिहारी गुरू आपने, गोविन्द दियो बताय।

गुरू की महिमा को हमारे शास्त्रों में बहुत उच्च और श्रेष्ठ स्थान दिया है। मीरा के गुरू कौन थे। इस विषय में सोचना है। अज्ञात साधु संतो से भी मीरा की प्रेरणा मिलती रही। मीरा किसी भी लौकिक गुरू की शिष्या नहीं थी। मीरा बचपन से ही श्रीकृष्ण भक्त थी। अगर उनको किसी गुरू की आवश्यकता होती तो वह स्वयं उसकी तलाश करती या किसी कृष्ण सम्प्रदाय से दीक्षित हो जाती। हाँ, यह अवश्य माना जा सकता है कि प्रत्येक सम्प्रदाय के अच्छे प्रभावों को उन्होंने ग्रहण किया हो लेकिन उन्होंने किसी भी सम्प्रदाय से संबंध नहीं जोड़ा था। पर कोई निश्चित आधार न होते हुए भी मीरा का संबंध चैतन्य सम्प्रदाय से जोड़ा जाता है। चैतन्य महाप्रभु राधा कृष्ण के उपासक थे और राजस्थान, गुजरात आदि प्रदेशों का पर्यटन कर चुके थे। इस आधार पर ही अनुमान लगाया जाता है कि मीरा से उनकी भेंट हुई थी और उन्होंने मीरा को अपना शिष्य बनाया था, किन्तु दोनो के समय को ध्यान में रखते हुए देखें तो इनका परस्पर मिलना असंभव सा जान पड़ता है। सम्भावना मात्र इतनी है कि "चैतन्य के शिष्य जीव गोस्वामी से मीरा को चैतन्य का संदेश प्राप्त हो गया होगा।"[1]

---

१. रामानन्द द्विवेदी, मीरा साहित्य में गीति तत्व, संगीत पत्रिका (हाथरसः सगीत कार्यालय, १९७८) पृ० १२.

१. सकुमान सेन, मीराबाई और चैतन्य, "मीरा स्मृति ग्रन्थ" (कलकत्ताः बंगीय हिन्दी पारिषद सन् २००६)

२. वियोगी हरि, मीराबाई, सहजो बाई, दयाबाई का पद संग्रह, (प्रयागः गांधी हिन्दी पुस्तक भडार सं० १९८७)

वियोगी हरि मीराबाई के सिद्ध गुरू जी गोस्वामी की शिष्या मानते हैं। इनका सम्बन्ध चैतन्य सम्प्रदाय से स्थापित करते हैं। इन सबके लिए उन्होने एक पद को आधार बनाया हैं-

अब तो हरि नाम लौ लागी।

सब जग को यह माखन चोरा, नाम धर्‌यो वैरागी।

कित्त छोड़ि वह मोहन मुरली, कहं छोड़ी सब गोपी।

श्याम किशोर भयो नवगोरा चैतन्य जाको नाव

गोर कृष्ण की दासी मीरा, रसनाकृष्ण वसै।[२]

कुछ पदो के आधार पर रैदास को लोग मीरा का गुरू मानते है।

गुरू रैदास मिले मोहि दुरे घुर से कलम भिड़ी

सतगुरू सैन दई जब आके जोते में जोत अड़ी।

सतगुरू म्हारी प्रीत निभाज्यो जी।

गुरू म्हारे रैदास सखन चित्त सोई।

री मेरे पार निकस गया सतगुरू मारया तीर।

गुरू युग की मान्यताओं और आस्थाओं के केन्द्र बिन्दु हैं। गुरू की महिमा सर्वव्यापरी है। मीरा के लिए प्रेरणा के स्त्रोत है।

४. महासमर्पण :-

भगवान की भक्ति की भावना मनुष्य में कई प्रकार से हो सकती है जैसे सखीभाव, दास भाव, स्नेह भाव, मधुर-भाव, रति भाव से हो सकती है। इन पाँचो भावों में प्रेम का अंश कुछ न कुछ जरूर होता है। मीरा की भक्ति मे मधुर भाव है। मीरा नारी है और वह अपने ईष्ट के लिए सब कुछ न्यौछावर करने की शक्ति रखती है। मीरा ने शान्त भाव से अपने ईश्वर श्रीकृष्ण को रिझाया है। मीरा कृष्ण को अपना पति मानती हैं। उनका प्रेम श्रीकृष्ण के लिए असीमित है। उनके प्रेम का लक्ष्य श्रीकृष्ण हैं। उनके चरणों में वे अपना सब कुछ अर्पित कर देती है। उनका अपना

कुछ नही है। नारी के मन में अपने पति को सब कुछ अर्पण करने की जो क्षमता है और अपने व्यक्तित्व को अपने प्रिय में विलय करने की जो शक्ति है अपने धर्म के लिए जो त्याग है वही गुण मीरा में विद्यमान है।

मीरा अपने गोपाल की आराधना करते समय किसी भी तरह का मानसिक विचलन का अनुभव नहीं करती, उनका ह्रदय समर्पित भावना और प्रेम से ओत-प्रोत नारी ह्रदय है। उन्होंने कृष्ण को अपना प्रियतम मानकर उनके सम्मुख अपने कुल मर्यादा, सामाजिक और नैतिक बंधन कुछ महत्व नहीं रखते। उनके मन में तो सिर्फ प्रेम की गंगा बहती है अपने प्रियतम के लिए, इसलिए तो मीरा ने अपने पद में कहा है:

"मीरा तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
साधुन संग बैठ-बैठ लोक लाज खोई।
अब तो बात फैल गई जानत सब कोई।

मीरा के मन में अपने प्रियतम के लिए आत्म-समर्पण की प्रबल इच्छा है वह अपने गिरधर के हाथों बिक जाना पसन्द करती है। वे अपने आपको नायक की नायिका समझने की बातें कहती है कि चाहे सारा संसार मुझे बिगड़ी हुई कहे, द्रोही कहे पर मैं तो अपने श्रीकृष्ण की हूँ, उनकी कृष्ण के प्रति प्रेम और विकल लोक लाज छोड़कर सबके सामने आने लगी। लोगों के समझाने बुझाने पर वे कहती -

चित चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत हियड़ा आन पड़ी

मीरा अपने आपको कृष्ण को पूरी तरह से समर्पित करके कहती है। मीरा के पति के मौत के बोद मीरा अपने कृष्ण के प्रेम में लीन हो जाती है और वही प्रियतम हर क्षण उनके ह्रदय में वास करता है तो उनको कैसा दुख -

"म्हारो वरन करया अविनाशी
काँड व्याणण खाशी
म्हारो प्रीतम हिरदां वशनां

दरस लह्यों सुख राशी

मीरा रे प्रभु हरि अविनाशी

सरण गह्यां थे दाशी।"[1]

मीरा का पूरा काव्य में उनकी आत्म समर्पण की अतुलनीय भावना व्यक्त है, वह अपने प्रियतम पर अपने आपको न्यौछावर कर देना चाहते है, उनके इशारे पर नाचना, पहनना ओढ़ना चाहती है, उनके साथ बोलना खेलना चाहती है। वह कहती है उनका अपना कुछ नहीं है जो कुछ है सब उनके प्रियतम श्रीकृष्ण का है –

" तन मन धन गिरधर पर वारां

चरण कमल मीराँ विलमाणी,

तन मन धन कारे वारणो ह्दय धारे।"[2]

मीरा की समर्पण भावना ही प्रेम की पराकाष्ठा है। हिन्दू नारी अपने आपको अपने प्रियतम पर न्यौछावर करके अपने प्रेम और समर्पण भावना को व्यक्त करती है। इसलिए मीरा ने लिखा है:

"मैं तो गिरधर के घर जाऊँ

गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम देखत रूप कुमाऊं

रैण पड़े तब ही उठी जाऊँ, भोर गए उठि आऊँ

रैण दिना वाके संग खेलूँ ज्यूं ज्यूं वाहि रिझाऊ

जो पहिरावै सोई पहिं, जो दे सोई खाऊं

मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण विण पल न रहाऊ

जना बैठावें तितही बैठू बेचे ते बिक जाऊं

मीरा के प्रभु गिरधर नागर बार बार बिकि जाऊँ।"

ऐसा कह समर्पण की भावना को पराकाष्ठा का अनुभव किया जा सकता है, अपने प्रियतम के हाथ बिक जाने के बाद शेष क्या रह गया, समर्पण की भावना अपने आप में प्रेम की पराकाष्ठा है। अपने प्रिय को सर्वस्व अर्पण कर देती है। लोक लाज को त्याग देती है। संसार नश्वर है, सब

---

१. डा० भुवनेश्वर मिश्र, मीरा की प्रेम साधना (दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, १६३४) पृ० ४६-४७.

कुछ खत्म हो जाता है पर प्रेम यही मनुष्य की धरोहर है और मीरा उसी प्रेम को अपने हृदय में समाये बैठी अपने प्रियतम के साथ एकाकार होने के लिए अपने ईश्वर के प्रेम में विलीन होने के लिए समर्पण की भावना और त्याग से ही सम्भव हे। मीरा ने भी अपने प्रियतम प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व अपने ईष्ट भगवान श्रीकृष्ण को अर्पण कर दिया। मीरा के पद मे इसी भाव की अभिव्यक्ति है :-

"हे री म्हासूँ हरि बिनि रहूयो न जाय"

अपने प्रियतम को सब कुछ अर्पण करने के लिए निश्छल होना आवश्यक है। छल, कपट वाला हृदय समर्पण की शक्ति नहीं रखता। एक निश्छल प्रेमी हृदय ही ऐसा कठिन कार्य करने का साहस रख सकता है। इस प्रकार यह तो बेझिझिक कहा जा सकता है - मीरा ने अपने प्रियतम के प्रेम में अपना सब कुछ अर्पण कर दिया। मीरा के पदों में उनके समर्पण की भावना सहज ही अनुभव हो जाती है। रिश्तेदारों की यातना विरोध लौकिक कष्ट आदि, भी मीरा के समर्पण भावनाओं को नहीं दबा पाए- बल्कि इन सब कष्टों को सहने के बाद मीरा का हृदय और भी शक्तिशाली हो गया और वे पूरी तरह से अपने आप को अपने प्रियतम के हवाले कर देती है, न उनको विष का प्याला मार सका, न कांटो की सेज उनके प्रेम में बाध बनी, उनके प्रेम का लक्ष्य है - श्रीकृष्ण। मीरा के अविनाशी प्रियतम है। जिनके साथ उनको सच्चा प्रेम है।

"अविनासी स्यूं, बालवां है जिनसूं सांची प्रीत।"

मीराबाई ने अपने आँसुओं से खींच कर, प्रेम रूपी बेल को अपने हृदय में बोया है।

२. भगवती उपाध्याय, भक्त मीराबाई (वाराणसीः गौरी शंकर प्रेस, १९८६) पृ० ११-१६.

५. निष्कर्ष :-

मीरा का युग भक्ति का युग था। मीरा राजघराने से संबंधित होते हुए भी क्रान्ति का सन्देश देती है। मीरा ने सती प्रथा को नकारा। इस जगत को नश्वर माना और अपने पारलौकिक जीवन के लिए अपना जीवन ईश्वर भक्ति से लगाया। मीरा का जीवन पीड़ा से ओत-प्रोत था। मीरा के समय में सामाजिक परिस्थितियाँ ऐसी थी जिससे मीरा के मन में काव्य और भक्ति का उदय हुआ।

हिन्दी साहित्य का भक्ति काल एकता का प्रमाण है। यह काल भजन कीर्तन का भक्ति आन्दोलन का युग था, मीरा इस युग की महान विभूति थी जिन्होंने अपने जीवन में हर उन रूढ़ियों को तोड़ा जिनसे उनके भक्ति में बाधा पड़ती थी। मीरा सम्पूर्ण रूप से अपने इष्ट के प्रति समर्पित थी।

द्वितीय खण्ड

तृतीय-अध्याय
मीराबाई का सृजन संसार

१. मीराबाई की सर्जनात्मक क्षमता
२. मीराबाई का सृजन-संसार : कृतित्व परिचय
३. मीरा-पदावली
४ .कृतित्व में संगीतात्मक प्रवृत्तियाँ
५.निष्कर्ष

१. मीराबाई की सर्जनात्मक क्षमताः -

अब तक के विवेचन से यह स्पष्ट हो चुका है कि मीराबाई का व्यक्तित्व, अनेक अर्थों मे, असामान्य था। वे किसी सामान्य अथवा साधारण व्यक्ति की भांति केवल मरने के लिए नहीं जीना चाहती थी, बल्कि लीक से हटर कर कुछ ऐसा करना चाहती थी। जो स्वयं उनके लिए सार्थक हो और समाज के लिए भी कल्याणकारी हो। चरित्र की यही विशिष्टता और दृढ़ता उनके काव्य-सृजन संसार की भी आधारभूत क्षमता रही है। उनके भीतर का भक्त, कवि, संगीतज्ञ और व्यक्ति एक ही सम्पूर्णता के विविध आयाम थे। यही कारण है कि उन्हीं की भांति उनका काव्य भी असाधारण है। यह असाधारणता राजस्था की उस मिट्टी की गंध से परिपूर्ण है, जिसे मीराबाई ने जिया और पहचाना था। शायद इसीलिए लोक-जीवन और लोक छन्द की जैसी पकड़ और सहजता मीरा के पदों में मिलती है, वैसी किसी अन्य भक्त-कवि में नही मिलती। लोक चित्त को वे उसकी समग्रता एवं तीव्रता से समझती थी। यह उनकी सर्जनात्मक क्षमता का प्रमुख सम्बल था, जिसने उनके काव्य को प्रमाणिक सहज, बनाया था। उनके पास एक सच्चे सर्जक की अर्न्तदृष्टि थी, जो गहरे निरीक्षण और ठोस अनुभवों का परिणाम थी। जीवन की छोटी-छोटी बातें भी उनकी वाणी के स्पर्श से महत्वपूर्ण और अलौकिक हो उठती थी। लघु से विराट तक कि यह यात्रा अद्वितीय थी।

समृद्ध सृजनात्मक क्षमता के कारण मीरा का अनुभव लोक तो विस्तृत है ही, उसकी व्यापकता को भावन और भावुकता का सुन्दर साहचर्य भी प्राप्त हुआ है। यह भाव-प्रवणता

मीरा-काव्य की निजी विशेषता है जो अपनी संगीतमयता में और भी प्रभावशाली हो जाती है। इसे समझाने के लिए मीरा के रचना-संसार से परिचय अनिवार्य है।

२. मीरा का सृजन-संसारः कृतित्व-परिचयः

पदावली

२.१ परिचय :-

मीरा ने अपने ह्रदय की अनुभूतियों को पदों के रूप में व्यक्त किया है। ये पद गेय हैं जो यत्र तत्र सर्वत्र लोक जीवन में बिखरे हैं। मीरा के पद सबसे अधिक लोकप्रिय हैं जो मीरा के भक्ति भावना से पूर्ण गीत/पद मार्मिकता और विरहपूर्ण भावना के कारण मध्य युग में जो लोकप्रिय थे ही आधुनिक काल में भी उनकी लोकप्रियता कम नहीं हुई है। मीरा के पद संगीत-सभा और भजन-मंडली में आज भी अपना वर्चस्व स्थापित किए हुए हैं। मीरा के पद जनसमुदाय के मुख पर रहते थे। मीरा की इस ख्याति के कारण मीरा के पदों का रंग रूप में कुछ फेरबदल हुआ। मीरा की प्रसिद्धि के कारण कुछ अन्य कवियों ने उनके नाम से अपनी रचनाओं को प्रख्यात करने का प्रयास किया। मीरा के पदों में कई स्वयंलिखित संग्रह प्राप्त है। ऐसी दशा में मीरा के कितने पद अपने लिखे हैं और कितने दूसरे के कवि के हैं। मीराबाई की पदावली के प्रायः सभी पद गीतों के रूप में है। उनमे से अधिकांश में पहले एक टेक देकर उसके नीचे तीन चार अथवा अधिक चरण जोड़ दिये गए हैं और पूरे पद को किसी न किसी राग एवं रागिनी के अन्तर्गत रखा गया है। गीतों को यह परम्परा हिन्दी में उसके आदि काल से ही चली आती है।[1]

मीरा शीर्षक के अन्तर्गत डाकोर एवं काशी की हस्तलिखित प्रतियों के जो पद यहाँ संकलित हैं वे सन् १६५६ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष आचार्य ललित प्रसाद सुकुल जी से मिले। इनके अतिरिक्त काशी, कानपुर, रायबरेली, मथुरा, उदयपुर, जोधपुर में १६ हस्तलिखित प्रतियों में मीरा के जो पद विद्यमान हैं वे प्रायः अट्ठारहवीं शताब्दी में लिपिबद्ध हुए हैं। डाकोर की

---

१. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली (प्रयागः हिन्दी साहित्य सम्मेलन शक् १८८४) पृ० ३.
२. भगवान दास तिवारी, मीरा का काव्य, (इलाहाबाद, साहित्य भवन १६६०) पृ० ३.

प्रति में १६ और काशी की प्रति में १०३ पद है। देश-विदेश में मीरा के पदों की जो हस्तलिखित प्रतियॉ उपलबध हैं उनमें भी मीरा के ६६ से लेकर ७२४ तक पद पाए जाते हैं। ''मीरा ग्रन्थ'' मे सुकुल जी ने हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर मीरा की पदावली प्रस्तुत की है।[2]

डाकोर की प्रति में ललिता, जो मीरा की सखी और सेविका थी के द्वारा लिखी गई थी, वह मीरा के साथ अंतिम समय तक रही। वह वृन्दावन, मेड़ता, मेवाड़ से होती हुई डाकोर होती हुई द्वारका तक गई। डाकोर की प्रति रणथम्भौर जी के मन्दिर में थी और किसी भक्त ने उसको सोने से मढ़वा दिया। लोग उसके दर्शन और पूजा करने आते। इस डाकोर की प्रति में ६६ पद हैं और उनकी भाषा प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी तथा लिपि देवनागरी मिश्रित गुजराती है। डाकोर की प्रति में मीरा ने यह पद गाया है। -

आली म्हाणों लागो वृन्दावन णीकां
घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा
दरसण गोविन्द जी का।

२.२ विषय वस्तु :-

मीरा के प्रत्येक पद का विषय अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति और प्रेम प्रकट करना है उनके पदो में अपने आराध्य से मिलने की उत्कंठा, उनका रूप वर्णन, उनका विरह वर्णन उनकी लीला, उनका धाम आदि का वर्णन हुआ है। मीरा अपने ईष्ट के संबंध में तरह-तरह की कल्पनाएँ करती हैं और अपने रचनाओं द्वारा उक्त किसी भी विषय पर भावपूर्ण, प्रेमपूर्ण, शब्दों को लेकर बार-बार उनका गुणगान करती हुई नहीं थकती। मीरा के पदों में विनय, प्रेम, मधुर भाव, विरह-वेदना, ऋतु, पशु-पक्षी, रूढ़ियों को तोड़ना आदि से सम्बन्धित रचनाएँ मिलती है। मीरा के पदों को विषय उनके आन्तरिक भावों को उद्‌गार ही हैं। इस विषय में उनके बहुत सारे पद मिलते हैं जिससे उनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। मीरा अपने आराध्य के सौन्दर्य को देखकर सहसा आकर्षित हो उठती है -

'' आली रही म्हारे नैनाणां वाण पड़ी
चित चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत हिवण अड़ी गड़ी

कब की ठाड़ी पंथ निहारो अपने भवण खड़ी

अटक्यौ प्राण सांवरो प्यारो जीवणं मूर जड़ी

मीरा गिरधर हाथ विकाणी लोक कह्यो बिगणी"

मीरा अपने आराध्य के प्रेम में इतना लीन हो गई उनके भक्ति में बाधा डालने वाले स्वजनों से मतभेद उत्पन्न हो जाने पर भी अच्छी आज्ञा का उल्लेख करना, स्वजनो द्वारा दिये गए कष्टों को स्वीकार करना फिर भी अपनी भक्ति की राह पर अनवरत चलते रहना ही मीरा ने अपना ध्येय बना लिया था। स्वजनों से भेद होने पर मीरा कहती हैं -

माई म्हाणों सुपणां मां पररायां दीनानाथ

थे मत वरजा माइणी, साधो दरसण जावाँ

मीरा ने राणा द्वारा सताए जाने पर घर को त्याग देती है। मीरा ने मानसिक एवं शारीरिक यातनाओं का वर्णन अपने पदों में किया है। मीरा ने अपने विरह दशा की ओर अपने आराध्य श्री कृष्ण को परिचित कराया -

" जा राया णा प्रभु मिलण बिध क्या हो"

मीरा के पदों में गुरू के विषय में भी वर्णन मिलता है। कुछ पदों में उपदेश, विनय के भी पद मिलते हैं जिसमें उन्होंने जीवन के अपने अनुभवों का वर्णन किया है

"सौवरो नन्द नन्दन, दीठ पड़या भाई"

मीरा को पदावली का विषय, रचनाकार के निजी जीवन की भावनाओं की अभिव्यक्ति है। मीरा के सम्पूर्ण जीवन में एक ही भाव, भक्ति-भाव एक ही रस, माधुर्य रस, एक ही रंग, प्रेम का रंग सम्पूर्ण पदावली में छाई हुई है।

२.३ जीवन-दृष्टि :-

मीरा के काव्य में जीवन की विषादमय और प्रेममय भावना की अभिव्यक्ति होती है। बचपन में अपने माता का वियोग, फिर दादा, पिता, पति, श्वसुर आदि के मृत्यु का वियोग सहना पड़ा। मेवाड़ में ग्रह-कलह का दुख, भाई जयमल के राज्य छिन जाने का दुख, भाई जयमल के राज्य छिन जाने का दुख इन्हीं सब बातें से मीरा के हृदय में दुःख और विरक्ति की भावना भर गई, और उनका मन श्रीकृष्ण के अनुराग की ओर खिंचती चली गई। बचपन से लेकर अंतिम समय तक

श्रीकृष्ण के प्रति आसक्त रही। जीवन के प्रति उनकी दृष्टि निराशाजनक थी। उनका विचार था कि यह संसार मिथ्या है। इस संसार की प्रत्येक वस्तु नाशवान है। केवल ईश्वर का नाम ही इस भव सागर से पार उतार सकता है –

"राम नाम विनि मुकुति न पावा फिर चौरासी जावां
साधु संगत भां भूलण जावां, मुरख जणम गवायां
मीरा रे प्रभु थारी सरणै, जीव परम पद पावां।[1]

संसार की नश्वरता और ईश्वर की आराधना के अलावा भक्ति और भजन पर भी मीरा के अलावा भक्ति और भजन पर भी मीरा बल देती हैं वह कहती हैं यह शरीर बड़े भाग्य से मिलता है और अल्प समय के लिए मिलता है। इसीलिए इस बहुमूल्य समय को व्यर्थ नहीं गवांना चाहिए, अपना बहुमूल्य समय ईश्वर की आराधना में लगाना चाहिए :-

नाहि ऐसो जनम बारम्बार
का जानूं कछु डराय प्रगटे मानुसा अवतार
बढ़त छिन छिन घटत पल पल जान न लागे वार
भव सागर अति जोर कहिये अनन्त उड़ी धार
रामनाम का बांध बेड़ा, उतर पर ले पार।[2]

संसार के सारे रिश्ते-नाते मिथ्या हैं। वह भाग्य पर विश्वास करती हैं। वह पूर्व जन्म के कर्मों के फल पर विश्वास करती है। उनका सोचना है कि तीर्थ यात्रा, व्रत, भगवे कपड़े पहनना, मुक्ति का मार्ग नहीं है। इस शरीर के ऊपर क्या अभिमान करें यह तो पंचभूत से बना है और पंचभूत में ही मिल जाएगा। केवल ईश्वर भक्ति ही एक ऐसा रास्ता है जो इस भवसागर से पार उतार सकता है।

"तीरथ वरतां ग्याण कथंता कहा लियां करवत कासी
यो देहो रो गरब णा करण माटी मा मिल जासी
कहा भयां या भगवा, पहरयाँ, घर तज लयो सन्यासी"।

---

१. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, (प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन शक १८८४) पृ० १४७ पद संख्या १५६ से १६५ तक.

मीरा की दृष्टि में जीवन नश्वर है, जगत मिथ्या है इसलिए ऐसे मिथ्या संसार का क्या करना अगर इस जीवन से कुछ प्राप्त करना है तो वह है ईश्वर का नाम रूपी रस जिसका मनुष्य को पान करना चाहिए।

"राम नाम रस पीजे मनुआ"

ईश्वर की भक्ति ही अंतिम राह है, जिस पर चलकर मनुष्य सद्गति को पा सकता है।

२.४. अभिव्यक्ति पक्षः -

मीरा के काव्य में लोकतात्विक रूप दिखाई पड़ता है। मीरा का काव्य सरल एवं बनावट से दूर, प्रेमपूर्ण भक्ति से ओत-प्रोत है। मीरा की प्रेम की अनुभूति उनके उस समय के लोक भाषा के ही माध्यम से अभिव्यक्ति हुए है। उस समय जो भाषा प्रचलित थी उसी में मीरा ने अपने अनुभूतियों को श्रीकृष्ण के सम्मुख अभिव्यक्त किया है और इसी कारण लोक शब्द, लोक कथन की व्यवहार में आने वाली शैलियों का प्रयोग स्वाभाविक है। मीरा के काव्य में लोकोक्तियॉ, मुहावरे, लोक-भाषा में प्रचलित शब्दों का प्रयोग है। लोक जीवन से संबंधित जीवन के युगोयुग के अनुभवों का सार संग्रहित है। जन जीवन के यही व्यवहारिक अनुभव सूत्र का काम करते हैं। मीरा के काव्य की अभिव्यक्ति होने के कारण बहुत मार्मिक और गहरा प्रतीत होता हैं मीरा के पदों में विभिन्न प्रकार के प्रसंगों में तरह तरह के लोकोक्तियों का प्रयोग हैः-

"दाइयाँ ऊपर लूण लगाया, हिवणाँ करवत् सारयों
कहा बोझ मीरा के कहिये सौ पर एक घड़ा"
मीरा ने अपने पदों में मुहावरों का भी प्रयोग किया है।
"सोती तो सुपण अबिया जी, सूपण विस्वावीस"
आप जो जाय विदेसां छाये, हमको पड़ गया झील"

मीरा ने राजस्थान भाषा के कई मुहावरों का प्रयोग किया है। मीरा के भाषा में लोक भाषा का प्रयोग मिलता है। वह मीरा के स्थानीय राजस्थानी भाषा जो उनकी मातृ भाषा है उसी को अपने भक्ति प्रेम का माध्यम बनाया है। मीरा के पद ब्रज, गुजराती आदि भाषा में भी प्राप्त होते हैं। मीरा

---

२. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली (प्रयागः हिन्दी साहित्य सम्मेलन १९५४) पृ० १४७ पद संख्या

के पदों में प्रेमानुभूति और सच्चाई तो है ही उनकी भाषा में भी समय की प्रचलित लोक-भाषा ही है जिनसे आम जनता, साधु सन्त सभी प्राण दशा से प्रभावित है।

२.५ काव्य कला :-

हिन्दी साहित्य की गीत काव्य की रचना करने वाली भक्त महिला है। पद रचना में कबीर, तुलसी, सूर के साथ-साथ मीरा का भी वही स्थान है। मीरा के काव्य की भाव-सम्पदा ही अद्वितीय है। मीरा का काव्य स्वयं के लिए था उन्होंने पद-रचना के लिए पदों की रचना नहीं की। उनके काव्य में कोमल भावनाएँ, उनकी प्रेम-आसक्ति सीधे और सरल तथा प्रभावशाली ढंग से हुए हैं। मीरा के भाव उनके प्रेम विह्वल आत्मा से अपने आप निकल पड़ते हैं। मीरा का हर पद सीधे ह्रदय को मोहित करता है। ह्रदय में कोमल स्थ्कान का स्पर्श करता है जिससे मन तड़प उठता है। मीरा की अनुभूति की अभिव्यक्ति सबल, सुन्दर है। मीरा के पदों की सबसे बड़ी विशेषता है बन्धन मुक्त जो काव्य युग परम्परा से चला आ रहा है। मीरा उससे स्वतंत्र है उनके ऊपर इसका कोई बन्धन नहीं है। मीरा के पद आडम्बरहीन है, मीरा में प्रेम है, आवेग है, बन्धनों को तोड़ने का साहस है परन्तु उसमे असंयम, अश्लीलता और विद्रोह की भावना नहीं है। मीरा ने स्वतंत्र रूप से अपने ह्रदय के उद्गार को अभिव्यक्त किया है उसमे लोक-लाज, समाज का भय, स्वजन का भय, नाममात्र को नही है और इसीलिए उनका काव्य भी हर बन्धन से मुक्त है।

२.६ भाषा :-

मीरा पदावली उनकी फुटकर पदों का संग्रह है जो पदावली कहलाया। मीरा की पदावली में संग्रहीत पदों में एक ही भाषा का प्रयोग नहीं है। उसमें भिन्न भाषाओं का प्रयोग मिलता है। उनमें से कुछ पद ऐसे हैं जो राजस्थानी भाषा में है कुछ गुजराती और कुछ ब्रज भाषा में है परन्तु अधिकतर राजस्था गुजराती और ब्रज भाषा या कहीं-कहीं खड़ी बोली और पंजाबी भाषा में पदों की रचना की है। मीरा के पद जिस रूप में पाए गए हैं। उसी में रचित भी है। प्रसिद्ध बंगला साहित्यकार डॉ सुनीति कुमार चटर्जी ने राजस्थानी पर लिखी अपनी पुस्तक में मीरा का भाषा के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखते है। कुछ राजस्थानी (मारवाड़ी) के कुछ कवि अपने भावों को महत्व के

---

१५६ से १६५.

कारण समग्र भारत के हो गए जैसे "मीराबाई"। मीरा की रचना समग्र उत्तर भारत में इतनी लोकप्रिय बनी कि धीरे-धीरे उनकी शुद्ध राजस्थानी भाषा परिवर्तित होकर शुद्ध हिन्दी की ओर झुकी है।[१]

हिन्दी विद्वान डा० सत्येन्द्र कहते हैं मीरा का कृतित्व लोक भूमि के बहुत निकट था। अतः प्रत्येक क्षेत्र में मीरा के पदों की भाषा उस क्षेत्र की ही भाषा हो गई। फिर भी राजस्थनी उनकी जन्म मेड़ता की भाषा थी, गुजरात मे रही थी। अतः गुजराती पर भी उनका अधिकार हो सकता है, ब्रज भाषा पर भी उनका अधिकार हो सकता हे, ब्रज भाषा इस युग मे सर्वत्र सामान्य व्यक्ति की भाषा थी इन तीनों में ही उन्होंने अपने पद रचे हो, यह असंभव नहीं है।

मीरा की पदावली की मूल भाषा ब्रजभाषा है पर मारवाड़ी गुजराती दोनो भाषाओं का भी प्रभाव पदावली पर है। मुस्लिम राज्य होने के कारण कुछ-कुछ उर्दू फारसी के शब्द भी योग हुए हैं। जैसे तकसीर, हाजिर, नाज़िर, सिलाम आदि। कहीं-कहीं संस्कृत शब्द भी है, पुरातन, मीन, लोचन आदि। राजस्थानी शब्द, झिरमिट, भीड़, सगपड़ आदि।

२.७ छन्द :-

मीरा ने मुक्तर गेय पदों की रचना की है। उनके विभिन्न पद, राग-रागिनियों में बद्ध हैं। मीरा के पद पिंगल के नियमों की दृष्टि में रखकर नहीं लिखे गए हैं। उन पदो की संगीतात्मक लय और सुन्दर भावों को स्वाभावित संगीत है। डॉ० सावित्री सिन्हा के शब्दों में -

"मीरा के पदों की स्वच्छन्द गीत तथा मधुर संगीत पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए भाषा को छन्द अथवा पिंगल के बन्धनों में नहीं बांधा उनकी रागात्मक अनुभूतियों संगीत के माधुर्य में बिखर गई थी।[२]

---

१. सुनीत कुमार, ब्रज साहित्य का इतिहास, पृ० २४८.

२. सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रयां, (इलाहाबादः रामनारायण पब्लिशर एंड बुक सेलर) पृ० १५२

३. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, (इलाहाबादः रामनारायण पब्लिकेशन एंड बुक सेलर) पृ० ५८८.

मीरा का काव्य भावपूर्ण है। मीरा ने भक्ति भावना को कह कर जो भाव सुन्दर उत्पन्न हुए वही बाहर काव्य के रूप में आ गए। मीरा स्वच्छन्द भक्त कवियत्री हैं। उनको किसी भी प्रकार के बंधन से बांधना उचित नहीं।

डॉ० रामकुमार के शब्दों में - मीरा में छन्द शास्त्र न देखकर उनकी उस भक्ति भावना की ओर ध्यान देना चाहिए जिसने उन्हें कृष्ण काव्य के काव्यों में महत्वपूर्ण स्थान दे रखा है।[३]

२.८ संगीत :-

संगीत मानव हृदय के दुःख दर्द की दवा ही मीरा के पदों में छन्द शास्त्र की अपेक्षा संगीत के अधिक समीप है। साहित्य और संगीत दोनों ही मनुष्य के भावनाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम है। मीरा का काव्य तो सम्पूणर्रतया संगीतमय है। अधिकांश कृष्ण काव्य के भक्त कवि का साहित्य संगीत से भरपूर है। मीरा के पदों की रचना राग-रागनियों के आधार पर हुई है। मीरा के पदों में नृतय संबंधी, वाद्य-संबंधी पद प्राप्त होते हैं :-

" पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे"

शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ लोक-संगीत के अनुसार काव्यों की रचना की है। मीरा ने अपने पदों में लोकगीतों के शब्दों का भी प्रयोग किया है। डॉ० सावित्री सिन्हा के अनुसार, "उन्होने पदो की रचना के उपयुक्त अनेक प्रचलित छन्दो में अपनी रचनाएँ की जिनमें लोकगीतों में प्रयुक्त शब्दावलियों का भी प्रयोग किया है।[१]

मीरा के संगीत ज्ञान के विषय में डॉ० उषा गुप्त लिखती हैं - "मीरा के पद पिंगल शास्त्र के अनुरूप भले ही न हों परी संगीत की दृष्टि से मीरा का प्रत्येक पर्व संगीत साधना के लिए वरदान है। हमारे देश की भजन और कीर्तन परम्परा अमूल्य निधि है।[२]

---

१. सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियाँ, (दिल्ली, आत्मा राम एंड सन्स सन् २०१०) पृ० १५४.
२. ऊषा गुप्त, हिन्दी के कृष्ण भक्ति साहित्य में संगीत (लखनऊः लखनऊ विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन १६६०) पृ० ३६३.
३. ललित प्रसाद शुक्ल, द्वारा संकलित, मीरा स्मृति ग्रन्थ

३ मीरा पदावली :-

मीरा ने अपने ह्रदय की भावनाओं को पदो के रूप में व्यक्त किया है। यह पद जीवन के हर मोड़ पर मिलते हैं। मीरा पदावली आज भारत में सबसे लोकप्रिय काव्य है। मीरा के पदों का सम्पादन कुछ प्रमुख विद्वानों ने किया है। जैसे - नरोत्तम स्वामी, ललित प्रसाद शुकल, परशुराम चतुर्वेदी आदि।

''मीरा स्मृति ग्रन्थ'' में शुक्ल जी ने हस्त-लिखित प्रतियो के आधार पर मीरा की पदावली प्रस्तुत की है। मूलतः गेय परम्परा से संकलित उपलब्ध पदावली पर इस परम्परा का प्रभूत प्रभाव है जो स्पष्टतः लक्षित भी होता है। जब कंठहार रूप में शताब्दियों पर्यन्त जीवित रहने वाली उपलब्ध पदावली लोक-काव्य नहीं है।[३]

उपलब्ध पदावली व्यक्ति विशेष के भावमय ह्रदय की देशकालीन व अत्यन्त मरूण अभिव्यंजना है जो इतनी मार्मिक, सहज एवं गंभीर है कि जन ह्रदय पर अनायास ही प्रतिबिब्ति हो जाती है।

मीरा के पदों मे अनेक चमत्कारों का वर्णन मिलता है एवं एक ही भाव के कई पद मिलते हैं: जिसमें विरह के पदों की बहुतायत है। मीरा के पदों में विभिन्न प्रान्तों के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। गेय परम्परा के अन्तर्गत मीरा पदावली में लोकप्रिय शैली के पद बारह मासा, होली, मंगलगीत, सखा गीत आदि मिलते हैं। मीरा के पद का मार्मिक चित्रण -

''सावण आवण कहि गया रे कर गया कौल अनेक
गिणता घिस गई म्हारी आंगलिया की रेख।''

मीरा की पदावली में गाथाओं का भी उल्लेख मिलता है जैसे मीरा संवाद- पदावली से प्राप्त पदों के अनुसार संत रैदास को मीरा गुरू कहती थीं।[१]

मीरा की प्राथमिक शिक्षा मेड़ता में हुई थी। मेवाड़ के राज घराने में महाराणा के संगीत और साहित्य के प्रेमी होने की प्रसिद्धि हो चुकी थी। ऐसा अनुमान होता है कि मीरा के संगीत और काव्य की शिक्षा में कोई व्यवधान नहीं था, संगीतम राजघराने की शोभा होती है। संगीतकारों का राजघराने

में आदर-सत्कार होता ही रहता था। इसलिए मीरा को साहित्य और संगीत कला का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का समय मिला। मीरा के द्वारा हस्तलिखित कोई भी पद प्राप्त नहीं होता पर मौखिक परम्परा ही मीरा की पदावली का एमकात्र आधार है। मीराबाई का जीवन जिन विषम परिस्थितियों में से निकला है। उस समय में उनके पदों के गायन की स्वर-लिपि की कोई व्यवस्था थी। मीरा "पद" के लिए पद की रचना नहीं करती थी। अपितु वे तो मात्र अपने आराध्य के प्रेम में लीन होकर जो कुछ अनुभव करती थी उनको पदों के रूप में गाकर अभिव्यक्त करती थी।

मीरा द्वारा रचित किसी भी रचना का उनके अपने हाथों से लिखी हुई कोई रचना प्राप्त नहीं होती। और फिर भी कई रचनाओं को मीरा के नाम से जोड़ा जाता है। मीरा की रचनाओं

३.१ मीरा पदावली की सर्वश्रेष्ठता :-

हिन्दी साहित्य में गीति काव्य की रचना करने वाले में मीरा अद्वितीय हैं।

एस०टी० कालरिज के अनुसार - "मीरा का प्रत्येक गीत सम्पृक्त संवेदना और बिम्बं विधायिनी प्रतिमा का एक ऐसा स्वयं स्फूर्ति निराकृत कलात्मक और शाब्दिक अभिव्यजना है जिसमे गीतिकाव्य के वे समस्त उपादान सन्निविष्ट है। हेगल ने कवि के आन्तरिक जीवन के रहस्यों उसकी आशाओं उसके उद्वेलित आहलाद, दुख विवाद पूर्ण क्रंदन भी शुद्ध कलात्मक अभिव्यक्ति कहा है।[1]

मीरा के पदों में एक विलक्षणता और सम्मोहन है जो बरबस मन को बाँध लेती है। मीरा की रचना सीधे ह्रदय पर चोट करती है। मीरा के पदों में कोई कथा नहीं है। मीरा की भावना सीधे उनके ह्रदय से निकलती है। इसलिए वह ज्यादा प्रभावित करती है। उनके पद सीधे, सरल एवं स्पष्ट है। उनके पद बन्धन रहित है। वह स्वतंत्र है। भाव, छन्द, भाव किसी वस्तु का बन्धन नहीं है। उनके पद स्वयं ह्रदय से बन कर निकलते थे। मीरा अपने आराध्य के प्रेम में बिह्वल होकर पद का गान करती थी और वह पद बिल्कुल सरल शब्दों में होती थी जिससे उस समय के आम लोग भी समझ लेते थे। मीरा के जिन पदों में विरह की अभिव्यक्ति हुई है और वही विरही पद सीधे मन को

---

१. पद्मावती झुनझुनवाला मीरा व्यक्तित्व एवं कृतित्व, मीरा स्मृति ग्रन्थ, (अजमेरः साहित्य निकेतन, १६७२) पृ० ४७.

छूते है। मीरा के पदों की सरलता, मधुरता आज तक लोगों के मनों पर राज्य कर रही है। जो कविता मनुष्य के पीड़ा से जुड़ी होती है, वह नश्वर होती है, उसे जीवित रखने के लिए किसी आवश्यकता नहीं पड़ती, वह हर समय लोगो के मन में बसी रहती है।

मीरा का काव्य भाव प्रधान है। उनका मुख्य उद्‌देश्य अपना प्रेम, विरह, पदो के द्वारा व्यक्त करना। आचार्य परशुराम जी कहते हैं - स्वतः निकल पड़ रहे है। उन्हें अपने कलेवर का बाध्य रूप की कोई अपेक्षा नहीं थी। कलापक्ष से कहीं अधिक उनमें भाव पक्ष की ही प्रधानता होने पर भी उनके काव्य के अनेक लक्षणों से युक्त भी दिखलाई पड़ते है। मीरा के पद में एक आवेग है, एक राग है बंधनों की सीमा को तोड़ने का साहस है उनके काव्य में कहीं भी अश्लीलता नहीं दिखाई पड़ती।

मीरा हमारे सामने एक कवियित्री के रूप में भी और एक कृष्ण-भक्त के रूप में भी दिखाई पड़ती है। उनका सारा जीवन उनके अन्तर्मन की विरह से तड़पता रहा। पिया मिलन की चाह में विरहिणी इधर-उधर घूमती रहती। उनके रचनाओं पर उनके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण प्रभाव पड़ा है। मीरा के पदो की विशेषता है - श्रीकृष्ण के रूप वर्णन और उनके सौन्दर्य की चर्चा।

मीरा का सम्पूर्ण पद विरह वेदना से परिपूर्ण है। शायद ही कोई कवि हो जिसने विरह का इतना सजीव वर्णन किया है।[१]

आज इस देश में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो दीवानी मीरा को न जानता हो संगीतकार उनके 'पद' को आत्म-विभोर होकर गाते हैं। हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्त कवियों की कोई कमी नहीं है। पर जो ख्याति मीरा को मिली है शायद ही किसी कृष्ण-भक्त कवियों को मिली है। मीरा के पद कीर्तन प्रधान होने के कारण संगीत से परिपूर्ण हैं। मीरा के पद गायकों और श्रोताओं को आत्म-विभोर करने की क्षमता रखते हैं।

मीरा के पदों की यह विशिष्टता ही उनकी चरम उपलब्धि है और इसलिए भक्ति के वरदान संगीत के श्रृंगार और जन-जन के कंठधर है। मीरा की निर्भीकता का एक उदाहरणः-

---

१. पं. ओकार नाथ दिनकर, मीरा स्मृति ग्रन्थ, (अजमेरः साहित्य निकेतन १९७२) पृ० ८५.
१. भगवानदास, मीरा की भक्ति, और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन (दिल्लीः वाणी प्रकाशन) १९९० पृ० १२.

"सी सोथो रूठयों तो म्हारों काई कर लेसी"

४. संगीतात्मक प्रवृत्तियाँ :-

मीरा का जन्म उस समय में हुआ जब भारतीय संगीत उन्नति की ओर बढ़ रही थीं वह मध्यकाल का समय संगीत का स्वर्ण-युग था। अकबर के दरबार में तानसेन, बैजू, गोपाल, नायक आदि संगीत के दिग्गज कलाकार अपने स्वरों से संगीत को सजा रहे थे। उसी समय मीरा, तुलसी आदि कवि अपने भक्ति संगीत के द्वारा अलग ही तरह की संगीत का अलख जगा रहे थे। जो भक्ति संगीत कहलाई। माया और द्वेष आदि से रहित, वे ईश्वर के प्रेम में लीन, मनुष्य के ह्रदय में भक्ति भावना का बीज बोने वाला संगीत भक्ति संगीत ही था।

मीरा की शिक्षा-दीक्षा मेड़ता में हुई। उनके दादा राव दूदा वैष्णव भक्त थे। और संगीत के प्रेमी थे। इसीलिए मीरा के मन में प्रारम्भ से हरी संगीत काव्य और भक्ति का संस्कार बचपन से ही मिला। मीरा की प्रवृत्ति शुरू से ही भक्ति और संगीत की तरफ थी। उनकों प्रारम्भिक शिक्षा के अन्तर्गत काव्य और संगीत की भली-भांति शिक्षा मिली, मेवाड़ के राजघराने में भी साहित्य और संगीत का पूरा प्रभाव था। मीरा को अपने ससुराल में भी साहित्य और संगीता का वातावरण मिला पर मायके से मीरा को संगीत के अभ्यास का अवसर मिला। मीरा के समय में संगीत में खासकर नृत्य और गाने का अधिक प्रचार था, स्त्रियों को संगीत की शिक्षा देना आवश्यक समझा जाता था राजकुल में राजकुमारियों को संगीत शिक्षा दी जाती थी। मीरा के दादा रावूदादा जी के यहाँ साधु-संतों का आना-जाना रहता था और भजन कीर्तन में संगीत का सार्थन भी होता रहा था। इसी करके मीरा को भी संगीत के संगत में आने का मौका मिला और इस तरह मीरा का झुकाव संगीत की तरफ होना स्वाभाविक था। ससुराल में संगीत प्रतिभा के लिए अच्छा वातावरण मिला। मेवाड़ के सिसोदिया राजवंश में उन दिनों संगीत प्रेमी महाराणा कुंभा के कारण प्रसिद्ध था। राणा कुंभा सरस्वती के उपासक थे उनको संगीत का गहरा ज्ञान था। महाराणा कुंभा ने संगीत के विषय मे कई ग्रन्थ लिखे। संगीत प्रदीपिका, संगीत सुधा, संगीत राजे। इसके अलावा संगीत रत्नाकर तथा जयदेव के "गीत-गोविन्द की टीका" रसिक प्रिया के नाम से लिखा।

इसलिए जिस राजवंश में संगीत का इतना बोलबाला हो उस महल में बचपन से आई कृष्ण-भक्त मीरा संगीत के प्रभाव से कैसे वंचित रह सकती हैं

मीरा के समय में स्त्रियॉ घर में गाती थी। मध्यकाल के संगीत की जो उन्नति हुई उसमें मीरा के पदों को बहुत श्रेय है।

मीरा के एक-एक पद में रस है। भावपूर्ण है और संगीत के स्वरों से सजा है। पंडित ओंकार नाथ ठाकुर कहते हैं "सर्वव्यापी और सहज स्वर के बिना साहित्य का श्रेष्ठतम अंग काव्य कैसे उत्कर्ष पा सकता है। काव्य को स्वर का ताल का और संगीत का संबल चाहिए ही।"[1]

मीरा संगीत के इस रहस्य को समझती थी। मीरा ने अपने सुरों की रस से भगवा को भी वश में कर लिया। मीरा की प्रसिध्दि सिर्फ काव्य के कारण नहीं हुई बल्कि इनके संगीत की मधुरता ने उनके काव्य को गीतिकाव्य बना दिया। मीरा के पदों में काव्य से ज्यादा संगीत का महत्व है। मीरा ने अपने काव्य को संगीत के द्वारा अपने प्रिय को रिझाने का मध्यम बनाया। क्योंकि ईश्वर तक पहुंचने का यही सीधा प्रेमोद्‌गार और अपना दर्द अपने काव्य और संगीत के माध्यम से व्यक्त किया। यही वजह है कि आज भी मीरा के पद उसी तरह से मानव मन को द्रवित करते हैं। जैसा कि उस समय स्वयं उनके ह्रदय को दुःख उन्हें द्रवित करता था। मीरा का गान उनके दुःखी ह्रदय की आवाज उनके गिरधर को पहुंचता था तो स्वयं श्री कृष्ण अधीर हो जाते थे। मीरा के पदों में संगीत रस प्रचुरता है। मीरा के पदों को देखकर महादेवी वर्मा ने कहा "ये सारे पद गीति जगत की अद्‌भुत सामग्री है।"

इस प्रकार मध्यकाल में जहाँ शास्त्रीय संगीत को बड़े-बड़े कलाकार संगीत के उन्नति में योगदान दे रहे थे वहीं भक्ति कालीन संगीत प्रेमी भक्त गायक भक्ति कालीन संगीत को उन्नति की ओर ले जा रहे थे।

डॉ० रामकुमार के अनुसार - ***"गीतिकाव्य के अनुसार मीरा कविता की आदर्श है।"*** मीरा के कंठ में सरस्वती का वास था जो उनके संगीत में मिलकर जन-जन तक पहुंची। मीरा के पद सीधे ह्रदय पर छाप डाल देने वाले है। मीरा समकालीन कई कृष्ण भक्ति कवियों ने संगीत में रूचि दिखाई और संगीत को ईश्वर प्राप्ति का माध्यम बनाया। मीरा ने गायन के साथ-साथ नृत्य को अपनाकर कृष्ण-काव्य को अत्यधिक भावपूर्ण बना दिया।

"पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे"[1]

---

१. प्रभुलाल गर्ग, संगीत पत्रिका, (हाथरसः संगीत कार्यालय जनफर, १९७८) पृ० १७.

१. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, (इलाहाबादः रामनारायण बुक सेलर्स) १९५४.

मीरा का काव्य आत्म स्फुरित है स्वरों में प्रेम अनुभूति या समर्पण की भावना है। यही भक्ति संगीत का अस्तित्व है संगीत रचना करने वाले मीरा के काव्य को पाकर धन्य है। मीरा को वृन्दावन के संगीतमय वातावरण मिलने से उनका संगीत, ज्ञान और भी विकसित हुआ। वृन्दावन संगीत का गढ़ है.। इस प्रकार मीरा की संगीतात्मक प्रवृत्तियाँ बचपन से ही थी। समय और वातावरण की प्राप्ति से उनका काव्य और संगीत अमर हो गया।

५. निष्कर्ष :-

मीरा का साहित्य सृजन सर्वथा स्वान्तः सुखाय बहुजन हिताय थी। मीरा का काव्य प्रेममय काव्य है। मीरा के पदों में उनकी ह्रदय की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। मीरा के प्रत्येक दर्द संगीत साधना के लिए एक वरदान है। भजन-कीर्तन का महाता है, मीरा के रचनाओं, गीत-गोविन्द का टीका, नरसी जी म्हारो माहेरो, राग गोविन्द, मीरा मल्हार, गरबा-गीत। इन सभी को विद्वान मीरा की रचना नहीं मानते। मीरा की वास्तविक रचना उनके पद ही है। मीरा के मूल पद राजस्थानी मे लिखे गए है। क्योंकि मीरा भाषा होने के कारण उन्हीं पदों को मीरा के पद मानते है। मीरा के समय में चारण साहित्य का प्रचलन था। मीरा ने कुल की मर्यादा को त्याग दिया था। इसलिए चारण साहित्य में उनका उल्लेख नहीं मिलता। मीरा ने अपने पदों को लिपिबद्ध नहीं किया। इन्हीं कारणों से मीरा की अमूल्य रचनाएँ विवाद ग्रस्त रही हैं। फिर भी गीत-रचना में मीरा का प्रमुख स्थान है। मीरा के विरह प्रधान पद अद्वितीय है।

तृतीय खण्ड

संगीतात्मक आधार पर मीरा काव्य का भावलोक एवं अन्तर्दर्शन

प्रथम अध्याय - मीराकाव्य में भगति और जगति का द्वन्द्व संगीत

द्वितीय अध्याय - मीराबाई का भावलोक तथा संगीतात्मक आंकलन

तृतीय अध्याय - मीराबाई का अन्तर्दर्शन तथा अन्तस्संगीत

तृतीय खण्ड

प्रथम-अध्याय

मीराकाव्य में "भगति" और "जगति" का द्वन्द्व संगीत

काव्य और संगीत दोनों ही सृष्टि के विपरीतों के सांमजस्य को व्यक्त करते हैं। सामान्य जीवन में द्वन्द्व अथवा टकराहट की स्थितियां नकारात्मक मानी जाती हैं, मगर काव्य-संगीत आदि कलाओं में यही स्थितियां सकारात्मकता का सृजन कराती हैं। पहले संकेत दिया जा चुका है कि रचनाकार के आत्म और जगत के वास्तव की टकराहट से ही रचनाएं जन्म लेती है अर्थात् रचनात्मकता के लिए द्वन्द्व एवं तनाव अनिवार्य होता है। तनाव रचना की भावभूमि है और उसके विमुक्ति का नाम ही रचना की भावभूमि है और उसके विमुक्ति का नाम ही रचना अथवा कला है। यह तनाव अथवा द्वन्द्व वह उद्वेलक संगीत है जो हर श्रेष्ठ कलाकार के मन में बजता रहता है और रचना के लिए प्रेरित करता रहता है। इसीलिए कहा जाता है कि प्रेरणा बड़ी होने से ही रचना बड़ी होती है। प्रेरणा की निर्धनता और कला गुणों को ग्रहण लगाती है।

मीरा काव्य में "भगती" और "जगती" अर्थात् आध्यात्मिकता और सांसारिकता के द्वन्द्व का संगीत निरन्तर बजता रहता है। इसमें संदेह नहीं कि भक्त कवियत्री मीरा का सारा झुकाव आध्यात्मिकता की ओर है, लेकिन उनकी यह आध्यात्मिकता सांसारिकता से टकरा कर और उसे समझ कर ही पल्लवित होती है। इतना ही नहीं अपने इष्ट देव कृष्ण के रूप में यह सांसारिकता की आध्यात्मिकता तक उठती हुई दिखाई देती है। बल्कि श्रीकृष्ण में दोनों का उदात्त समन्वय है।

१. मीरा-पदावली की मूल प्रेरणा :

सभी जानते हैं कि कवि की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति ही काव्य है। वैसे ही अनुभूतियों की अभिव्यंजना ही भक्ति है। यों तो सामाजिक राजनैतिक और धार्मिक वातावरण का प्रभाव हर मानव के हृदय पर पड़ता है पर भक्त कवि के हृदय पर अधिक ही पड़ता है।

मीरा के मानस पटल पर भी उस समय की राजनैतिक और धार्मिक वातावरण का प्रभाव पड़ा। हर मानव के मन में भक्ति का बीज जन्म से ही रहता है। परिस्थिति के अनुकूल होने पर वही भक्ति भावना प्रस्फुटित हो जाती है। मीरा का जन्म राज-घराने में हुआ था। अपने दादा राव दूदा जी के देख-रेख में उनका लालन-पालन हुआ और उन्हीं के संगत में मीरा के बाल मन में श्री कृष्ण के लिए भक्ति का अंकुर फूटा। मीरा के जीवन काल में चारों तरफ धार्मिक और भक्ति की धारा बह रही थी। उसका भी प्रभाव उनके हृदय पर पड़ा। मीरा का अपना जीवन ही इनके पदों की मूल प्रेरणा है। बचपन से ही मीरा श्रीकृष्ण की मूर्ति से प्रेम करती थीं। और उन्हें अपना सर्वस्व समझती थीं, विवाह के बाद ससुराल में भी वह अपने अलौकिक पति के मृत्यु के बाद मीरा पूरी तरह से कृष्ण के प्रेम में मग्न हो गईं और वही प्रिय श्रीकृष्ण का मिलन ही उनके जीवन का ध्येय बन पाया। वे अपने आप को समाप्त करके भी अपने प्रिय के दर्शन की इच्छा रखती थीं।

मीरा को निश्छलता, मधुर, सरल, मन से अपने हृदय को उद्‌गार पदो के रूप में किया। मीरा ने वही कुछ पद के रूप में व्यक्त किया जो कुछ अपने अन्दर अनुभव किया। उनके हृदय में अपने आराध्य से मिलन की तीव्र उत्कंठा थी ओर न मिल पाने पर उनके हृदय में जो कष्ट था जो वेदना थी उसको किसी न किसी रूप में व्यक्ति होना ही था और वही भाव अपने आप पदों के रूप में व्यक्त होने लगे। मीरा ने कविता करने के लिए काव्य की रचना नहीं की वे तो अपने कृष्ण की भक्ति में विभोर होकर स्वतः गा उठीं :-

"प्यारे दरसन दीजो आइ
तुम बिन रहयो न जाई
जल बिन कमल चन्द बिन रजनी
आकुल व्याकुल फिरु रैन दिन
विरह कलेजो खाई
तुम बिन रहयो न जाई।"

मीरा के सारे जीवन में अनुभव और दुःख दर्द ही उनकी प्रेरणा रही है जो कुछ समाज से उनको मिला था, वही उनकी प्रेरणा का स्रोत बना। अपने लौकिक जीवन में उन्हें सुख नहीं मिला

और बचपन का प्रेम उनके हृदय में अंकुरित होने लगा प्रिय के विरह में दीवानी मीरा स्वतः गा उठतीं-

"क्यों तरसावौ अन्तर जामी
आन मिलो किरपा करि स्वामी
मीरा दासी जनम-जनम की
परी तुम्हारे पाई"।

मन की तड़पन और प्रिया की मिलन की इच्छा काव्य के रूप में वह निकला और जो कुछ गाया वही काव्य बन गया।

मीरा के साहित्य सृजन का उद्‌देश्य अपने आराध्य प्रीतम श्रीकृष्ण की भक्ति थी। कृष्ण मीरा के प्रीतम आराध्य सभी कुछ थे।

जगत संबंधी धारणा :

मीराबाई ने अपने अनुभव के आधार पर मानव को यही जताया की यह संसार नश्वर है। उनमें बचपन से ही संसार के प्रति विरक्ति की भावना थी। उनके ध्यान सिर्फ अपने आराध्य श्रीकृष्ण के तरफ ही था। बचपन में ही अपनी माता को खो दिया। और युवावस्था आने तक अपने पिता और भाई को युद्ध स्थल में देखा और उनकी मृत्यु को भी देखा। विवाह हो जाने के दो साल बाद ही पति को खो दिया। इन सब बातों का मीरा के जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उनका मन इस संसार से उचट गया। मोह-माया को तिलांजति देकर सिर्फ अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रेम में जीन हो गई। लौकिक पति के देहान्त के बाद उन्होंने कहा :-

"जग सुहाग मिथ्या री सजनी
होवा हो मिट जासी
वरन करया अविनाशी म्हां तो
काल व्याल न खासी"

मीरा कहती हैं कि इस संसार में जो कुछ भी प्रिय है वह नश्वर है। मीरा इस संसार को झूठ और दोषपूर्ण समझती हैं। उनको यह जगत एक छलावा लगता है। यह संसार माया छलावा है। इसके शिकंजे में न फंसने की सलाह देती है। मीरा कहती हैं :-

"यो संसार विकार सागर बीच में घेरी
भो सागर जग बंधण झूठा
झूठा कुलरों न्याती
जग माया या सुपण री
यों संसार कुबधि से भोड़ी
साध संगत रंग भावो।"

संसार में जो कुछ है नाशवान है। इस सृष्टि के सभी उपादान नश्वर हैं। यह शरीर नश्वर है। अगर इस संसार में कुछ अमर है तो वह है आत्मा। आत्मा और परमात्मा के मिलने का सिर्फ एक ही रासता है और वह है ईश्वर की भक्ति में समर्पित हो जाना है जो लोग तीर्थ स्थान पर जाते हैं गेरुआ वस्त्र पहनते हैं, घर से वैराग ले लेते हैं, यह सब ढोंग है दिखावा है। सांसारिक परिवेश में रहते हुए भगवान का ध्यान, भजन, कीर्तन ही एकमात्र साधन है। इस शरीर को मोक्ष मिलने का और कोई साधन नहीं है। मीरा कहती हैं-

"भज मन चरसा कमल अवनासी
जो लाई दीसा धरण गगन मां तेतई उठ जासी
तीरथ करता व्याण कथता कहा लियो करवट कासी
या देही को गरबण करना माटी में मिल जासी
कहा मयां का भगवा पहरयां घर तज लयो सन्यासी।"'

मीराबाई कहती हैं यह बड़ी साधना और अच्छे कर्मो के बाद मानव योनि में जन्म होता है। इस अवसर को खोना नहीं चाहिए अपने परलोक की चिन्ता करनी चाहिए। इस जगत् से ज्यादा मोह ठीक नहीं अपने हृदय में अपने आराध्य को बिठाकर उनका ही भजन इस भवसागर से पार लगा सकता है।

"नहीं ऐसा जनम बारम्बार"

इस तरह से मीरा संसार की नश्वरता का बखान करती हुई सबको सचेत करती हैं और मोह माया को त्याग कर ईश्वर भक्ति में लीन रहने का सुझाव देती हैं।

पूर्ण सौन्दर्य से साक्षात्कार :

बाल्यकाल से ही मीरा के हृदय में श्रीकृष्ण के लिए अगाध प्रेम उत्पन्न हो गया था। बचपन के हालात ने मीरा के मन में श्रीकृष्ण के प्रति अथाह प्रेम और उनकी रूप माधुरी को इतना भर दिया था कि सिर्फ अपने आराध्य भगवान के अलावा कुछ न ख्याल रखा हर दुख अपमान को सहा पर कृष्ण के प्रेम से जरा भी विचलित नहीं हुईं। मीरा के हृदय में श्रीकृष्ण का मनमोहक रूप समाया है। मीरा ने श्रीकृष्ण के सगुण रूप का वर्णन अधिक किया है। मीरा श्रीकृष्ण का रसिक रूप ज्यादा लुभावना लगा है। उनके इसी रूप को जिसमें बाकी चितवन, रास लीला, खूबसूरती है। मीरा का प्रेम दाम्पत्य भाव का था और इसी भाव में ही कृष्ण के रसिक रूप का वर्णन हो सकता था। प्रेमी की तरह मीरा का प्रेम कांता भाव का था, मीरा ने कृष्ण के बाह्य सौन्दर्य का अधिक वर्णन किया है और उसी सुन्दरता पर स्वयं रीझी हैं। उनकी एक-एक मुद्रा ने मीरा को आकर्षित किया है। मीरा उनके सौन्दर्य पर इतनी आसक्त हुईं कि इहलोक का क्या परलोक की भी चिन्ता न रही। वह कहती है:-

"जब से मोहि नन्द नन्दन दृष्टि पड़यो भाई
तब से परलोक लोक कछु न सोहाई।"[२]

मीरा अपने प्रिय श्रीकृष्ण के अंग-अंग पर न्यौछावर होती हैं। मीरा लौकिक जीवन की सुन्दरता को अपने आराध्य की मूर्ति में देखती है। अपनी कल्पना में वे साक्षात् अपने प्रियतम को देखती हैं और उनके रूप सौन्दर्य पर मोहित होकर कह उठती हैं-

"निकट संकट छवि अटके म्हारे नैण
णिपट वंकट छव अटके

---

[१] परशुराम मीराबाई की पदावली (प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन १६६६)

[२] - भुवनेश्वर मिश्र, मीरा की प्रेम साधना, (दिल्ली · राजकमल प्रकाशन, ६३४) पृ० १७६

वारिज भवां अलक मतवारी नैणं रूप रस अटके

टेढ़या कह टेढ़ कर मुरली टेढ़या पग लर लटके

मीरा प्रभु रे रूप लुभणां गिरधर नागर नटके"

श्रीकृष्ण के सौन्दर्य पर न्यौछावर होती हुई मीरा कह उठती हैं :-

"जब से मोहि नन्द नन्दन दृष्टि पड़यो भाई
तब से परलौक लोक कछु ना सोहाई

मोरन की चन्द कला सीस मुकुट सोहै

केसर की तिलक भाल तीन लोक मोहै

कुंडल की अलक झलक कपोलन पर छाई

मानो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई

कुटिल भृकुटि, तिलक भाल चितवन में टोना

खंजन अरु मधुप मीन भूले मृग छोना

सुन्दर अति नासिका सुग्रीव तीन रेखा

नटवर प्रभु भेस धरे रूप अति बिसेखा

अधर बिना अरुन नैन मधुर मंद हासी

दसन दमक दाडित्रम दु४ि चमके चपला सी

छुद्र घंटि किंकिनी अनूप धुनि सोहाई

गिरधर के अंग-अंग मीरा बलि जाई।"

कृष्ण के इसी श्याम रूप की सुन्दरता को मीरा ने अपने हृदय में बसाया है। उपरोक्त पद में मीरा ने अपने आराध्य के रूप सौन्दर्य का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के चौड़े माथे पर केसर का तिलक लगा है भौहें कमान के समान हैं। उनकी चितवन टोना जैसी है, आँखें कटार जैसी हैं कानों में कुंडल है जिसकी लालिमा उनके मुख पर पड़ती हुई अति सुन्दर लगती है। उस सौन्दर्य को देखकर किसका हृदय इस रूप रस का पान करने के लिए व्यग्र न होगा, प्रिय के इस सौन्दर्य से मीरा का हृदय खुशी से भर जाता है। उनके मन में हचलच मच जाती है और वे आत्म-विभोर हो अपने आराध्य को साकार रूप में देखना चाहती हैं उनका मन चाहता है, उनका मन कहता है कि

"हरि तनिक चितवो मेरी ओर।"

श्री कृष्ण का रूप सुन्दरता का भंडार है। रूप के साथ रंग का भी महत्व है। श्रीकृष्ण का रंग सांवला सलोना है जो देखने में आंखों को अच्छा लगता है कृष्ण काम देव से भी ज्यादा सुन्दर है। उनकी मुस्कुराहट मीरा को मुग्ध कर देती है। उस सुन्दरता का प्रभाव इन पंक्तियों से पता चलता है-

"नैण लोभी रे बहुरि सके नहि आई
रोम-रोम नख-सिख सब निरखत ललकि रहे ललचाई
मैं डाढ़ी ग्रिह आपणे री, मोहन निकसे आई
वदन चन्द परकासत हेली मंद-मंद मुसकाई।"[२]

मीरा श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध है। श्रीकृष्ण के पूरी वेश-भूषा के अलंकरणयुक्त सौन्दर्य को बहुत गहराई से देख कर मीरा मुग्ध है। ऐसे आकर्षक रूप को मीरा अपने आंखों से एक पल के लिए भी हटाना नहीं चाहती और कहती हैं-

"अब नहीं जाने यूँ गिरधारी
मोहें प्रीत लगी अति भारी।"

मीरा के पदों का रूप वर्णन और सौन्दर्य भावना ही विशेषता है। कृष्ण रूप मीरा को इतना तन्मय कर देता है कि वे अपनी सुधबुध खो देती हैं।

मधुरा भक्ति की पराकाष्ठा : मधुरा भक्ति का मूल अर्थ स्त्री पुरुष का आपस में प्रेम संबंध होना अपने ईश्वर के प्रति जो भाव मन में होता है वही भाव अपने आप में पूर्ण होकर मधुरा भक्ति में परिवर्तित हो जाता है। "माधुरी भक्ति साधना अपने प्रारम्भिक और एतत रूप में अत्यनत प्राचीन है। इस संबंध में अनेक विद्वानों ने निम्न मंत्र अनेक बार उद्धृत किया है-

"तद्यथप्रियया स्त्रियां संपरिध्वक्तो
न वाह्यम किचन वेदानान्तरम्

भगवान दास, मीरा का काव्य (इलाहाबाद · साहित्य भवन, १९९०)

. परशुराम, मीराबाई की पदावली (प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन शक् १८८४) पद सख्या - १३

एवमैवायम् पुरुष प्राज्ञैनात्मना सम्परिपवदतां
न बाहूय मकिन्जनम वेदानान्तरम्।"

प्रत्येक भक्त अपने संस्कार और रुचि के हिसाब से किसी भी भाव को लेकर अपने ईष्ट की आराधना करता है। भक्त किसी भी भाव में ईश्वर की आराधना करे पर उसमें समर्पण की भावना, लगन हो इस प्रभु के पास पहुंचने के लिए आवश्यक है।

मीरा के उपासक अपने ईष्ट के प्रति कानत भाव, साक्ष्य भाव रखते हैं उनमें विरह की भावना प्रबल होती है। मीरा श्रीकृष्ण की भक्त है। मीरा अपने आराध्य श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व माना और उनके प्रेम को प्राप्त करने के लिए समस्त जीजवन साधना में लगा दिया कठिन से कठिन दुःख भी उनको कृष्ण भक्ति से अलग न कर पाया, उन्होंने कई तरह के भावों के माध्यम से श्रीकृष्ण पर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। मीरा के पति और प्रेमी श्री कृष्ण ही हैं। मीराबाई कहती हैं -

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।"

जीव ब्रह्म संबंध के आधार पर मीरा की कान्त आसक्ति के मधुरा भक्ति के रूप में आई है उनके मधुर संबंध का और कोई रास्ता नहीं था। उनका और उनके आराध्य श्रीकृष्ण का संबंध समक्ष रूप से था जितनी प्रताड़ना पारिवारिक कष्ट लौकिक क्लेश मीरा को झेलना पड़ा उतना किसी भी नारी भक्त को नहीं मिला। आंडाल को भी इतने क्लेशों का सामना नहीं करना पड़ा। मीरा की मधुरा भक्ति जितने संघर्षों को पार करती हुई अपने लक्ष्य पर पहुँची उतना शायद ही किसी कवि को मिली हो। मीरा का जीवन अपने प्रभु के लिए समर्पित है। मीरा की आत्मा अपने प्रभु के लिए समर्पित है। मीरा की आत्मा भावुक संसार से विरक्ति, चिन्तनशील आत्मा अपने प्रभु की भक्ति में एकनिष्ठ श्रद्धा का आभास होता। मीरा ने राणा द्वारा भेजा गया विष का प्याला अमृत समझ कर पी लिया।

---

[१] परशुराम, मीराबाई की पदावली (प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन शक् १८८४) पद संख्या - १३

मीरा को अपनी नारीत्व का पूरा ज्ञान है। उनको अपने नारीत्व की लज्जा का पूरा ख्याल है। यही नारीत्व मीरा की धरोहर, भक्ति और काव्य की प्रेरणा है। मीराबाई ने अपनी पवित्रता को कायम रखा और नारी जीवन को भारतीय साहित्य में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिलाया। नारी का पुरुष के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है वह केवल आकर्षण है। एक उत्सुकता है, वासना रहित है, जो स्वतंत्र होने के बावजूद भी पवित्र है। मीरा ने श्रीकृष्ण को ही अपना सर्वस्व माना है वह एक पल भी अपने मन से श्रीकृष्ण को भुलाना नहीं चाहती, उनके सुख को ही अपना सुख समझती है। यही भाव मीरा की मधुरा भक्ति है, लौकिक जीवन में मनुष्य दूसरों के द्वारा स्वयं को खुश रखता है, जबकि पारलौकिक आध्यात्मिक श्रृंगार में भक्त अपने ईष्ट के सुख में ही अपने सुख को अनुभव करता है। उसी मधुरा भक्ति के कारण मीरा ने अपने प्रियतम के सान्निध्य का सुख प्राप्त किया। मीरा ने अपने ईष्ट को, प्रियतम, स्वामी, प्रिय, पिया, साजन, जोगी, दाम्पत्य भाव को मधुरा भक्ति का प्रतीक माना है। उनकी ललक, मिलने की चाह, विरह, सेवा भाव, मधुरा भक्ति का प्रतीक माना है। उनकी ललक, मिलने की चाह, विरह, सेवा भाव, मधुरा भक्ति के अनतर्गत आते हैं। मीरा के पदों में विरह अनुभूति, कृष्ण का रूप सौन्दर्य लीला रूप वर्णन आदि का संकेत है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मीरा अपने प्रियतम कृष्ण को नहीं भूलीं। वह कृष्ण के मिलन के लिए तड़पती है। बाह्य जगत में भी वह कृष्ण क साथ अपना जनम-जनम का साथ मानती है।

मीरा के समय में ही वो कवयित्रि के रूप में विख्यात हो गईं। उनके पदों में कृष्ण की उपासना ही दिखाई पड़ती है। मीरा की भक्ति प्रेम की भक्ति है। मीरा ने प्रेम रस पान किया उनके इस पद से प्रतीत होता है-

> **"आया रे मोहणां, जाणां थारी प्रीत**
> **प्रेम भगत री पेड़ा म्हारो अवरुण जाणा रीत**
> **इमरत पाई लिया क्यूं दीज्या कैसा गाँव री रीत**
> **मीरा के प्रभु हरि अविनासी अपने जणारो मीत।"**

मीरा के प्रीतम श्रीकृष्ण के बिना सारा संसार सूना हैः

"म्हारे घर आत्यो, प्रीतम प्यारा।"

मीरा प्रिय मिलन के लिए सदैव लालायित रहती हैं और उनको दर्शन देने की विनती करती हैं। उनकी यही विनती कान्त आसक्ति है और यही कान्त आसक्ति मधुरा भक्ति का प्रमाण है-

मीरा जी कहती हैं -

"दरस बिन दूखन लागे नैन
जब से तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहु न पायो चैन
शबद सुनत मोरी छतियाँ काँपे मीठे मीठे बैन
विरह कथा कासू कहूँ सजनी वह गई करवत ऐन
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण

भक्ति की यह धारा, प्रिय को मिलने की तीव्र इच्छा जितनी मीरा के पदों में मिलती है वैसे किसी अन्य कवि के पदों में नहीं मिलती। इसलिए जितने नजदीक मीरा अपने आराध्य के पास पहुॅची है उतना और कोई भक्त नहीं पहुँच सका :

"मैं हरि बिन क्यूं जिऊँ रे भाई
पिय कारण बौरा भई ज्यू काठहि धुन खाई
औखद मूल संवरै, मोहि लाग्यों बौराई।"

मीरा मनसा-वाचा-कर्मणा और सदाचारी भक्त आत्मा थीं-

"म्हा गिरधर आंगा नाच्यारी।
नच-नच म्हा रसिक रिझावा प्रीत पुरातन नाच्या री
स्याम प्रीत रो बाँध घुधराया मोहना म्हारो प्यारो री
लोक लाज कुल की मरज्यादा जग मां एक ना राख्यो री
प्रीतम पल-पल ना बिसरावां मीरा हरि रंग राच्यां री।"

---

[१] परशुराम मीराबई की पदावली (प्रयागः हिन्दी साहित्य सम्मेलन) पृ० ५६

एक पद और जो उनकी मधुरा भक्ति को दर्शाता है-

"वेर वेर मैं टेर हूँ अहै कृपा कीजै, हो

जेठ महीने जल विण पंछी दुख होई, हो

मौर असाढ़ कुल लहै, धन चात्रय सोई, हो

सावण में झड़ लगियो, सखि तीजो खेलै, हो

भादवै नदियाँ बहै दूरी जिन मेले हो

मीरा विरहिणी व्याकुल दरसण कव होसी हो।"[1]

एक अन्य पद में -

"हरि म्हारा जीवन प्राण आधार

और आसिरोण म्हारा थें विपण तीण लोक मा

थे विण म्हाणों जगण सुहावां निरख्यों जग संसार

मीरा के प्रभु दासी रावली डाव्यो शोक णिहार।"

मीरा के मधुरा भक्ति स्वकीया भाव को दर्शाता है, उनमें परकीय भाव नहीं है।

५. सहज अनुभूति की गरिमा :

मनुष्य एक विचारशील जीव है। मानव अपने हृदय के अनेक भावों को किसी न किसी रूप में व्यक्ति करता है। मनुष्य के पास वाणी का अद्भुत माध्यम है। मानव अपने वाणी के द्वारा अपनी अनुभूति व्यक्त करते हैं। पर जीव जानवर अपने मूक भाव से अपनी अनुभूति व्यक्त करते हैं। मानव मन प्रकृति के विराट रूप का आनन्द लिया है और मनुष्य का हृदय जब भावों से लबालब भर जाता है तो अपने आप गीतों का पदों का प्रसूत होता है।

गीति के विषय में हडस्न का मत है किन्तु वह व्यक्ति वैचित्र में सीमित न रहकर व्यापक मानवीय भावनाओं पर आधारित होती है जिससे प्रत्येक पाठक इसमें अभिव्यक्त भावनाओं एवे अनुभूतियों से तादात्म्य स्थापित कर सके।

---

[१]. परशुराम, मीराबाई की पदावली (प्रयाग साहित्य सम्ममेलन शक् १८८४) पद सख्या ४

कवि की वैयक्तिक भावधारा और अनुभूति को उनके अनुरूप लयात्मक अभिरुचि देने के विधान को गीतिकाव्य कहते हैं। गीतिकाव्य में मानवीय वृत्तियाँ अपनी सहज स्थिति में अभिव्यक्त होती हैं। अतः उसमें आनतरिक सौन्दर्य गठन और अर्न्तवेग की तरलता रहती है।

मीरा भक्ता थीं और उनका हृदय भी भावों से पूर्ण था। मीरा उच्चकोटि की भक्त नारी थीं। कोई भी भक्त अपनी अनुभूतियों को सहज ढंग से अभिव्यक्त करता है और उसी सहज अभिव्यक्ति में उसके विचार भी सहज हो उठते हैं। "रहस्योमुखी धारा के अधीन ईश्वरीय सत्य ज्ञान की नहीं अपितु अनुभूति का विषय बन जाती हैं और उस दिव्य अनुभूति में ज्ञान और क्षेत्र के मध्य कोई दूरी नहीं रह जाती, एक गहरे तादात्म्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। संकोच और लोक लाज की मर्यादाएं एक-एक करके धराशायी होती जाती हैं।"

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई
संतन ढिग बैठि-बैठि लोक लाज खोई
अब तो बात फैल गई जानत सब कोई।"

रहस्मयी भावना अपने असंदिग्ध अनुभूति पर ही विश्वास करती है। सहज अनुभूति को स्वरूप अपने आप में साफ-सुथरा होता है। मीरा की भाव अनुभूति स्वाभाविक और सहज है। इसका कारण यह है कि मीरा को अपने आराध्य की भक्ति करने का भरपूर समय मिला। मीरा के मन में अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा तो है ही उनके साक्षात् ज्ञान का भी भंडार है। मीरा के काव्य की मार्मिकता अपने कावय चेतना का सहधर्मी है और यही कारण है कि उनका काव्य आज भी जन मन के मन में स्थान बनाया है। मीरा की अनुभूति एक विशिष्ट प्रकार की है। मीरा का नारी मन

मीरा के हृदय में बैठी हुई नारी और विरहणी के लिए भावतिरेक सहज प्रापय था। उनके वाहृय राजरानी पन और आन्तरिक साधना में संयम के लिए पर्याप्त अवकाश था। "ऐरी मैं तो दरद दिवानी मेरा दरद न जाने कोय" या "पिया बिन सूनो है म्हारा देश।"

काव्य आत्मा के अनुभूति की सजह अभिव्यक्ति है। स्वानतः सुखाय का बहुजन हिताय बहुजन सुखाय में काव्य की अनुभूतियों को व्यक्त करना काव्य का एक महत्वपूर्ण कार्य है। मीरा के काव्य में भाव अनुभूति का ऐसा प्रवाह है जो श्रोता को अपने बहाव में बहा ले जाता है। मीरा के

पद जन मानस के मन को रसासिक्त करने में सफल है। मीरा का काव्य एक सत्य आत्मा को विहर वेदना ाद्‌गार, व्याकुलता मिलन की उत्सुकता इनके विरह प्रधान पदों में प्रसूत हुई है। अनुभूति के उद्‌देश्य से कवि मन भावलोक में पहुँच जाता है और कल्पना की शक्ति इसके भावना को शक्ति देती है और इस तरह उसी भावना के अन्तर्गत ही सहज अभिव्यक्ति है। मीरा ने मन में पनपते हुए विद्रोह को अपने काव्य में बड़ी निर्भीकता और सहजता से व्यक्त किया है। मीरा के प्रत्येक पद में अनुभूति की भरमार है। मीरा में वेदना की अनुभूति का सागर है। विरहिणी मीरा अपने आराध्य के विरह में व्यथित है। उनकी काव्य में व्यक्तिगत अनुभूति है। मीरा ने अपने पदों में हृदय के तमाम भावों को सहज रूप में व्यक्त किया है। "मीराबाई ने जो कुछ भी रचा है उसमें उनकी सहानुभूतिगत वेदना की प्रखरता अपनी सच्चाई में सामंजस्य है और जब उसे व्यक्तिगत प्रेम की अनुभूति में प्रवण व्यक्ति सुनता है तब उसे अपनी तन्मयता की दृश्य में जो शांति मिलती है वह जीवन के अन्य पक्षो से आगत वेदना का गान करने वाली वाणी से नहीं मिल सकती।"

मीरा की वेदना की अभिव्यक्ति इस पद से व्यक्त होती है-

"रोवत-रोवत डोलती सब रैण बिहारी जी
भूख गया निदरा गया पापी जीवण जावा जी।"

कृष्ण का लौकिक और अलौकिक रूप मीरा के आन्तरिक और बाह्य रूप में समाहित है। इसी कारण से मीरा हमेशा संयोग की दशा में रहती है। लेकिन जब उस विराटत्व को स्थूल रूप मे देखना चाहती है तो वियोग की अनुभूति होने लगती है, और इसी अनूभूति के कारण उसकी अभिव्यंजना में वियोग तत्वों एवं विरहानुभूतियों की तीव्रता दिखलाई देती है। इसी प्रकार मीरा ने एकाकार के रूप में अपनी भावों की सहज अभिव्यक्ति की है :-

"म्हारे आत्यो जी रामा थारे आवत आस्या सामा
तुम मिलियां मैं वोहो सुख पाऊ सरै मनोरथ कामा
तुम बिच हम बिच अनतर नाही जैसे सूरज धामा
मीरा के मन अवर न माने चाहे सुन्दर स्यामा।"[१]

---

[१] परशुराम, मीरा की पदावली (प्रयाग : साहित्य सम्मेलन शक् १८८४) पद सख्या ११४

मीरा ने एक ही छोटे पद में अपनी समस्त वेदना को समेट कर भर दिया है। उनके पद अनुभूति से परिपूर्ण है।[१]

उनके जीवन में एक ही भाव है और एक ही रस मधुर भावना जन्य उल्लास तथा विषाद की कतिपय भावनाएं ही उनके जीवन में व्याप्त हैं।[२]

---

[१]. डॉ० ना० सुन्दरम मीरा और आडाल का तुलनात्मक अध्ययन (प्रयाग साहित्य सम्मेलन) १६७४

[२] डॉ० सावित्री, ब्रज भाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना (दिल्ली · आत्माराम एण्ड सन्स, स. २०१०) पृ० ४२६

तृतीय खण्ड

द्वितीय अध्याय

मीराबाई का भावलोक तथा संगीतात्मक आंकलन

कविता कवि के भावलोक का शाब्दिक आंकलन है, अर्थात् कवि अपने भावों को चिन्तन के पुट से जिस रूप में ग्रहण करता है और शब्दों के माध्यम से जिस प्रकार साकारता प्रदान करता है। वही कुल मिलाकर उसकी कविता कहलाती है। यों तो सभी विषय, सभी कवियों के लिए समान होते है, लेकिन अपने अपने आंकलन से उनके विवेचन-विश्लेषण और शाब्दिक निरूपण में अन्तर आ जाता है। उदाहरण के लिए सूरदास और मीराबाई दोनों के काव्य के अवलोक का केन्द्र श्रीकृष्ण और उनके प्रति अगाधभक्ति है, परन्तु भावों के अधिक संगीतात्मक भाव के कारण मीरा का काव्य पर्याप्त भिन्न है। मीरा जिन बिम्बों में सोचती है और चित्रित करती है, वे भी सूरदास से भिन्न है। अपने अनेक पदों और भ्रमर गीत में सूरदास का आंकलन भी संगीतात्मक है, इसीलिए अनेक स्थलों पर सूरदास और मीरा एक दूसरे की याद दिलाते है। शायद सभी भक्त कवियों का, विशेष रूप से कृष्ण भक्तों का, भावाकलन संगीतात्मक हैः किन्तु इस दृष्टि से मीरा का काव्य अद्वितीय है।

भाव-लोक की असामान्यता :-

यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि मीरा काव्य श्रीकृष्ण की दिव्यता पर केन्द्रित होने के कारण सामान्य से पर्याप्त हटकर है। भावलोक की असामान्यता के कारण ही वह असामान्य और विशिष्ट है। मीरा का जीवन की कृत्रिमताओं के प्रति अक्रामक और प्रतिरोधात्मक रूप ही इस असामान्यता का कारण है। कई बार तो लगता है कि मीरा के काव्य में उनका विद्रोही स्वरूप ही अधिक मुखर है। जीवन में युवावस्था में ही दृष्टिगोचर विधवा हो जाने पर उन्होंने नारी की पराधीनता का डटकर सामना किया और राजभवन के सुख वैभव को त्याग कर अपना मन अपने

प्रिय श्रीकृष्ण के चरणों में लगाया था। राजकुल को छोड़कर जब मीरा बाहर निकली तो उनको बहुत दुखों का सामना करना पड़ा उनके ससुराल के लोग उनके विरूद्ध हो गए, उन्हें तरह-तरह की यातनाएं देने लगे। मीरा का साधु-सन्तों के साथ भजन-कीर्तन, भावमुग्ध होना, नृत्य करना यह राजघराने की मर्यादा के विपक्ष में था। लोगो ने समझाया, लोक निन्दा का डर दिखाया पर मीरा सच्चे ह्रदय की नारी थी उनको परिवार, समाज संसार के कटु व्यवहार का अनुभव उनको कम उम्र में ही हो गया था और उनकी अनुभूति काव्य के रूप में हमारे सामने आई उनके भावलोक में नारी जाति का सारा दुःख दर्द और वेदना साकार हो उठा। मीरा ने अपने पदों में अनेक रूकावटों को चित्रित किया है। उनके ऊपर कितने संकट आए यह तो उन्होंने अपने ईश्वर-भक्ति के बल पर सहा। उनको साधु संगत के लिए जितना मना किया जाता वह उतनी ही निडर होती गई :-

"वरजी मैं काहू की नाहि रहूँ
सुनौ री सखि तुम चेतन होई के मन की बात कहू
साधु संगति करि हरि सुख लीजै जग सू दूर रहूँ
तन धन मेरे सब ही जानो भलि मेरी सीस लहूँ।"

मीरा का भावलोक प्रेम की अनूभूति से लबालब है। मीरा को अपने लौकिक और पारलौकिक अस्तित्व का ज्ञान था। शायद इसीलिए इन्होंने लौकिक दुःख कष्ट वेदना को स्वीकार किया उन्हें यह पता था कि ये लौकिक कष्ट जो कर्म में लिखे हैं वह झेलना ही पड़ेगा और मीरा उससे अपना पीछा भी नही छुड़ाती। मीरा ने अपने भक्ति की चरम सीमा के कारण अपने प्रिय श्रीकृष्ण का इसी लोक में दर्शन कर लेती है।

सांसारिक रूप में वह एक आम नारी जैसे ही हैं इसीलिए जैसे और दूसरी नारी कष्ट दुख, वेदना सहती है उसी तरह मीरा भी विधवा हो जाने के बाद की सारी कष्ट सहती है। इस संसार में वे अकेली है इस लौकिक जगत् में उनका कोई नहीं है पर उनकी कल्पना मे उनके प्रिय श्रीकृष्ण हमेशा इनके साथ रहते है, एक पल भी उनका साथ नहीं छोड़ते।

मीरा के विधवा हाने पर इन्हें विष का प्याला यातना के रूप में प्राप्त हुआ है। उनकी सुन्दरता उनके जीवन में जहर घोल देती है। लोक शक करने लगते हैं पर मीरा कहती हैं।

यह सांसारिक सुहाग झूठा है वह विधवा नहीं है। पारलौकिक संसार में उनका पति श्रीकृष्ण विराजमान है। लौकिक पति के मृत्यु से विधवा क्यों मानें। यह जगत तो मिथ्या है। मेरे प्रियतम तो अमर हैं ऐसे वर को ही मै वरूंगी। मीरा का प्रेम अमर है वे अपने अविनाशी के प्रेम में लिप्त है। मीरा श्री कृष्ण को पहचानती हैं और उनके मिलन की आस में बैठी है और मिलन की अनुभूति से पुलकित हो रही हैं।

श्रीकृष्ण के ऊपर मीरा निछावर है। उनका एक एक ढंग मीरा के मन को तृप्त करता है। वे इस संसार में रहते हुए भी उस लोक के वासी श्रीकृष्ण के सौन्दर्य पर रीझी हुई है। उनके सुन्दरता के आगे सब कुछ फीका है। मीरा कल्पना में अपने आराध्य के सौन्दर्य का पान करती रहती। उनको किसी की परवाह नहीं। वे तो बेसुध होकर अपने प्रिय के प्रेम में पगी है।

"जब से मोहि नन्दनन्दन दृष्टि पड़्यो माई
तब से परलोक लोक कछु न सुहाई
मोरन की चन्द्र कला सीस मुकुट सोहै
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहै
कुंडल की अलक झलक कपोलन पर छाई
मनो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई
छुद्र घंट किंकनी अनूप धुनि सुहाई
गिरधर अंग अंग मीरा बलि जाई।"

मीरा श्रीकृष्ण के लीला पर तन मन से निछावर है। मीरा अपने प्रिय के सभी रूप से परिचित हैं। मीरा को पता है कि उनका प्रिय हर जीव को उद्धार करने वाला है। मीरा चाहती है कि उनका प्रिय उनकी तरफ देखे, चाहें वो एक पल ही हो, जब तक परस्पर देखा देखी न हो तब तक प्रेम की पराकाष्ठा नही है। मीरा कहती है –

"तनिक हरि चितवों मोरी ओर
हम चितवन तुम चितवत नाही दिल के बड़े कठोर
ऊमी ठाड़ी अरज कर हूँ, अरज करत भयो भोर
मीरा के प्रभु हरि अविनासी दस्यू प्राण झकोर।"

मीरा कहती है कि ऐसा नहीं है कि सिर्फ मीरा ही स्याम सुन्दर के ऊपर निछावर है। गिरधर नागर भी मीरा के ऊपर आसक्त है। उनकी दृष्टि मे मीरा के लिए असीम प्यार है। उनके एक निगाह पड़ते ही मीरा व्याकुल हो उठती है और उसी भाव में विह्वल में कहती हैं -

"आली साँवरे की दृष्टि मानो प्रेम की कटारी है
लागत बेहाल भई तन की सुधि-बुधि गई
तन मन व्यापों प्रेम मानो मतवारी है
चंद को चकोर चाहे, दीपक पतंग दहै
जल बिना मीन जैसे तैसे प्रीति प्यारी है
चिंता करौ हे स्याम लागौ मै तुम्हारे पांव
मीरा प्रभु ऐसे जानो दासी तुम्हारी है।"

मीरा के काव्य में प्रेम वेदना का मार्मिक चित्रण मिलता है। इनके प्रेम की समानता कोई कृष्ण भक्त कवि नहीं कर सकता। मीरा हर समय अपने आराध्य के प्रेम में खोई रहती है सोते जागते इन्हें सिर्फ अपने प्रभु के दर्शन ही होते रहते है।

संयोग वियोग में बहती मीरा आम जीवन के सच्चाई को भूल जाती है और अगर कुछ स्मरण रहता है तो वह है प्रभु प्रेम और परलोक में प्रभु के साथ का सुखद आनन्द लेती रहती है। मीरा के प्रिय उनके ह्दय में तो निवास करते है बल्कि कुंज गली मीरा को खोजते रहते है और मीरा शरमाकर अपने प्रिय से छिपती फिरती है।

मीरा के प्रेम में विरह वेदना का अथाह सागर है। वे बेचैन रहती है उनसे अपने प्रिय का विरह बर्दाश्त नहीं होता है। अगर मिलन के कुछ पल का सुख हैं तो बिछोह का समय बहुत लम्बा है। वे अपने प्रिय के दर्शन के लिए बेचैन है। उन्हें कुछ नहीं केवल अपने प्रिय के आने का रास्ता देखती। आँखों से नींद उड़ गई है। सारी रात जाग कर काट देती है।

पपीहा की बोली असह्य हो जाती है। पपीहा पिव-पिव करता है। मीरा पिव का आवाज सुनकर अपने प्रियतम के विरह में डूब जाती है और दुःखी होकर पपीहा को ताना देती है :-

"रे पपैया प्यारे कब को वैर चितारो

मै सूती थी अपने भवन में
पिय-पिय करत पुकारी
पाहया ऊपर लूण लगाओं
हिवणें करवत सारो
उठि बैठो वृच्छ की डाली
बोल-बोल कंठ सारो
मीरा के प्रभु गिरधर नागर
हरि चरना चित धारो।''

मीरा को अपने प्रिय का विरह सता रहा है। मीरा के काव्य में जितने विरह के पद मिलते हैं इतने मिलन के नहीं। संसार उनको पागल समझता है पर इससे मीरा कोई फर्क नहीं पड़ता। मीरा अपने आराध्य के प्यार में पागल है उनको किसी से क्या लेना देना है। इस तरह मीरा के भाव लोक में अपने प्रिय आराध्य गिरधर नागर प्रियतम के प्रति विरह वेदना की तीव्र अनुभूति और निश्छल प्रेम की समुंद्र है लोक उनको बुरा भला कहते है। मीरा इसका बुरा नहीं मानती। मीरा कहती है हर इन्सान अपने ढंग से सोचता है।

मीरा के काव्य में रस का आंकलन :-

रस भारतीय वाङ्मय का अति प्राचीन शब्द है। ''रस'' शब्द का पहला अर्थ वेदो में स्पष्ट रूप से वर्णित है। वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम युग रहा है। वैदिक युग का अभिप्राय उस सुदीर्घ काल खंड से है जिनमें चार वेदो तथा उनके विविध अंगो का विस्तार हुआ है। वेद का तात्पर्य केवल मंत्र संहिता से नहीं उसमे ब्राह्मण आरण्यक तथा उपनिषद वाङमय का भी समावेश है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में वनस्पतियों के रस का उल्लेख हैः

''महे यत्पित्र ई रसं पिवे करब त्सरत्।[१] ''
''रसो वैसः रसं हयवयं लण्हवानन्दी भवति।''[२]

---

१. ऋग्वेद, १.७१-५

रस आनन्द है और प्रेम है।

आचार्य विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा माना है।

"विभावेनानुभावेन व्यक्त संचारिण तथा

रसता मेति रित्यादि स्थायी भाव ऽ सचेत साम

अर्थात विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। रस को भारतीय साहित्य के विद्वानों ने काव्य की आत्मा माना है।[1]

रस के पूर्ण विवेचन के आधार पर भरत का यह सूत्र है :-

"तत्र विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद

रस निष्पत्ति।"[2]

रस अनिवार्यतः अनुभव जन्य है चाहे संगीत रस हो या काव्य रस हो, जो अनुभूति प्रधान हो, उसकी व्याख्या मुश्किल है।

रामानुराग मनुष्य मात्र में नैसर्गिक रूप से है। मीरा का काव्य रस सिक्त है। उनका काव्य सौन्दर्य प्रेम संयोग और वियोग से परिपूर्ण है। "वाक्यरसात्मक काव्य" कवि विश्वनाथ साहित्य दर्पणकार ने रस को ही काव्य की आत्मा माना है। मीरा का काव्य रस को ही काव्य की आत्मा माना है। मीरा का काव्य रस से परिपूर्ण है। मीरा के काव्य की कसौटी रस ही है। मीरा के साहित्य में करूण रस श्रृंगार रस और शान्त रस का स्वरूप ज्यादा है। मीरा के काव्य में श्रृंगार के दोनो पक्षों का सुन्दर चित्रण है। मीरा का कृष्ण के प्रति संबंध अलौकिक भगवत प्रेम पर आधारित हे। मीरा के पदों का रस तत्व दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। साहित्य की दृष्टि से उनके पदों में श्रृंगार करूण और शान्त रस विद्यमान है। पर भक्ति की दृष्टि से मधुर रस का स्वरूप प्राप्त होता है।

---

२. तैतरीय उपनिषद - २.७

१ विश्वनाथ, साहित्य दप्रण (लखनऊ नवल किशोर प्रेस, स० १६७८) पृ० ३०१.

२ भरत, नाट्यशास्त्र (बनारस विद्याविलास प्रेस, सन १६२६) पृ० ६३

१ हजारी प्रसाद द्वितीदी, मधुर रस की साधना (इलाहाबाद साहित्य भवन, १६५३) पृ० १७५

मधुर रस की अभिव्यक्ति में ही मीरा काव्य के प्राण है और वह मधुर रस इन्द्रियातीत आध्यात्मिक अनुभूति है जिसका पार्थिव जगत् से कोई सम्बंध नहीं है। "मधुर रस का विषय अलौकिक एवं स्वयं भगवान स्वरूप है। यह रस आत्मा का ही धर्म है। भगवान ही उनके मधुर रस का विष़य है और उनकी वल्लभाए इस रस का सहारा है, श्रीकृष्ण का गोपियो के साथ लीला विलास मधुर रस की आत्मा है।[1]

मीरा के काव्य में श्रृंगार के दोनो पक्षों का उनके पदों में सुन्दर चित्रण है। मीरा का कृष्ण के प्रति संबंध अलौकिक भगवद प्रेम पर आधारित है। मीरा के पदों में संयोग श्रृंगार और विप्रलभ श्रृंगार रस है।

संयोग श्रृंगार का स्थाई भाव रति या कांत भाव है। मीरा का श्रीकृष्ण के साथ प्रिय और प्रियतमा का संबंध इस अलौकिक भगवद गीता पर आधारित है जो भगवान श्रीकृष्ण पर है :-

"म्हां मोहण रो रूप लुभाणी
सुन्दर बदण कमल दल लोचण
व्यकां चितवण, नेण समाणी
जमण किनारे कान्हो धेणु चरणे, बंसी बजावों मीठा वाणी
तब मण धण गिरधर पर वारां, चरण कवल मीरा विलमाणी।[2]

मीरा के ज्यादा पद विप्रलभ श्रृंगार के हैं। मीरा का सम्पूर्ण जीवन विरह वेदना से भरा है। विरह की वेदना को अपने ह्रदय से लगाकर वे अपने प्रिय की प्रतीक्षा करती रहती है। मीरा के पदों में वियोग रस का चित्रण उच्चकोटि का है। आध्यात्मिक भाव की धारा पर तन्मयता, प्रियतम का ध्यान उत्सुकता, प्रियतम की प्रतीक्षा, न मिल पाने का गान, ये सभी तत्व मीरा के विप्रलभ श्रृंगार में सर्वत्र विद्यमान है, विप्रलभ श्रृंगार का एक पद -

पपइया रे पिव की वाणी न बोल
सुवि पावेली विरहणी रे थारो रा लैली पांख मरोड़
चोच कटाऊँ पपइया रे ऊपरि कालर लूण
पिव मेरा मै पीव की रे, तू पिव कहत़ूं कूण

थारा सबद सुहावण रे, जो पिव मेला आज
चोंच मढ़ाऊ थारी सोवनी रे तू मेरे सिरताज
पीतम कूँ पतिया लिखूं कडवा तू ले जाई
जाऊँ प्रीतम जी सूँ यू कह रे थारी लिखहा सी धान खाई
मीरा दासी व्याकुल रे पिव पिव करत करत बिहाई
बेगि मिलो प्रभु अन्तर जामी तुम बिन रहया ही न जाई।[1]

करूण रस की उपयोगिता सभी महाकवियों ने माना है भगवान दास तो करूण को ही एक मात्र रस मानते थे।[2]

करूण रस में शोक का भाव होता है। इस रस में प्रिय का प्रियतमा से मिलन की आशा धूमिल हो जाती है और मन

---

२. भगवान दास तिवारी (मीरा की भक्ति और उनकी काव्य साधना) इलाहाबाद. साहित्य भवन, १६७४ पृ० २६४
१. कृष्णदेव, मीराबाई पदावली (दिल्ली) रीगल बुक डिपो, १६७२. पृ० ५५
२. भगवान दास, मीरा का काव्य (इलाहाबाद. साहित्य सदन,१६६०) पृ० १३७

तृतीय खण्ड

तृतीय अध्याय

मीराबाई का अन्तर्दर्शन और अन्तस्संगीत

१. अन्तर्दर्शन और अन्तस्संगीत :

एक संगीत वाहृय होता है, जिसे कानों से सुनकर थोड़े समय के लिए स्मरण रखा जाता है. लेकिन उससे बढ़कर एक संगीत आत्मा अथवा अन्तस् से उपजता है, जो सदैव साथ रहता है और रचना के लिए प्रेरित करता है। मीराबाई का जीवन-दर्शन, आम रचनाकारों की भांति, जीवन के लिए प्रतिकर्म अथवा दृष्टिकोण का सूचक नहीं है, बल्कि आत्मानुभूति और अन्तर्दर्शन ही का पर्याय है। भक्तिकाल के अन्य कवि जहां बहिर्मुखी और सामाजिक आर्थिक लगते हैं, वहीं मीरा स्वभाव से ही अन्तर्मुखी तथा आत्मकेन्द्रित प्रतीत होती है। इसलिए वह अपने तथा श्रीकृष्ण के अटूट सम्बंध को लेकर जो कुछ भी कहती है, उसमें उनका अपना साक्ष्य ही सर्वत्र प्रधान होता हैं उनका जीवन दर्शन एक प्रकार से उनका अन्तर्दर्शन ही है, अर्थात अपने भीतर झांक कर देखने की प्रक्रिया है जो कृष्ण भक्ति के आत्मिक संगीत की देन है। उसी की लय पर गाती है, लिखती हैं और नाचती हैं। अतः कहा ज़ा सकता है कि उनके अन्तस की गहराई से जो संगीत फूटता है, उसी के प्रवाह में वह स्वयं को और बराबर को प्रवाहित होता हुआ अनुभव करती है। यही कारण है कि वह चिंतन और दर्शन की नहीं, अनुभूति की कवियित्री है। वह दर्शन की शब्दावली का उपयोग तक नहीं करती। जीवन के प्रामाणिक अनुभव को ही रचना में ढालती हैं। उनकी रचना का वैचारिक पक्ष भी अन्तःसंगीत की भूमि पर ही उभरता है और इसीलिए वह अपनी सीमा में भी विराट प्रतीत होता है। उसमें प्रदर्शन और पाण्डित्य का कोई दम्भ नहीं है, एक पारदर्शिता है, जो मन की मस्ती और "पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे" की प्रतीक है।

२. अनेक सम्प्रदायों के मानवीय गुणों का समाहार :

मीरा का अपना कोई दार्शनिक, वैचारिक या कृष्ण भक्ति परक सम्प्रदाय नहीं था। उनका अन्तर्दर्शन अपने समय के अनेक कृष्ण-भक्त सम्प्रदायों अथवा अन्य दार्शनिक विचारों का व्यवहारिक समाहार था। उन्हें जहाँ जो अच्छा लगता था उसे ग्रहण कर लेती थी। इस दृष्टि से उनका अन्तर्दर्शन मानवतावादी और सुधारवादी है।

कुछ विद्वान मीराबाई के अन्तर्दर्शन को कृष्ण भक्ति के निम्बार्क सम्प्रदाय की स्थापनाओं के अधिक निकट मानते हैं।

निम्बार्क सम्प्रदाय में मधुर रस की उपासना आवश्यक है इसमें प्रत्येक भक्त श्रीकृष्ण को सहचरी के रूप में अपनी भक्ति भावना अर्पित करता है। मीरा भी अपने आराध्य श्रीकृष्ण को पति मानती है और कान्ता से भक्ति करती है, सहचरी भाव से नहीं। अतः सम्भव है कि एक सीमातक निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रभाव कभी उन पर रहा हो और फिर धीरे-धीरे उससे मुक्त हो गई हो।

वल्लभ सम्प्रदाय में ईश्वर भक्ति में अनुग्रह की अधिकता रहती है। कृष्ण अवतार के सभी कवियों ने उनके लीलाओं का वर्णन किया है। वल्लभ सम्प्रदाय की भांति मीरा भी श्रीकृष्ण के समक्ष सम्पूर्ण रूप से समर्पित है।

मै तो गिरधर के घर जाऊं
गिरधर म्हारोसांचो प्रियतम देखा रूप लुभाऊ
रेण पड़ै तब ही उठि जाऊं, भोर भए उठि जाऊं

मीरा ने अपने पदों में वल्लभ सम्प्रदाय की भांति श्रीकृष्ण के रसिक रूप और लोक कल्याण रूप का विवरण किया है। मीरा ने गिरधर के रूप की उपासना की है। सूरदास, तुलसीदास, नंददास आदि की तरह विभिन्न लीलाओं का साम्प्रदायिक वर्णन नहीं किया -

मीरा के समय में संत मत का बहुत अधिक प्रचार था इसलिए कुछ न कुछ प्रभाव तो मीरा के ऊपर संत मत का पड़ा है। मीरा ने संत सम्प्रदाय के समान ही इस संसार को नश्वर माना और प्रभु के चरणों में लीन हो जाने को माना है :

"भज मन चरणं कंमल अविनासी
जेतई दीसेधरण गगन बीच तेतई सब उठ जासी
कहोभयो तीरथ व्रत कीन्हे कहा लिये करवत कासी
इस देहित का गरब न करणा माटी में मिल जासी
यो संसार चहर की वाजजी सांझ पड़या उठ जासी।"

संत मत की शैली अच्छी थी। मीरा ने उनके शैली और शब्दावली को अपनेकाव्य में प्रयोग किया। संत मत में गुरू की महिमा का बखान है। मीरा ने भी इसे अपना लिया संत मत में आडम्बरों पर चोट की गई। मीरा को संत मत का यह गुण अच्छा लगा और उन्होंने वाहृय आडम्बर पर टिप्पणी, आराध्य के प्रति पूर्णरूपेण समर्पण, आराध्य की महिमा गुणगान और अपने देन्य भाव का वर्णन करते हुए उनसे अपने ऊपर कृपा की याचना की है -

छोड़ मत जाज्यो जी महाराज
म्हा अबला बल म्हारो गिरधर थे म्हारो सिरताज
म्हा गुणहीन गुणागर नागर म्हा हिवड़ो रो आज
जग तारण भो भीत निवारण थे राख्या गजराज
हारा जीवन सरण रावलो, कढे आवो ब्रजराज
मीरा रे प्रभु औरण कोई, राखा अवरी लाज।।

कहते हैं मीरा ने मूर्ति का सदा षोडशोपचार के साथ पूजन एवं अर्चन किया। श्रीकृष्ण की सुन्दर सुन्दर मूर्तियों के दर्शनार्थ वे वृन्दावन जैसे तीर्थ स्थानों में भटकती फिरी, अंत में द्वारिका में प्रतिष्ठित रणक्षोण की मूर्ति की आराधना करती हुई वे उसमें समाकर अर्न्तध्यान हो गई।

डॉ. प्रभात ने अपने शोध कार्य में लिखा है। मीरा के सेव्य और साध्य "नवल ठाकुर गिरधर" ही थे। कोई भूलकर भी नहीं कह सकता कि ये ठाकुर गोकुलवासी यशोदा पुत्र कृष्ण से भिन्न थे। मीरा के पदों की प्रसिद्ध छाप मीरा के प्रभु गिरधर नागर और उनके उद्गार इसी सत्य के साक्षी है :

आवे गोकुल को निवासी
मथुरा की नारि देखि आनंद सुखराशी
नाचती गावती ताल बजाती करत विनोद आसी
यशोदा पूरण प्रणय प्रगटहि अविनाशी
पीताम्बर कटि विराजत उर गुंजा सुहासी
चाणुर मुष्टि दोऊ मारे कंस के जीय त्रासी।[1]

मीरा ने अपने पदों में नाथ और जोगिया शब्द का प्रयोग किया है जो नाथ सम्प्रदाय में प्रयुक्त होते हैं। मीरा ने अपने पदों नाथ सम्प्रदाय की वेशभूषा का वर्णन किया है और अंगो में भभूत लगाने की प्रथा नाथ सम्प्रदाय की थी उन्होंने अपने काव्य में नाथ सम्प्रदायी शब्दों का भी उल्लेख किया है। मीरा ने खास अर्थ में अपने प्रियतम को जोगी कहा है।

भावना की दृष्टि मीरा का सगुण भक्ति की है। मीरा की भक्ति सांसारिक दाम्पत्य प्रेम से अलौकिक प्रेम की सीमा तक पहुंच जाती है। उनके सच्चे प्रियतम भगवान श्रीकृष्ण है जो उनके पिछले जनम के साथी है।

मीरा के समय में जितने भी सम्प्रदाय प्रचलित थे। उनका कुछ न कुछ प्रभाव तो उनके हृदय पर पड़ा होगा ऐसा तो नहीं हो सकता कि मीरा के मन पर उन सम्प्रदायों की कोई छाप न हो उन्होंने सभी सम्प्रदायों की जो खूबियां देखी वह अपना ली और बाकी जो उन्हें नहीं अच्छी लगी उसे छोड़ दी।

३. अहं का विलय :

मनुष्य का मन कई तरह के भावों का भंडार है। प्रेम मानव मन का एक महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति है। प्रेम से ही मनुष्य के हृदय का अस्तित्व पता चलता है। क्योंकि जब मन में प्रेम का भाव किसी के लिए है तो उसमें अहं का कोई स्थान रह ही नहीं जाता और जब मनुष्य अपने अहं को त्याग कर ईश्वर की भक्ति में लीन हो जाता है तो उसके अहं का विलय हो जाता है।

---

१ रामगोपाल शर्मा, मीरा मुक्तावली (इन्दौर: कमला प्रकाशन, १९७८), पृ १५.

भक्ति का संबंध सीधे आत्मा से है और आत्मा का स्थान सर्वोपरि है इसीलिए अगर ईश्वर की भक्ति करनी है और मोक्ष प्राप्त करना है तो अहंकर का त्याग करना आवश्यक है और जब तक मनुष्य के हृदय मे अहंकार की भावना रहती है वह पूर्णरूप से अपने ईष्ट की भक्ति नहीं कर सकता न ही सम्पूर्ण रूप से समर्पित ही हो पाता है और न ही उसके मन में विनम्रता उत्पन्न हो जाती है और नही उसका हृदय भक्ति के लिए शुद्ध रह पाता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी मनुष्य के भक्ति भाव के मानसिक पक्ष का विश्लेषण करते हुए कहा है कि प्रेम और श्रद्धा भक्ति के दो महत्वपूर्ण अंग है। मनुष्य अथवा भक्त अपने आराध्य के सदगुणों से आकृष्ट होकर उसके प्रति श्रद्धा नत होता है। मानव मन में मूलतः प्रेम का अपरिष्कृत रूप होता है और जब मनुष्य अपनी इन मूल अपरिष्कृत भावनाओं को किसी महत् उद्देश्य की ओर उन्मुख कर देता है तो वही प्रेम भक्ति अथवा कला का रूप ले लेता है।

मीरॉ निजी जीवन में बार-बार बाधा उत्पन्न होने से उनके मन में निराश्य उत्पन्न हो गई थी वह अपने विरोधियों के व्यवहार से टूट गई थी पर उनके सामने गर्व से बनी रहती पर ईश्वर के चरणों में गिरकर असहाय दीन अबला के रूप में समर्पित हो जाती रोने लगती, हमेशा उन्हें अन्याय ही मिला। उसको अपने ईश्वर को रोकर सुनाती अपने दुख की एक एक बात उनको बताती उन्हें अपने ईश्वर के न्याय पर पूरा भरोसा था। समाज की व्यवस्था में दमन और कुरीतियां अधिक होती है और इसी के कारण कई मनुष्य पागल, विद्रोहिणी और अपराधी बन जाते हैं "दर्शनों में आत्मा को अहंकार और दर्प से ऊपर मानते हैं। अहंकार विकृति अध्यात्म को विभाजित करने वाली सीमा रेखा है। वासना के पीछे अहंकार रहता है लौकिक दाम्पत्य में भी प्रायः यह अहंकार ही होता है जो इस पवित्र आदर्श को ऊँचा उठने से रोकता है। वासना के साथ साथ अहंकार एक प्रबल स्वभाव है,। आम मानव में अहंकार का अंश होता है किसी में ज्यादा किसी में कम अहंकार से मनुष्य जल्दी पहचाना जाता है जब कोई विरोध होता है तब अहंकार की भावना तीव्र हो जाती है जब भक्ति में मनुष्य पड़ जाता है और उसमें विनय और समर्पण की भावना आती है तो अहंकार का विलय हो जाता है और जब अहंकार का विलय हो जाता है तो कहीं सच्ची भक्ति होती है। मीराबाई की भक्ति में पूर्ण समर्पण भाव का उसमें अहंकार और वासना कारंचमात्र भाव भी नहीं था। मीरा के जीवन में बचपन से ही श्रीकृष्ण भक्ति की प्रेरणा मिली है और श्रीकृष्ण को अपना पति मानकर

उनके साथ दाम्पत्य की भावना से लिप्त थी उनका रति भाव इतना ऊँचा था उसमें वासना के लिए कोई स्थान नहीं था। बचपन से ही संसार के प्रति उनके मन में जो विराग पैदा हुआ था वही परमात्मा के लिए भक्ति बन गई उनका ध्यान सब कुछ छोड़ कर ईश्वर की भक्ति में लग गई और भाव उनके काव्य में कई रूपों में अभिव्यक्त हुआ और उसी प्रेम मे मस्त होकर गा उठती -

पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे

मीरा की लौकिक दाम्पत्य ने आत्मा की तृप्ति के लिए भक्ति से मुख नहीं मोड़ा बल्कि उनके मौलिक भक्ति की तीव्रता ने उनके दाम्पत्य को असफल बनाया वे लौकिक पति को अपना पति नहीं मानती थी वह तो श्रीकृष्ण को ही अपना पति मानती थी और यह अलौकिक प्रेम उनके लौकिक दाम्पत्य जीवन को असफल बनाया जब लौकिक बंधनों से प्राणी छूटता है तो अहंक का विलय हो जाता है नष्ट हो जाता है तब सब कुछ ब्रह्ममय हो जाता है तब भक्त को माने, अपमान दुख सुख निंदा सब कुछ एक जैसा ही अनुभव होता -

म्हाते मण सांवरो णाम रटपारी
सावरो णाम जानो जग प्राणी कोटयापाप कटयारी।

मीरा की पीड़ा केवल प्रेम की पीड़ा नहीं थी, वह एक नारी थी और उनकी पीड़ा नारी की पीड़ा थी मायके ससुराल से सभी सुखों से वंचित और एकाकी नारी की पीड़ा थी जगत में मीरा का कोई सहायक नहीं है। परमात्मा ही उनका सब कुछ है। मीरा अपने आराध्य अपने प्रियतम और अपने आपको श्रीकृष्ण की परकीया समझने वाली नारी श्रीकृष्ण के साथ अपने दाम्पत्य जोड़ने वाली मीरा अपने प्रभु में प्रेम में एक हो गई और चरम सुख को प्राप्त हुई। इस प्रकार भाव अभिव्यक्ति में मीरा की दबी हुई वासना और कुंठित अहंकार का क्षेत्र नहीं है बल्कि भक्ति की धारा बह रही है अपने प्रिय के प्रेम में पगी उनके सामीप्य का अनुभव करते हैं। उनसे अहं का विलय हो गया और मीरा अमर हो गई।

४. मीराँ की विरह-भावना और वेदना

मीराबाई ने अपने विरह का वर्णन अपने पदों में जितनी वेदना से किया है शायद ही किसी कवि ने किया हो। महादेवी वर्मा की दृष्टि में मीरा की व्यवहारिक पदावली सारे गीति जगत की

साम्राज्ञी ही कही जाने योग्य है। मीरा का विरह वर्णन सिर्फ वर्णन के लिए नहीं है बल्कि उनका दुख एक आतुर प्रियतमा और भक्त का दुख है। मीरा ने अपने विरह को निष्कपट मन से अपने पदों के द्वारा अभिव्यक्ति करती है - मीरा की आँसु ही इस वेदना की साथी थी मीरा की वेदना में अनुभूति और विरह के दर्शन होते हैं।

डॉ. श्रीकृष्ण लाल कहते हैं - मीरा के विरह में जिस पीड़ा व दर्द का वर्णन है वह अत्यंत गंभीर और अनिवर्चनीय है।[1]

विरह ही एकमात्र कसौटी है। प्रेम की वेदना नारी की संगिनी है और मीरा नारी है मीरा के काव्य में वेदना दुख, तड़पन, व्याकुलता आदि के दर्शन होते हैं इन्सान के दुख और सुख की अनुभूति ही वेदना है। मीरा के प्रियतम श्रीकृष्ण के दर्शन न कर पाने से या उनके मन में जो विरह उत्पन्न होता है या जो अपने प्रेमी से एक पल के लिए भी अलग नहीं होना चाहती। उसी तरह गिरधर नागर के वियोग में मीरा व्याकुल हो कहती हैं :

"हेरी मैं तो दरद दिवानी मेरे दरद न जानो कोय
घायल की गति घायल जाने कि जिण लाई हेय
दरद की मारी बन वन डोलू वैद मिल्या नहीं कोय
मीरा के प्रभु पीर मिटै जब वैद सांवलिया होय।

इन पंक्तियों में मीरा मानो युग की वेदना मीराँ में समा गई हो।

मीरा की वेदना में संसार द्वारा प्रताड़ित और ईश्वर के लिए प्रेमी मन की व्याकुलता का आभास होता है। मीरा का अपने प्रियतम की विरह वेदना ही उनके काव्य की सुंदरता है मीरा के ज्यादातर पद विरह की भावनाओं से पूर्ण है। मीरा के वेदनों में प्रिया मिलन की आस है।

मीरा के काव्य में दुखी हृदय के उदगार का अनुभव होता है। विरह वेदना में तपती हुई मीरा कहती है :-

धारे कारण कुल जग छाडयां अब ये क्या विसराया
विरह व्यथा त्याया उर अंतर, ये आस्या णं बुलावां।

म्हारा काई ण, वस सजणी नैन झरत दोऊ नीर

मीरा रो प्रभु थे मिलिया विणि, प्राण धरत ण धीर।

मीरा के पदो मे सबसे महत्वपूर्ण तत्व यही है कि मीरा के प्रत्येक पद पक्ति और प्रत्येक शब्द में उनके विरह का वर्णन है। उनके विरह वर्णन में सच्चे प्रेमी की विह्वलता विवशता और हृदय की मार्मिक पीड़ा गाथा सुनाई देती है। डॉ. श्रीकृष्ण लाल का कहना है - हिन्दी के कतिपय समालोचको ने जायसी के विरह निवेदन मीरा के गंभीर पदों के समान केवल उहात्मक और अतिशयोक्ति पूर्ण युक्तियां ही जान पड़ती है। मीरा गायिका है क्योंकि उनका हृदय प्रिय के मिलन के लिए तड़पता है।

वे अपने को अपनी प्रियतम की जनम की दासी समझती है। उनकी विरह वेदना आत्म अनुभूति से परिपूर्ण है। उनका मन विरह से आर्तनाद है। वह कहती है अगर मुझे पता होता कि प्रेम में पीड़ा इतनी कठोर है तो वह नगर नगर ढिंढोरा पीटती कि प्रेम कोई न करे इसमें दुख के अलावा कुछ नहीं है।

जो मै ऐसा जानती प्रीत किए दुख होए।

नगर ढिंढोरा पीटती प्रीत न करियो कोई।

मीरा ने ईश्वर की भक्ति में डूब कर अपना सर्वस्व अपने प्रिय के लिए समर्पित कर दिया मीरा ने पदों में प्रकृति का सहयोग लिया है। मीरा काग के द्वारा अपने प्रिय को संदेशा भेजते हुए लिखती हैं -

प्रीतम कूं पतियां लिखूं, कागा तू ले जाई

जाई प्रीतम जी सूं यूं कहै थारी विरहिण धान न खाई।[1]

६. जीवन-दर्शन :

मीराबाई ने चेतन को ईश्वर का रूप माना है। मीरा कहती है सारा चेतन और अचेतन आराध्य प्रिय की आत्मा है सूर्य चन्द्रमा पंचभूत सभी परमात्मा का रूप है। ईश्वर उसके अंदर प्रविष्ट होकर अपनी मरजी से उन्हें चलाता है। ईश्वर हमारे हृदय में बसता उसको बाहर ढूंढने की जरूरत

---

१ परशुराम, मीराबाई पदावली (प्रयाग साहित्य सम्मेलन शक १८८४) पृ १०४

नहीं/पंचभूत से बने इस शरीर में जो क्रियाशीलता है वह ईश्वर का ही रूप प्रकट करती है। मीरा का जीवन के लिए उनकी भावना दिव्य है। मीराँ संसार को बुराइयों का घर समझती है। सांसारिक लालसाओं को छोड़ने का मीरा आग्रह करती है उन्हें यह अनुभव होता है कि इस नश्वर संसार से मोक्ष दिलाने का रास्ता सिर्फ ईश्वर के पास ही है। मीरा कहती है हर मनुष्य के अंदर भगवान का वास है उसके साथ छलकपट नहीं करना चाहिए।

जो तेरे हियर अंतर की जाने तासो कपट ना

हिरदे हरि को नाम न आवे सुख न मनियागने

हरि हेतु हेत से कर, संसार आसा त्याग

दास मीराँ लाल गिरधर सहज कर वैराग

इस संसार में किसी को शरण नहीं मिलती। अगर इंसान को मुक्ति पाना है तो उसको ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए। सांसारिक उपादान को छोड़ना होगा। संसार में सारे नाते रिश्ते, सगे सम्बंधी दोस्त मित्र अपने स्वार्थ के है जो जीव इन पर विश्वास करता है या मोह माया में फंसा रहता है उसको मुक्ति नहीं मिलती। मीरा कहती हैं-

तुम सुनो दयाल म्हारी अरजी

भव सागर में बही जात हूँ

काढो तो थारी मरजी

यों संसार संग नहिं कोई

सांचा सगा रघुवर जी

मात पिता औॅर कुटम कबीलों

सब मतमलब के गरजी

मीरा की प्रभु अरजी सुन लो

पारया लगावों धारी मरजी।

मीरा ने एक जगह पर जीवन और मृत्यु के होने पर अथवा विचार व्यक्त करते हुए कहती है -

---

१. भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव, मीराँ की प्रेम साधना, (दिल्ली- राजकमल प्रकाशन १६५६) ३२१

"राम नाम बिन मुकुति न पावा फिर चौरासी जान

साथ संगत मां भूल ण जावा मूरख जणम गंवाया

मीरा रे प्रभु थारी सरण जीव परम पद पावां"

मीरा साफ शब्दों में यह चेतावनी देती हैं कि ईश्वर को पाना है तो उसके भक्तों की स्तुति करनी चाहिए केवल ईश्वर की कृपा से सभी जीवन मुक्ति को प्राप्त हो सकता है और अलौकिक आनंद प्राप्त कर सकता है।

संसार के दुखें से पार पाने के लिए साधु-संगत, पूजा-पाठ, ईश्वर सिमरन तभी सार्थक है जब जीव सम्पूर्ण हृदय से ईश्वर की भक्ति करे अगर ईश्वर कृपा करते हैं तो जीव मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी बन सकता। मीरा भक्ति भाव को ही अपना लक्ष्य समझती है। इसके प्रति पूर्णरूपेण समर्पित होकर मीरा निश्चिंत हो जाती हैं। मीराबाई इस तथ्य से अवगत है कि प्रभु के शरण में आने से सारे पाप धुल जाते हैं, चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ता है अगर मुक्ति न मिले तो ईश्वर धन ही अमूल्य है जिसको मिल जाता है। वह मालामाल हो जाता है। मीरा को यही राम रतन धन की प्राप्ति हो गई।

मैने राम रतन धन पायो

वस्तु अमोलक दंइ मेरे सतगुरू करि किरपा अपनाओ

जनम जनम की पूंजी पाई जग में संवै खोवायो

खरच नहीं कोई चोर न लैवे दिन दिन बढ़त सवायो

सत की नाव खेवटिया सतगुरू भवसागर तरि जायो

मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरखि हरखि जस गायो।

इस पापी संसार के विषय में मीराँ का मत अच्छा नहीं है। वे कहती हैं कि इस संसार में कुबुद्धि बढ़ती जाती है। साधु संगत भजन कीर्तन अच्छा नहीं लगता। जीवन भोग विलास में लिप्त है ईश्वर की निन्दा करते हैं मन भटकता रहता है ऐसे में बस एक ही अटल रास्ता है वह सीधे ईश्वर की ओर ले जाता है और वह है ईश्वर भक्ति और ईश्वर भक्ति के लिए मन का सात्विक होना

आवश्यक है मन की चंचलताओं पर काबू रखे बिना मुक्ति सम्भव नहीं हर दुख में भी ईश्वर को याद रखना, अहंकार को अपने से दूर रखना, तभी मुक्ति के विषय मे प्राणी कुछ सोच सकता है।

मीरॅा कहती है जो भाग्य में लिखा है वो होकर रहेगा इसे कोई टाल नहीं सकता।

करम गति टारे नाहि टरै
सतवादी हरिचंद से राजा
सो तो नीच घर नीर भरे
पाँच पांडु अरू सति द्रौपदी
हाड़ हिमालै गिरे
जग्य कियो बलि लेण इन्द्रासन
सो पाताल धरे
मीरा के प्रभु गिरधर नागर
विष से अमृत करे।"

मीरा का जीवन दर्शन बहुत उच्चकोटि का है। वे कहती है कि मनुष्य जन्म बार-बार नहीं मिलता और जब मिल गया तो इसका सदुप्रयोग करे हरि के भजन और हरि भक्ति में मन लगाएं। मीरा इस संसार को दुख से भरा हुआ मानती हैं और प्राणी को प्रभु भक्ति के लिए निर्देश करती है यह संसार नश्वर है जो कुछ इस जगत में है वह एक न एक दिन नष्ट होना है चाहे वह दाता ही क्यों न हो सिर्फ ईश्वर ही सच है और सत्य है बाकी सब झूठ है। इसलिए एकमात्र सहारा ईश्वर ही है और जीवन का रास्ता भक्ति के द्वारा सीधे ईश्वर के पास पहुंचता है।

७. **निष्कर्ष :**

इस प्रकार अन्तस्संगीत से निर्मित अन्तर्दर्शन ही मीराँ के काव्य का स्वस्थ वैचारिक आधार है, जों प्रेरणा और प्रयोजन दोनों के आधार पर कृष्ण भक्ति परक है। उसमें बहिर्जगत अथवा ठोस जीवन के यथार्थ का समावेश कम है। मगर सामन्ती वातावरण और कुछ अन्य परिस्थितियों के परोक्ष संदर्भ में उसके कुछ संकेत अवश्य मिलते हैं। श्रीकृष्ण की विविधयामी चेतना ही मीराँ की जीवन-चेतना है जो लौकिक से पारलौकिक यात्रा का समर्थन करती है। इसमें मृत्यु का भय नहीं है,

बल्कि अविनाशी में मिलकर अविनाशी हो जाने की तीव्राकांक्षा है। वह सम्प्रदायों के बंधन से मुक्त है और पारदर्शी है। वह विरह की वेदना को झेल कर अहं का विलय करती है और श्रीकृष्ण की लीलाओं के गायन अथवा कान्ता भाव से मधुर कीर्तन के द्वारा सार्थकता को प्राप्त होना चाहती है। मीरा के अन्तर्दर्शन की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि आत्मकेन्द्रित होकर भी वह सामाजिक है और सीमित होकर भी व्यापक है।

चतुर्थ खण्ड

प्रथम अध्याय - मीरा काव्य के संगीतात्मक आयाम

द्वितीय अध्याय - मीरा काव्य की कालजीय रागानुसारिता

चतुर्थ खण्ड

प्रथम अध्याय

मीरा काव्य के संगीतात्मक आयाम

संगीतात्मक आयाम :

काव्य रचना के संगीतात्मक आयाम का अर्थ वह विविधता है जिसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ध्यान रखकर कोई कवि संगीत का आश्रय लेता है। यह आयाम संगीत के किसी एक प्रकार पर केन्द्रित भी हो सकता है और अभिव्यक्ति के किसी एक रूप को भी जन्म दे सकता है। मगर ऐसी दशा में उसे सीमित और अपर्याप्त ही कहा जाएगा। उदाहरण के लिए यदि कोई कवि केवल सुगम संगीत के अन्तर्गत केवल ग़ज़ल की रचना करता है तो वह इसी सीमित श्रेणी में रखा जाएगा। दूसरी ओर मीराबाई जैसी महाकवियत्री की पद रचना को संगीत के विभिन्न आयामों से देखें तो वह शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत और लोक संगीत की सभी आधार भूत अपेक्षाओं पर खरी उतरती है। वह निपुण संगीतशास्त्री से लेकर सामान्य भजन की अप्रशिक्षित गायकी और लोक जीवन की गुनगुनाहट में भी सार्थकता को प्राप्त होती रही है। अपनी इसी विशेषता के कारण मीरा का काव्य समाज के उच्चतम और निम्नतम दोनों वर्गों की सीमाओं को तोड़कर सब जगह समानता से स्वीकृत हुआ है।

शास्त्रीय संगीत का आयाम :

जो संगीत पारंपरिक निमानुसार और शास्त्रबद्ध हो वह शास्त्रीय संगीत कहलाता है। अर्थात् जो संगीत स्वर ताल, लय, राग आदि के नियमों में बांध कर खूबसूरत ढंग से गाया बजाया जाये वह शास्त्रीय संगीत कहलाता है। जब लौकिक पद्धति का विकास होता है और उसे सिद्धान्त एवं लक्षण बनते हैं और इसी तरह किसी समय का लौकिक संगीत विकास क्रम को

प्राप्त कर शास्त्रीय संगीत बनता है और अनेक नियमों से बंधा हुआ होने के कारण अत्यधिक विस्तृत है।

व्यावहारिक संगीत :

जिस प्रकार शास्त्रीय संगीत का सैद्धान्तिक अंग विकसित है उसी प्रकार उसका व्यावहारिक अंग भी प्रबल है। कला का मुख्य उद्देश्य अभिव्यक्ति है ओर विशेषकर संगीत तो ऐसी कला है जिसका सामने ही प्रयोग होता है। नृत्य के प्रकार, गायकी, घराना, स्वरो का उतार चढ़ाव स्वर लगाव, आलाप का ढंग, तानों का ढंग, ताल और लय का प्रयोग, ध्वनि का उतार चढ़ाव, झाला गत, तोड़ा, मोड़, कण, मुर्की, जगजमा, आदि आता है। भारतीय रागों और गायन वादन ,शैलियों का क्षेत्र बहुत बड़ा है क्योंकि एक राग को अलग-अलग ढंग से गाया बजाया जाता है। संगीत का यह पक्ष बहुत महत्वपूर्ण है।

क्रियात्मक पक्ष :

संगीत का महत्वपूर्ण पक्ष इसी में आता है। गायक तथा वादक शास्त्र का ज्ञानी हो ऐसा आवश्यक नहीं है। गुरू शिक्षा प्राप्त क्रियात्मक रूप ही, इसका मुख्य पक्ष है। स्वर का रूप, राग का चलन और शुद्धता भाव आदि का प्रदर्शन इसी पक्ष का अंग है। शास्त्रीय संगीत का केवल क्रियात्मक पक्ष ही नहीं प्रयोग सिद्धानत पक्ष का भी ज्ञान रखने वाले कलाकार ही आज प्रसिद्ध हैं।

मीरा काव्य स्वर राग, ताल, नाद, भाव से पोषित था, फिर भी वह संगीत के शास्त्रीय परिभाषा की समीा में बंधा नहीं था हालांकि कुछ विद्वान इस मत के हैं कि, चूंकि मीरा के मूल पदों पर रागों के नाम नहीं लिखे थे, अगर नहीं भी लिखे तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि मीरा को रागों का ज्ञान नहीं था। यह असंभव सा प्रतीत होता है कि बिना संगीत ताल और लय ज्ञान के कोई भी कवि इस तरह से करताल लेकर पद का गायन एवं नृत्य करें और जिस समय मीरा का प्रादुर्भाव हुआ उस समय तो राजघराने में संगीत का बहुत प्रचार था वैसे भी मध्य काल संगीत का स्वर्णिम युग कहा जाता है। वैसे समय में राज घराने के लोग या बच्चे संगीत

शिक्षा से दूर रहें यह संभव नहीं लगता। मीरा को संगीत के लय और ताल का पूर्ण ज्ञान था। राज दरबारों में नारी का नृत्य होता था। मीरा इसका उल्लेख करती हैं :-

"गवैया गणिका नित करता

वैसी रहे चारो जाम रे।"

मीरा पूर्ण रूप से शास्त्रीय संगीत की ज्ञाता थीं, नृत्य की भी ज्ञाता थीं। उनके पदों की रचना के भावों के अनुसार लय ताल में बंधी, बिल्कुल ठीक प्रतीत होती है। मीरा के पद जो आज गाये जाते हैं उनसे यह अनुभव होता है कि मीरा ने पदों की रचना शास्त्रीयता के आधार पर किया है अगर मीरा को संगीत का ज्ञान न होता तो वह इस प्रकार से लयताल में पद की रचना न कर पातीं। आज शायद ही कोई ऐसा कलाकार हो जो मीरा के पद का गायन न करता हो और यह उनका संगीत ज्ञान ही था जिसके कारण उन्होंने इतने लालित्य और मधुरता से पूर्ण पदों की रचना की है। मीरा काव्य और संगीत दोनों में पूर्ण थीं। भक्ति भाव के उल्लास में मीरा अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रेम में मगन रहती थीं।[1] नाभादास के भक्त माल में मीरा पर यह छप्पय मिलता है।

लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरा गिरधर भजी

सदृश गोपिका प्रेम प्रकट कलियुगहि दिखायो

निर अंकुश अति निडर रसिक जस रसना गायो

दुष्टन दोष विचारि मृत्यु को अद्यम कीयो

वार न वाको भयो गरल अमृत ज्यो पीयो

भक्ति निशान बसाय के काहूँ ते नाहिन भजो

लोक लाज कुल शृंखला तजि मीरा गिरधर भजी।[2]

---

[1] परशुराम, मीराबाई की पदावली (प्रयाग · साहित्य सम्मेलन, शक् १८८४)

[2]. ऊषा गुप्त, हिन्दी के कृष्ण भक्त कालीन साहित्य में सगीत, (लखनऊ : लखनऊ विश्वविद्यालय १६६२) पृ० ४४

ससुराल छोड़ने के बाद मीरा वृन्दावन चली गई आ ैर वहां पर उनका संगीत ज्ञान और मुखर हो उठा। वृन्दावन उस समय संगीत का गढ़ था और उस भक्तिमय संगीतमय वातावरण में उनका संगीत ज्ञान और बढ़ा और इस प्रकार मीरा अपने युग की सबसे विशिष्ट भक्त कवियत्री गायिका हुईं। मीरा के एक-एक पद मे रस है, भाव है, और यही रस संगीत के स्वरो से भरा हुआ है। क्योंकि स्वर ही रस सृष्टा है। संगीत मार्तण्ड पं० ओंकार नाथ ठाकुर जी ने कहा है, "सर्वव्यापी एवं सहज स्वर के बिना साहित्य का श्रेष्ठतम अंक काव्य कैसे उत्कर्ष पा सकता है। काव्य को स्वर का ताल का और सगीत का सबल चाहिए।[1] डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित कहते हैं, तुलसी, मीरा, सूर आदि के काव्य रूपी मुक्त याद संगीत को धागे में न पिरोए गये होते तो साहित्यिक दृष्टि से कितने ही उच्चकोटि के होने पर भी जनमानस के गले का हार न वन पाते। आज भी भविष्य में जब किसी काव्य को कोटि कोटि कंठों से विनिदित करना होगा तब केवल कागज पर अंकित शब्दों से नहीं संगीत से ही कार्य सिद्ध होगा।

मीरा का काव्य केवल कविता ही नहीं एक गीतिकाव्य है, जिसमें संगीत के भिन्न-भिन्न स्वरों का आपस में मेलजोल है। उनके पदों में कीर्तन भाव है, जो ईश्वर के समीप पहुंचने का एकमात्र साधन है। मध्यकालीन संगीत का स्वर्णिम था जहां अनेक संगीतकारों ने शास्त्रीय रूप को आगे बढ़ाया वही मीरा के भक्ति संगीत को भी बढ़ावा मिला।

मीराकाव्य में सुगम संगीत का आयाम :

इसको भाव संगीत भी कहते हैं। संगीत और मानव का जन्म-जन्म का साथ है[2] दोनों का संबंध जब तक सृष्टि है तब तक रहेगा। सुगम संगीत के अन्तर्गत लोक गीत, भाव संगीत और चित्रपट संगीत आते हैं। सुगम संगीत में शास्त्रीय संगीत की तरह नियमबद्धता नहीं है कोई बंध नहीं है। सुगम संगीत में शास्त्रीय संगीत से अधिक सरल है। सुगम संगीत, सरल और कम समय का होता है। इसमें मानव गीत, गजल आदि आते हैं। किसी भी कविता को अपनी इच्छा अनुसार स्वर ताल में बांध कर गा सकते हैं। इस परशास्त्र का बंधन नहीं होता। सुगम संगीत सुनने में अच्छा होना चाहिए, जैसे सूरदास या मीरा बाई के पद को कलाकार अपनी इच्छानुसार

---

[1] प्रभु लाल गर्ग सम्पादक सगीत पत्रिका (हाथरस : संगीत कार्यालय १६७८)

[2] प्रभु लाल गर्ग, सम्पा सगीत पत्रिका (हाथरस . सगीत कार्यालय १६७८) पृ १६

स्वर में बांधकर गा सकता है। भाव संगीत में स्वर रचना गाई जाती है। इसलिए पांच मिनट में ही गायन खत्म हो जाता है।

मीराबाई ने भक्ति भाव में पदों की रचना की है जिसमें भक्ति, नौ प्रकार की मानी जाती है, इसमें भजन और कीर्तन का स्थान उच्च है कीर्तन तथा भजन के द्वारा हृदय की भक्ति भावना सरलता से ईश्वर के लिए प्रकट होती है। मीरा ने अपने सुरों की मोहिनी से अपने प्रिय आराध्य श्रीकृष्ण को भी वश में कर लिया था संगीत गायन से मान की आत्मिक भावनाएं भौतिक लोक से दूर ऐसे लोक में पहुँच जाती हैं जहां केवल सत्य है, शिव है, सुन्दर है। मीरा इसी प्रकार के संगीत को अपना कर अपने आराध्य के प्रेम में लीन हो गईं। मीरा अपने प्रिय के प्रेम में हर पल व्याकुल रहती थीं। व्याकुलता में संगीत की स्वर ही मानव मन को शान्ति प्रदान करता है। इसीलिए मीरा ने अपने मन की व्यथा की पूर्ति के लिए सात स्वरो का सहारा लिया और पदों की रचना की। मीरा ने अपने भाव को संगीत का संरक्षण दिया। मीरा की व्यथा से भरी पदावली को देखकर महादेवी जी ने कहा, "ये सारे पद नीति जगत की अद्भुत सामग्री हैं।"[1]

संगीत के सुरों से उनका काव्य न केवल भारत में बल्कि विश्व साहित्य मे गीतिकाव्य का एक अद्भुत नमूना है -

डी० वी० पलुस्कर का गाया वह भजन गांधी जी के प्रिय भजनों में से मीरा का यह भजन :

हरि तुम हरो जन की पीर

एस० एस० सुबालक्ष्मी ने यह गीत यू० एन० ओ० में गाकर भारत का नाम ऊँचा किया

आली रे मोरे नैना बान पड़ी

दरष बिन दूखण लागे नैन

---

[1]. प्रभु लाल गर्ग सम्पा सगीत पत्रिका (हाथरस : सगीत कार्यालय, १६७८)

गीतों से मीरा का साहित्य भरपूर है।[1]

मीराँ का एक पद -

आज अनारी, ले गयो सारी बैठो कदम की डारि हे माय

म्हारे गले पड़यो गिरधारी हे माय

मे जमुना जल भरन गई थीं आ गयो किसन मुरारी हे माय

सखी साइनी मोरी हंसत है हंसि हंसि दे मोहि तारी

सास बुरी उर नणद हडोला लरि लरि दे मोहे गारी

मीराँ के प्रभु गिरधिर नागर चरण कमल पर वारी।

मीराँ काव्य में लोक-संगीत का आयाम

लोक संगीत में बराबर जगत गाता है नृत्य करता है।[2]

लोक संगीत द्वारा सामाजिक जीवन का कोष संचित हुआ है। जनसाधारण के स्वप्न और आदर्श उद्देश्य और कल्पना सब कुछ लोक संगीत में ही मुखरित होता है।[3]

हृदय की अनुभूतियां तरंगित होकर जब प्रकृति के मध्य बहने लगती है तो लोक संगीत का जन्म होता है।[4]

''लोक संगीत जातीय एकता को सुरक्षित रखने का एकमात्र शक्तिशाली माध्यम है।[5]

मेरी सूक्ष्म विचारों का मूक मेरी जननी की प्रेम पूर्ण लोरिया है।[6]

---

[1]. प्रभु लाल गर्ग सम्पा सगीत पत्रिका (हाथरस सगीत कार्यालय, १६७८)
[2] लक्ष्मी नारायणा गर्ग स० संगीत (हाथरस संगीत कार्यालय १०६६ जनवरी) पृ०२
[3] वही
[4] वहीं
[5] वहीं
[6] वही

भरत के अनुसार "लोक" गीत अनेक देशों में विभक्त हैं। उसके वेष भाषा और आचार विभिन्न हैं जो दर्शन का विषय हो उसे लोक कहते हैं। प्रत्येक प्राणी अपनी भावनाओं को किसी न किसी रूप में अभिव्यक्ति करता आया है। संगीत मानव मन को खुशियों से भर देता है। भाव और आन्तरिक अनुभूतियों को आपसी संबंध बहुत गहरा है, सुख और दुख प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आता है पर उस अनुभव को व्यक्त करने की वाणी और स्वर सबके पास नहीं होता।

"लोक" शब्द अनेक रूपों और अनेक अर्थों में प्रयोग हुआ है। लोक तत्व हमारे जीवन का मुख्य अंग है। लोक हमारे जीवन का समुद्र है और मानव इस जीवन का करूणात्मक रूप है लोक संगीत को सहज संगीत भी कह सकते हैं इसमें किसी भी शास्त्रीय बंधन और नियम न होने के कारण यह आम जनता के लिए सरल है। प्राचीन काल से ही मनुष्य के प्रकृति के साथ घनिष्ट संबंध हैं और इसी कारण उनकी हर क्रिया प्राकृतिक है और मनुष्य प्रकृति के प्रत्येक परिस्थिति में प्रकृति की देखा कलाओं ओर वही प्रभाव उसके संगीत पर था और उस समय के संगीत पर स्वाभाविकता थी अलंकरण नहीं था। वास्तव में लोक गति जनसाधारण के मनोरंजन और आन्तरिक भावनाओं का प्रतीक हैं। लोकगीत में ह्दय का उदगार है। एक सरल संगीत है, एक अदभुत ताना बाना है।[1] जो ह्दय से अपने आप ही निकल पड़ता है सभी लोक गीतों में एक नयापन। एक नया स्वर, एक नया उल्लास होता है। इसमें कोमल कल्पनाओं का मार्मिक चित्रण होता है। इन गीतों की उत्पत्ति में साधनों में दैनिक जीवन की साधारण वस्तुओं का योग है। जैसे पत्तों की सरसराहट, झरने की कलकल, बादलो की गड़गड़ाहट, पक्ष्यों की चहचहाहट की नकल, आदि काल से चला आ रहा। जब सामाजिक चेतना गति में थी उस समय स्वयं ही ऐसी कविता की उत्पत्ति हुई जिसका हमारे दैनिक जीवन में सीधा संबंध था। और यहीं गीत लोकगीत कहलाया। लोकगीत का उदगम मानव के जन्म के साथ ही हुआ आरम्भ में इसका स्वरूप भिन्न था पर धीरे धीरे वातावरण देश काल स्थिति सामाजिक और ऐतिहासिक घटनाओं के परिणाम स्वरूप उसका रूप प्रत्येक काल में परिवर्तित होता रहा। "भरत" के अनुसार, "लोक अनेक देशों में विभक्त है उसके वेश, भाषा और आचार विभिन्न

[1] सं० राम प्रताप त्रिपाठी, सम्मेलन पत्रिका (प्रयागः साहित्य सम्मेलन १९८७) पृ० १५

है। मर्मस्पर्शी दृष्टि सम्पूर्ण लोक पर पड़ती है जो देखा जाये अर्थात दर्शन का विषय हो, उसे ही लोक कहते है। लोक की विशेषताएं अनंत है। ''लोकगीतों का विषय, पर्व, उत्सव, त्यौहार आदि सभी कुछ हैं। इसमे लोक जीवन का चित्रण है। वैदिक काल में मैत्रायण संहिता'' में अनेक प्रकार के लोकगीतो का उल्लेख हैं विवाह के अवसर पर गाथा गान की विधि होती थी। वाल्मीकि रामायण में भी राम के जन्म दिवस पर स्त्रियां इकट्ठा होकर मनोरंजक सामयिक गीतों के गाने का स्पष्ट वर्णन मिलता है। मेहनत मजदूरी के समय, जैसे चक्की पीसना, धान कूटना आदि के समय स्त्रियां इकट्ठे होकर गीत गाकर अपनी थकावट दूर करती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि लोकगीतों का उदभव मानव जीवन के साथ हुआ और उनके सृजन की प्रेरणा मानव को अपनी दैनिक जीवन की गतिविधियों से मिली। इस प्रकार प्रत्येक युग में प्रत्येक काल में लोकगीत शांश्वत प्रचलित रही है।

लोकगीत देहाती दुनिया का दर्पण है। इसके द्वारा हम समाज की स्थिति की जाँच कर सकते हैं और उसकी प्रगति और अवनति को भी संगीत के सात्विक भाव का निर्देशन लोकगीत द्वारा भलीभांति किया जा सकता है। लोगों का कहना है कि शास्त्रीय संगीत का जन्म लोकसंगीत से हुआ है और कुछ लोग यह कह सकते हैं कि शास्त्रीय संगीत से लोक सगीत का जन्म हुआ पर वास्तव में लोक गीत की उत्पत्ति शास्त्रीय संगीत से नहीं हो सकती क्योंकि जब किसी भी वस्तु का आविर्भाव होता है तो उसमें स्वाभाविकता होती है। नियमों का कोई बंधन नहीं होता। नियमों में बांधने के लिए बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है। अतः स्वाभाविक रूप में उत्पन्न होने के बोद भी किसी वस्तु को नियमों में बांधकर जटिल बनाया जाता है। जैसे- जब कोई भी चीज़ नई बनती है, तो वह परिष्कृत में नहीं होती बल्कि गाइड फार्म में होती है।

विशेषताएं :

जीवन के सुख दुख, आस्थाएं, मान्यताएं, विश्वास, परम्पराए, धार्मिक चिन्ता, देव आराधन, जीवन के उतार चढ़ाव, सुखी जीवन की कल्याणकारी भावनाएं सामाजिक तत्वों की अभिव्यक्ति शांति, विद्रोह आदि भावनाएं, कर्तव्य परायणता, प्राकृतिक सौंदर्य, महापुरूष गाथा, यथार्थवाद, आदर्शवाद, जीवन के घटित विभिन्न घटनाएं आदि लोकगीतों के प्रेरणा स्रोत हैं।

लोकनृत्य लोकवाद्य और लोकधुनें इन सभी में बन्धन मुक्तता तथा स्वतंत्रता पाई जाती है। लोकगीतों में वाद्य प्रत्येक स्थान पर विद्यमान रहते है। और ये वाद्य नैसर्गिक होते हैं। जैसे प्रातःकालीन स्त्रियां जब चक्की चलाती हैं तो चक्की की घरघराहट है उनके स्वर से मिलकर उनके वाद्य का रूप धारण कर लेती है। इसी प्रकार धोबी जब कपड़े धोता है तो कपड़ों के धोने की धवनी उनके गीतों के साथ वाद्य का काम करती है। जब बच्चा उत्पन्न होता है तो किसी किसी जगह माताओं की प्रसन्नता के मूक स्वर थाली जैसे वाद्य मिल जाते हैं। नाविक तो पानी की सरसराहट और छप-छप की ताल पर ही गा उठते हैं। गाड़ी हांकने वाले बैलों की घंटियों की आवाज में ही अपनासुर मिला लेते हैं। लोक जीवन में प्रयुक्त समस्त वाद्य जीवन के अत्यधिक निकटतम व समीपतम हैं। ये वाद्य यह सिद्ध करते हैं कि शास्त्रीय वाद्यों का विकास भी लोक वाद्यो के माध्यम से हुआ। बांसुरी को शायद पहले चरवाहे बांस काटकर बना लेते थे और बजा लेते थे। दिलरूबा ओर घुना से ही कदाचिद सितार और सारंगी का विकास हुआ होगा। यह लौकी या नारियल में एक लकड़ी लगा कर सितार की भांति बना ली जाती है। जिसमें तारों के स्थान पर घोड़े की पूछ के बाल लगा लेते हैं और बालों का प्रत्यन्चा लगाकर धनुषाकार लकड़ी से उसे बजा लेते है।

इस प्रकार हम प्रत्येक स्थान पर गाने के लिए वाद्य उपस्थित पाते हैं। लोकवादों में हमे दो स्वरूप मिलते हैं। :

१. मनुष्य की क्रियाएं वाद्य का रूप धारण कर लेती है। जैसे - देकली के चलाने से उत्पन्न ध्वनि। इसी प्रकार भीख मागने वाले दो चपटी लकड़ियों से ही ध्वनि उत्पन्न करके गाते हैं।

२. जहां किसी वस्तु को हम वाद्य के रूप में पाते है जैसे चिमटा, वैरागय धुने, चिमटा वाद्य के साथ बहुत सरस मालूम पड़ती है। कुछ लोग कड़ा भी बजाते हैं। जिसकी ध्वनि नृत्य वादन के समान प्रतीत होती है।

लोकवादों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान ढोलक का है और कहीं-कहीं तो इसके बाज में अदभुत विकास मिलता है। कुछ ढोलक वादक ऐसे होते हैं तो तबले के बाज के सदृश ही ढोलक

भी पूरे विकास और चमत्कार के साथ बजाते हैं। परन्तु लोकगीतों में ढोलक पर केवल लय और ताल ही दिखलाना होता है। पंजाब से मध्य भारत तक और पश्चिम के सिन्ध प्रान्त से बंगाल आसाम मं ढोलक का प्रमुख स्थान है। दक्षिण और पश्चित में इसका परिवर्तित रूपप्रयुक्त होता है। और भिन्न-भिन्न जातियों में इसके भिन्न प्रकार होते हैं। कहार जाति के लोग डमरू नुमा ढोलक का प्रयोग करते हैं जिसे हुडक कहते हैं। इसे एक ही ओर से बजाया जाता है। तोमड़ी का भी लोकवादयों में महत्वपूर्ण स्थान है। लोकजीवन में लोगों ने मुंह से भी वाद्य ध्वनि निकालने का सफल प्रयास किया है। पासी लोग एक लम्बा बाँस बजाते हैं। चर्मकरों के नृत्य में ढोलक के साथ-साथ कटोरे का भी प्रयोग किया जाता है ग्रामीण गायकों का सबसे प्रिय वाद्य खड़ताल है। इस के बिना तो फाग का साज नहीं सजता। बड़े आम की गुठली घिस कर पयडैया बना वाद्य के रूप में प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार पीपल के पत्ते को तोड़ कर भी अपना मन बहलाने के लिए कभी भी प्रयोग कर सकते हैं।

इस प्रकार सभी वाद्यों का विकास लोक जीवन से हुआ है और आज भी यह वाद्य जीवन का एक अंग है। लोक संगीत में तीन प्रकार के वाद्यों का प्रयोग होता है।

१. वे वाद्य जो स्वर का आधार देते हैं। जैसे, एक तारा।

२. वे वाद्य जो या तो सारे समय या थोड़े समय के लिए गाने के साथ बजते हैं। जैसे-बांसुरी, डफली, मंजीरा।

३. वे वाद्य जो लय और ताल का काम देते हैं जैसे ढोलक, नगाड़ा आदि।

लोकवाद्यो की भांति ही लोक नृत्य भी सभी कलाओं में अति प्राचीन है। शास्त्रीय नृत्य और वाद्यों की व्यापकता लोक नृत्य और वाद्य को अपने आप में बांध लेने में सर्वथा असमर्थ रही हैं। क्योंकि लोक नृत्य और वाद्य हृदय से प्रकृत गुणो के आडम्बर हीन आलम्बन है और उनके अभिव्यक्तिकरण ने जीवन में सरसता प्रदान कर लोक संस्कृति और कला का युग-युग से सुरक्षित रखा है। संगीत और वाद्य के शास्त्रीय रूप का उदगम लोक सगीत और वाद्य ही है। लोक गीत मानव हृदय की भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है। जिसमें लय

और धुन प्रधान है। लय की झनकार ही लोकगीतों की आत्मा है। और तन्मयता लाने के लिए ही लय की आवश्यक अनुभव की गई। परिणाम स्वरूप लोकवाद्यों का जन्म हुआ।

लोक नृत्य :

लय के आधार पर ही लोक नृत्यों का निर्माण हुआ। वास्तव में नृत्य और वाद्य लोकगीतों के दो अनिवार्य सहकारी हैं। भारतीय नृत्य को मुख्य चार परम्पराओं के अन्तर्गत माना गया है।

१. मणिपुरी २. कत्थक ३. कत्थककली ४. भरत नाट्यम।

अब क्रमशः प्रत्येक प्रान्त के लोकगीतों के कुछ उदाहरण दिये गये है -

राजस्थान :

उदयपुर के उत्तरी इलाके में लालट, माघर, झूमर के गीत, बिछियों आदि लोकगीत प्रसिद्ध है। रेगिस्तानी भाग के गीत लम्बी धुनों के होते हैं। होली राजस्थान का विशेष लोकप्रिय लोकगीत है।

गढ़सौ होली ली उतरी

मारू हाथ कम्बल माथै मोड़

ली होनी आई राजा जी रई देस में।

लोक गीतों के प्रकार :

लोकगीतों के दो भागों में बांटा जा सकता है -

१. **एकांकी लोकगीत ।**

२. **सामुहिक लोकगीत।**

लोकगीतों का विभाजन :

डॉ० श्याम चरण ने गठन और शैली की दृष्टि से लोकगीतों का विभाजन निम्नप्रकार से किया है -

१. सामान्य लोकगीत

२. नृत्य गीत

३. गीत कथा या लोक गाथा गीत।

राजस्थानी लोकगीत :

हुंगण सई माता जी अतरी

माता हाथ कम्बल माथै मोर किवड़े

हेरे महारइ मन रली

ब्रज के लोकगीत :

इसमें राधा कृष्ण सम्बंधी होली वर्णन होता है।

जैसे -

आज ब्रज में मची रे होरी

भोजपुरी गीत :

खेलौना - १. **भौजिया दे दे कंगना रे**

मांग के टीका ले रे ननदिया

देहब न हो कंगना

इह कंगना मोर नैयर से आइबो

२. **ओ गंगा मईया तोहरी पियरी चढ़ईवो**

साजन से कर दे मिलनवा।

उत्तर प्रदेश के लोकगीत :

१. कजरी : **घेरी घेरी आई बदरिया हो रामा**

कैसे मैं खेलूं कजरिया।

२. रसिया : **जल भरहूँ झकोरी - झकोरी**

रसरिया रेसम की

३. चौताल : यह अवधी भाषा का लोकगीत है और चाचर ताल मे गाया जाता है।

बुन्देलखण्ड में हीरी लोकगीत बहुत प्रसिद्ध है। जैसे -

केसर की उड़त फुहार

कदम तरे ठाड़े भीज रहे।

मीराँबाई के काव्य में लोकगीत

मीरा के पदों में शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ लोकगीत का जो शुद्ध रूप मिलता है वह आश्चर्यजनक है। होली के पदों में जिस प्रकार लय और मात्राओं का उपयोग मीरा ने किया है वह सर्वश्रेष्ठ है। वृन्दावन के बाद मीरा गुजरात चली गई और वही पर उन्होंने अपना आखिरी समय व्यतीत किया। गुजरात और राजस्थान लोकगीत का घर है। मीराबाई का ध्यान इन लोकगीतों की ओर गया और उन्होंने राजस्थानी, गुजराती और बृज भाषा में रचना की। मीरा की लोकगीत का कुछ रूप हमें मिलता है। उन्होंने अपने पदों में लय और मात्राओं का संयोजन किया है। मीरा के पदों मे लोकगीत शैलियों का विशद वर्णन मिलता है। मीरा के होली के पद उत्तर भारत के पूर्वी भाग के होली गीत की शैली के लिये बिल्कुल ठीक है। मीरा के पदों में लोक तत्वों कां सुदर मेल है। होली गीतों की अपनी शैली होती है और उसी के हिसाब से मीरा ने होली के पद लिखे हैं। मीरा का होली का एक पद प्रस्तुत है :

फागुन के दिन चार रे होरी खेल मना रे

बिनि करताल पखावज बाजे अणहद की आनकार रे

बिनि सुर राग छतीसूं गावै, रोम रोम रंग सार रे

खेल मना रे

इसी प्रकार मिर्जापुर की गजल की शैली पर मीराँ के पदों को बाधा जा सकता है :

म्हारा ओलडिया घरआया जी

तण की ताप मिटी सुख पाया हिलमिल मंगल गाया री

मगन भई मिलि प्रभु अपण सू तन का दरद मिटाया जी री

कि अरे रामा चंद कू देख कुमुदनी फूले हरखि भई भेरी

काया जी

मीराँ के लोकगीतों में रे, री, जी, ए, माय, हो, माई आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। मीरा के लोक गीत के राग, सावन, कजरी पूर्वी आदि गरवा गीत गाने की प्रथा गुजरात मे बहुत है।

मीराँ ने गरवा गीत की रचना भी की है। यह कहावत बहुत प्रसिद्ध है कि जहां मीरा के पदों में गरवा नहीं वह गरबा ही नहीं है। इस प्रकार मीरा के भजन लोकगीत रस से परिपूर्ण मधुर सरल और प्रेमी ह्रदय के उद्गार है उनके पदों में व्यथित ह्रदय की पुकार अपने आराध्य अपने प्रिय प्रियतम के लिए थी और उसी दुखी ह्रदय से निकला एक एक शब्द आज इस जगत की देन है। आज अगर भजन गाना है तो मीरा के ही भजन गाये जायेंगे। मीरा एक महान भक्त गायिका जिसने संगीत जगत् में अपना अद्वितीय स्थान बनाया।

चतुर्थ खण्ड

द्वितीय अध्याय

मीराँ काव्य की कालजयी रागानुसारिता

१. संगीत शास्त्रीय रागानुसारिता और काव्य का अमरत्व :

यद्यपि श्रेष्ठ काव्य का अर्थ रागानुसारी काव्य बिल्कुल नहीं है, तथापि मध्ययुगीन हिन्दी काव्य के संदर्भ में संगीत का विशेष भूमिका रही है और उस समय का श्रेष्ठ काव्य संगीत के रागों में रचे एवं गाए जाने के कारण भी काल का अतिक्रमण करता रहा है। जिस काव्य को उस समय के परवर्ती और आज तक के कथावाचक अथवा सगीतशास्त्री गाते रहे हैं, वह अपेक्षाकृत अधिक प्रचारित एवं लोकप्रिय होता रहा है। कारण यह है कि संगीत का आश्रय पाकर और लम्बी संगीत-परम्परा में समा कर इस कोटि का काव्य लोकचित्त में घर कर जाता है और सामाजिक जीवन का अंग बन जाता है। भक्ति-परक काव्य तो इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि आस्थावान आस्तिक जनमानस उसे सहज ही श्रद्धापूर्वक ग्रहण कर लेता है।

यह कहना तो कठिन है कि मीराँबाई ने भारत के संगीतशास्त्र की विधिवत शिक्षा ली थी या नहीं, परन्तु उनकी पद रचना में जो लय का विधान और संतुलन है, उससे यही अनुमान लगाया जाता है कि इन्हें संगीत की या राग परखता की अच्छी व्यावहारिक समझ थी। रागानुसारिता की इस भीतरी सामर्थ्य के कारण ही सूरदास और मीराँ के साहित्य एवं संगीतशास्त्रीय कला के दोनों क्षेत्रों में समान रूप से निरन्तर अपनाए जाते रहे हैं। यह भी हो सकता है कि संगीत के शास्त्रियों और गायकों ने ही मीरा-काव्य की रागानुसारिता को समझ कर उसे शास्त्रीय रागो में बांटा हो, पर इससे मीरां की पद-रचना का संगीतात्मक महत्व किसी भी प्रकार कम नहीं होता। अतः यह आवश्यक है कि मीरा काव्य की रागानुसारिता के अमरत्व पर

विस्तार से संगीतशास्त्रीय विचार किया जाए। इसी क्रम में सबसे पहले शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत ''राग'' शब्द और इसमे निहित अवधारणा का स्पष्टीकरण अनिवार्य है।

२. राग : अर्थ, परिभाषा एवं अवधारणा :

राग : शाब्दिक अभिप्राय :

''राग'' भारतीय संगीत का आधार है। वर्तमान शास्त्रीय संगीत राग-संगीत का ही पर्याय है, रागो द्वारा ही भारतीय शास्त्रीय संगीत का पूर्ण रूप प्रकट होता है। ''राग'' में ही हमारे भारतीय संगीत के जाज्वल्यमान गौरव के उच्चतम शिखर का दर्शन होता है। शाब्दिक दृष्टि से ''राग'' शब्द का उद्‌गम संस्कृत की ''रंज्ज'' धातु से हुआ है। रंज्ज का अर्थ है प्रसन्न करना। रंगना, स्वाद देना। इस यौगिक का आधार शब्द के प्रत्येक अर्थ रंजकता का भाव है। इससे यह स्पष्ट है कि ''रजकता'' राग का अनिवार्य गुण हैं।

भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रथम प्रामाणिक ग्रंथ भरत के नाट्‌यशास्त्र में जिसका समय द्वितीय शती ए.डी. माना गया है। ''राग'' शब्द अनेकों बार व्यवहृत हुआ है परन्तु कहीं भी ''राग'' का मेलोडी के अर्थ में प्रयोग नहीं पाया गया कि आजकल इसका प्रयोग है। यथा-

यथा वर्णाहते चित्रं वा शोभोत्पादनं भवेत्।

एवमेव बिना जानं नाटयं राग न गच्छति।

अर्थात नाट्‌य संगीत के बिना एक रंग रहित चित्र के समान है। यह भाव रहित है। यहां भरत ने ''राग'' शब्द का प्रयोग सामान्य प्रकृति या स्वाभाविक विशिष्टता के अर्थ में किया है -

अपटाक्षेयकृता वेदात्ययिका

हर्ष राम शोकाधाः

विच्छे स्तत्र सभः काग्रस्तज्ञैः प्रवैरोनु।[२]

उपरोक्त श्लोक में भरत ने ''राग'' शब्द का प्रयोग क्रोध के अर्थ में किया।

यस्मिन्वसति रागस्तु यस्माच्चैव प्रवर्त्तते।

तेन वै तार मद्राणां योत्यर्थ लभ्यते।

अर्थात अंश उस स्वर को कहना चाहिए, जो राग या रंजकता का आवास हो, अथवा जो राग, रंग या रस की अधिक हो ये मुख्य उपकरण हो।

इस श्लोक में ''राग'' शब्द का प्रयोग आनन्द अंश स्वर की रंजकता के अर्थ में हुआ है।

स्वरवर्ण विशेषणं ध्वनि भेदेन वा पुनः

रंज्यते येन यःकश्चित स रागः संमतः सताम।

अथवा

योऽसौ ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषिता

रंजको जन चित्तानाम सच राग उदाहृतः।।

अर्थात ध्वनि की वह विशेष रचना जो स्वर और वर्ण से विभूषित हो और जनमानस के चित्त को प्रसन्न करे - राग कहलाते हैं।

भातखंडे जी ने भी स्वर और वर्ण से अलंकृत जन चित्र को आप्लावित करके आनंदमय बना देने वाली ध्वनि विशेष को ही ''राग'' माना है।[1] राग के अनुसार - राग में स्वरों की विशिष्ट संयोजना अनिवार्य है। साथ ही राग के स्वर स्वरूप की आवश्यकता के अनुसार अपने मूलभूत स्थान से किंचित आगे-पीछे भी होते रहते हैं। स्वर का इस प्रकार आगे या पीछे की ओर से लगना अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। किसी स्वर का ऐसा चलन दो स्वरों के मध्यवर्ती अन्तरालों में होता है इसीलिए राग को ध्वनि-रचना कहा गया, स्वर-रचना नहीं। गमक, भीड़ आदि प्रयोगों में स्वरेतर ध्वनियों का समावेश हो जाता है। अल्पत्व-बहुत्व, अंशन्यास आदि

[1] प० भातखडे, श्रीमल्लक्षय सगीतम्, (हाथरस- संगीत कार्यालय १९३४) १७०, १७२

नियमो को लेकर राग के स्वरों का उचित प्रयोग किये जाने पर "राग" का विशिष्ट ध्वनि स्वरूप आविर्भूत होता है।[1]

आचार्य बृहस्पति के अनुसार -

विशिष्ट क्रम और विशिष्ट अनुपात से किया जाने वाला स्वरों का वह प्रयोग राग है, जिसमे विशिष्ट - विशिष्ट स्वरों पर ठहराव हो। राग की स्थापना क्रमशः और शनैः होती है। इस स्थापना का आधार प्रत्येक राग के चार स्थान है जिनके आधार पर बढ़त की जाती है। यह "बढ़त" श्रोताओं के मन को एक विशिष्ट भावना है और वह धीरे धीरे गाढ़ा होता जाता है।[2]

मीराँ पदावली की राग-रचना :

हिन्दी साहित्य अपने शैशव से ही संगीत की गोद में पता है। विक्रम की ९वीं शताब्दी से ही राग-रागनियों में पदों को बांधकर गाने की परम्परा शुरू हो गई। जयदेव और विद्यापति के पदों में भी इस परम्परा का आभास मिलता है। सूफी काव्य में संगीत का समावेश हुआ हालांकि सूफी कवियों ने राग-रागनियां के अन्तर्गत अपने यहां रागों की अवतारणा नहीं की, हिनदी साहित्य के आदि काल से प्रचलित पदों को राग रागिनियों में बाँध कर रागों का सफल विकास कृष्ण भक्ति कालीन कवियों के काव्य में हुआ। कृष्ण भक्ति कालीन ज्यादातर कवियों का सम्पूर्ण काव्य विभिन्न राग रागिनियां में गाया गया है। सिद्ध और नाथ पंथिओं ने अनहत कृष्ण भक्त कवि परमात्मा के साकार रूप के उपासक थे इसलिए उन्होंने आहत नाद को अपने भावों में अभिव्यक्ति किया कृष्ण भक्ति कालीन कवियों के पदों में संगीत प्रेरणा के प्रमुख उपकरण उनके आराध्य और उनकी लीलाएं हैं। इन कवियों के ईष्ट श्रीकृष्ण स्वरों के अधिष्ठाता हैं। सिद्ध संगीतज्ञ होने के कारण संतों के जीवन की विविध दिनचर्या में संगीत एक आवश्यक प्रमुख अंग है, उनकी प्रत्येक क्रियाएं संगीत से संबंधित है। भगवान श्रीकृष्ण के लोकरंजक और लोक रक्षक इन दोनों रूपों का चित्रण कृष्ण साहित्य में मिलता है। इन दोनों रूपों के कारण इससे संबंधित साहित्य में सभी रसों का मिश्रण हुआ जिसके परिणाम स्वरूप मीराँ के पदों में श्रृंगार रस संयोग श्रृंगार, वियोग श्रृंगार ओर करूण रस का अधिक विवरण मिलता है।

---

[1] वहीं
[2] आचार्य वृहस्पति, सगीत चितामणि, (हाथरस- सगीत कार्यालय १९६६) पृ० ८०.

मीराँ का काव्य भाव-विदग्ध मन की सहज अभिव्यक्ति है उनकी पदावली इस बात का प्रमाण अवश्य देती है कि वे संगीत की ज्ञाता थी और साथ ही साथ काव्य शास्त्र की आचार्या भी थी। मीरा के पद आन्तरिकता से परिपूर्ण है, इनकी पद योजना में शब्दों की अमित शक्ति अपनी चरम सिद्धि पर पहुंची दिखाई देती है। मूल पदावली में न तो छंद का उल्लेख है न ही राग-रागिनियों का, इसका मुख्य कारण उनकी भाव प्रबलता है। मीरा पदावली का संगीत तत्व ही उनकी जीवनी शक्ति और सामर्थ का परिचय देता है। मीरा के समय लोकगीत और लोकसंगीत की परम्परा भी विद्यमान थी और विशुद्ध शास्त्रीय स्तर पर सगीत का प्रचार था साथ ही साथ भजन और गीतों के माध्यम से गायन वादन नृत्यका प्रदर्शन बड़े पैमाने पर भक्ति का प्रचार कर रहे थे।

मीराँ पदावली मे गायन वादन नृत्य इस त्रिवेणी का स्वरूप प्रदर्शन का चित्रण उनके पदों में इस प्रकार पाया जाता है।

१. **माई म्हा गोविन्द गुणगाना**

२. **वादन और नृत्य ताल परवावेज्ञ मिरदंग बाजा**

मीराँ के पद झिझोटी, छायानट, गूजरी, ललित त्रिवेणी धानी, सूहा, सारंग, दरबारी, सोरठ हमीर, माँड, तिलंग कामोद, तोडी, बिलावल, पीलू पहाड़ी, जोगिया देश, विहाग, सोहनी, सिंधु भैरवी, सावन, कालिंगड़ा, देवगंधार पटमंजरी मालकोस इत्यादि।

इस प्रकार मीराँ के पदों में ८० राग मिलते हैं। वे राग-रागनियां, श्रृगार और करूण रस से परिपूर्ण हैं। जैसे -

जागो बंसी वारे लालना जागो मोरे प्यारे

रजनी वीता भोर भयो है घर घर खुले किवारे

गोपी दही मथत सुनियत है कंगना के झणकारे

उठो लाल जी भोर भयो है सुर नर ठाढ़े द्वारे

ग्वाल बाल सब करत कुलाहल जय जय सबद उचारे

माखन रोटी हाथ में लीने गउवन के रखवारे

मीरा के प्रभु गिरधर नागर वेग हरयां म्हांरयां पीरे[1]

मीराँ के पदो में संगीत की आयोजना बड़ी सुन्दरता से हुई है। मीरा के काव्य में सगीत के शास्त्रीय पक्ष का दर्शन होता है पर हृदय इस बात की गवाही नहीं देता कि मीरा ने अपने काव्य में संगीत के शास्त्रीय पक्ष को अपने काव्य में, संगीत के शास्त्रीय पक्ष की कठोरता से पालन नहीं किया है। मीरा के काव्य में जो संगीतात्मकता आई है उसका कारण मीरा अपने अभिव्यक्ति को ज्यादा हृदयग्राही बनाना चाहती थी। मीरा के मन के भावों में संगीत का अंश जो अपने आप आ गया था, वही उनका संगीत बन गया। मीरा ने अपने काव्य का सृजन किसी नियम के आधीन नहीं किया।

मीरा के काव्य में संगीत के सभी तत्व तकरीबन मिल जाते हैं। कई विद्वानों ने यह माना है कि कई रागों में उन्होंने अपनी प्रतिभा का प्रयोग किया है और रागों का आविष्कार भी किया है। जैसे राग मीरॉ की मल्हार आदि। मीराँ ने रागों का प्रयोग पदों के भावों और समय को ध्यान में रखते हुए किया है। उनके पदों की सबसे बड़ी विशेषता, पद और राग का सामंजस्य, उनके पदों में करूण और श्रृंगार रस की प्रधनता है। उन्होंने प्रायः करूण रस की भावनाओ के लिए जोगिया राग का प्रयोग किया है।

त्रिविध संगीतात्मकता :

गायन :

श्रीकृष्ण भक्त कवियों के काव्य मे गायन वादन और नृत्य तीनों की विस्तृत रूप से चर्चा हुई है। मीरा काव्य में तीनो संगीत का समावेश देखा जा सकता है हालांकि मीरा का उद्देश्य संगीत की शास्त्रीयता का प्रचार करना नहीं था फिर भी एक उनके काव्य में संगीत के सभी तत्व प्राप्त होते हैं। मीरा प्रियतम के वियोग में अपने हृदय की व्यथा को पदों के रूप में गाकर व्यक्त

---

[1] वही, पृ० १५८

करती थी। मीरा के काव्य में संगीत की प्रेरणा देने वाले उनके आराध्य प्रभु और उनकी लीलाएं हैं मीरा ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण की जिस लीला या रूप का रसास्वादन किया उसी को पदों में गाकर उसको साकार रूप दिया। डॉ. नगेन्द्र कहते हैं कि "मीराबाई का काव्य उनके हृदय से निकले सहज प्रेम उदगार का साकार रूप है उनकी कृति एकान्ततः और समग्रतः प्रेम माधुरी मे रमी है। अपने आराध्य गिरधर नागर गोपाल का विलक्षण रूप छटा के प्रति उनकी आसक्ति अनेक शब्दधारा बनकर फूट पड़ी -

माई म्हां गोविन्दा गुण गाँस्या (टेक)

चरणोक्षित रो नेम सकारे नित उठ दरस जास्यां

हरि मंदिर मों निरत करावा घुघरजा धमकास्या

स्याम नाम रो झाझ चलास्या, भोगार तर जास्यां

ये संसार वीहरो कांटो गेल प्रीतम अटकास्यों

मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर गुण गावां यास्या।"

वादन

मीरा के पदो में अनेक वाद्यो का विवरण मिलता है। मीरा स्वयं एकतारा बजाकर गाया करती थीं। मीरा के पदों में कई वाद्यों का उल्लेख मिलता है -

होड़ी पिया विण लागां री खारी

शूणों विरहण पिव बिण डोड़ा तण गयां पीव पियारी

विरहा दुख मारी

देस विदेश सणेशा ण जावां म्हारो अणोशा भारी

गणतां गणतां घिसायां रेखां ओगरिया री शरी

आयां णारी मुरारी

वाज्यां झांझ मिरदंग मुरड़िया वाज्यां कर इकतारी

आया वेसत पिया धर णारी म्हारी पीड़ा भारी

स्याम मण वयां री बिसरी।

इस पद में झांझ, मुदंग, मुरली और इकतारा का स्पष्ट वर्णन मिलता है। मुरली श्रीकृष्ण का एक अटूट अंग माना गया है और मीरा ने अपने पदों में मुरली के विषय में भरपूर वर्णन किया है मीरा ने अपने कुछ पदों में श्रीकृष्ण की मुरली वादन को लेकर पदों की रचना की है -

१. मुरलिया बाजी यमुना तीर

मुरली म्हारी मण हर लीन्हों चित धरां णा धीर

धुण मुरली सुण सुध बुध बिसरो जर जर म्हारो शरीर

२. भई हो बावरी सुनके बांसुरी, हरि बिनु कछु न सुहाए भाई

श्रवण सुनत मेरी सुध बुध बिवरी, लगी रहत तामें

मन की गोसरी

नेम धरम कोण कीनी मुरलिया कोण तिहारे बाँसुरी

अधर मधुर बंसी बजावा रीझ रिझावां ब्रजनारी जी।।

नर्तन :

लय और ताल के साथ अंग संचालन करते हुए हृदयगत भावनाओं को शरीर की चेष्टाओं द्वारा प्रकट करना नृत्य कहलाता है। गायन वादन का समावेश तो भक्ति कालीन सभी धाराओं के साहित्य में प्राप्त होता है पर नृत्य का वर्णन कृष्ण-काव्य में बहुतायत प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण को नटराज भी कहा जाता है और नृत्य के आचार्य माने जाते हैं। कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में दो प्रकार के नृत्यों का उल्लेख मिलता है। तांडव, दूसरा लास्य। तांडव नृत्य वीर और रौद्र रूप का होता है और मधुर सुकोमल नृत्य लास्य कहलाता है। भगवान शंकर ने तांडव नृत्य

किया था इसमे संहार की भयंकरता, रौद्र, वीरत्व आदि को प्रदर्शित किया जाता है। तांडव नृत्य में अंगों के मरोड़ कर झटके से अंग संचालन किया जाता हे। मीरा के पदों में भावनृत्य का वर्णन मिलता है। मीरा स्वयं अपने आराध्य के भक्ति के आवेग में श्रीकृष्ण के सम्मुख नृत्य मग्न हो जाती थी उन्हें उस समय सिवाय अपने ईष्ट के किसी और का ध्यान नहीं रहता था इसी संदर्भ मे एक पद -

पग बांध घुंघरयों णाच्यो री

लोग कहयां मीरा मई बावरी शाशु कहया कुल णाशी री

ताल पखावज वजा मिरंदा साधां आगे णांची

साज सिंगारित बांध पद घुंघर लोक लाज तजि नाची।

मीरॉ का नृत्य उनके ह्दय की वेदना का प्रतीक है। मीरा ने अपने काव्य में अपने ईष्ट श्रीकृष्ण के ताडव नृत्य और बाल नृत्य का वर्णन किया है। बाल नृत्य का एक पद -

सखा म्हारो कानूड़ों कलेजे की कोर

मोर मुकुट पीताम्बर सोहै कुंडल की झकझोर

वृन्दावन की कुंज गलिन में नाचत नंद किशोर

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कंवल चितचोर

उसकी पीठ उल्टा मनुष्य का रूप वीर भयानक गुस्से वाला भाव तांडव नृत्य में प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण को कालीय नाग को वश में करने के लिए रौद्र मुद्रा में तांडव नृत्य करना पड़ा था। इसी संदर्भ में एक पद -

कमल दल लोचण, थे नाथयां काल भुजंग

कलिंदी दह नाग नाथ्या कालीन फण पै नृत्य फिरंत

नृत्य मीरा के लिए प्रेम की पराकाष्ठा थी। अनुराग की चरम सीमा थी कृष्ण और गोपियो के मिलन की क्रीड़ा रास लीला नृत्य बन जाती ये रास लीला नृत्य मीरा के काव्य का प्रमुख अंग रहा है। नृत्य के माध्यम से श्रीकृष्ण को रिझाने का प्रयत्न केवल मीरा ने ही किया है, उनके पदों मे नृत्य संबंधी आत्म-विषयात्मक उल्लेख जगह जगह पर मिलता है। इसी के संदर्भ में -

म्हो गिरधर आंगा नाच्या री

णाच णाच म्हां रसिक रिझावां प्रीत पुरातन जाच्या री

स्याम प्रीत रो बांधि घुघरयो मोहण म्हारे सांच्यो री।

संगीत रस की प्रचुरता :

भारतीय परम्परा के अनुसार रस ही वृक्ष है और सरस्वती को वीणा का संगीत ही रस है। यह मान्यता प्रतीकात्मक है, मगर महत्वपूर्ण है। डॉ. नगेन्द्र ने रस सिद्धांत नामक पुस्तक के प्रथम अध्याय के पृष्ठ तीन पर लिखा है। सामान्यतः ''रस'' का चार अर्थों में प्रयोग होता है। १. पदार्थों का रस, २. भक्ति का रस, ३. साहित्य का रस, ४. आयुर्वेद का रस। रस के इन चारों अर्थों में आस्वाद का अर्न्तभाव स्पष्ट है। माध्यम अलग अलग है, माध्यम ज्ञान इन्द्रिय रसना भी हो सकता है और सूक्ष्म इन्द्रिय मन और आत्मा भी हो सकता है।

''रस'' शब्द का पहला अर्थ वेदों मे स्पष्ट रूप से वाद्य है। वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम युग रहा है। वैदिक युग से अभिप्राय उस सुदीर्घ काल खंड से है जिनमें चार वेदों तथा उनके विविध अंगों का विस्तार हुआ है :

ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में वनस्पतियों के रस का उल्लेख है। यथा -

म्हे यत्पित्र है रसं दिवे करब त्सरत ऋगां।

जिस प्रकार यजमान महान और पालक देवता का ह्दय रूप में रस देता है -

सोमो अर्शति धर्ण सिर्द धान इन्द्रिय रसमं, सुवीरो अभिवास्तियः

इन प्रयोगों में रस का मूल अर्थ वनस्पति सार ही है। पदार्थो में सोमरस के संसर्ग से रस की अर्थ परिधि में शक्ति मद और आह्लाद इन तीनों गुणों का सम्मिश्रण है।

उपनिषद का अंतिम चरण। ये भारतीय चिंतन धारा का प्रमुख स्रोत है। उपनिषदो की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी है। इसलिए इस युग में रस के अर्थ में भी सूक्ष्म तत्वों का समावेश हो गया तैत्तरीय उपनिषद के - २.१. (क) द्वारा रस को शक्ति का प्रतीक माना गया है। इस प्रकार रस भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। तैत्तरीय उपनिषद २.७. के निम्न प्रसिद्ध वाक्य में रस का आध्यात्मिक अर्थ बहुत स्पष्ट है।

रसो वैसः। रस ह्येवाये लब्ध्वानन्दी भवति

भटट नायक अभिनव गुप्त, विश्वनाथ तथा कल्लिनाथ सभी रस को ब्रम्हास्वादसहोदर माना है।

रस अनिवार्यतः अनुभव जन्य है यह संगीत रस हो और चाहे काव्य रस हो, जो अनुभूति प्रधान है उसकी व्याख्या कठिन है।

संगीत में स्वर और लय में दो माध्यम है जिनके द्वारा भावनाओ की अभिव्यक्ति होती है। भावों का चरमोत्कर्ष ही रस है।

रस के सम्पूर्ण विवेचन का आधार भरत का यह सूत्र है -

तत्र विभानुभाव व्यभिचारि संयोगाद रस निष्पत्ति।[1]

बढ़त में शान्त भाव रहता है। फिरत में चंचलता का भाव, क्योंकि फिरत में तीनों सप्तकों का प्रयोग होता है। इसलिए श्रृंगार और अदभुत रस संबंधी भाव व्यक्त होते हैं। तीनों सप्तकों में फिरत के लिए कलाकार दूर-दूर के स्वर लेकर आश्चर्य का भाव पैदा करता है, बोल उपज में अनेक भाव व्यक्त होते हैं। लयकारी सरगम, तान बोल तान भी अदभुत रस के भाव उत्पन्न करती है।

---

[1] सूरतनाट्यशास्त्र स० प्रभुदयाल गंज (हाथरसः सगीत कार्यालय) पृ० ६३

आलंकारिक तत्व भीड़ गमक कण, खटका मुर्की आदि के प्रयोग से गायन में विचित्र रसो की उत्पत्ति होती है। भीड़ के प्रयोग के कारण गायकी करूण, श्रृंगार और शान्त रस प्रधान बन जाती है। खुली व चपटी आवाज में गायन, गमक, तानों के प्रयोग और लय की द्रुतता के कारण ख्याल में अदभुत रस का आभास होता है। इस प्रकार केवल स्वर कोई भाव नहीं पैदा करता।

एक ही राग के गायन में हमे अनेक प्रकार के भावों के दर्शन होते हैं। मालकोस के विलम्बित ख्याल के आलाप में हमें शांति, करूण और श्रृंगार रस दिखाई देता है। गमक और द्रुत तानों के प्रयोग से वीरता का भाव उत्पन्न होता है। लय के अनुसार गायक की प्रकृति के अनुसार भाव बदल जाता है। विलम्बित लय, मध्य लय और द्रुत ख्याल मे लय की भिन्नता भिन्न रसों के उत्पादक बन जाते हैं। विलम्बित लय शान्त रस का मध्य लय श्रृंगार एवं करूण रस का द्रुत लय अदभुत रस का आभास देती है। स्वरित का जिस स्वर से संवाद होगा वह स्वर शान्त रस का उत्पादक होगा। जैसे स का म से स का प से स का सां से और स का ग से।

भरत के अनुसार नाना भावोपगत स्थाई भाव ही रस है। भरत ने रस का वर्णन नाट्य के संदर्भ में किया है। परन्तु उन्होंने संगीत को नाट्य का एक आवश्यक भाग माना है। इससे यह संकेत मिलता है कि भरत ने सभी ललित कलाओं के अर्थ में एक निरूपण किया है।

भरत ने व्यापक रूप से भाव का यह अर्थ ग्रहण किया जो रस का भावन करे वे भाव है, भरत ने चार प्रकार के भाव बतलाए -

१. **स्थाई भाव,** २. **विभाव,** ३. **अनुभाव,** ४. **व्यभिचारी।**

भरत ने मुख्य रूप से ८ स्थाई भाव माने। बाद में "शुभ" भी परिगणित हुआ और स्थाई भावों की संख्या ९ हो गई। आनंद वर्धन, अभिनव गुप्त तथा रस गंगाधर कार, पंडित राज जगन्नाथ ने ९ स्थाई भाव माने हैं उसके अनुसार रसों की संख्या ९ मानी लेकिन रूद्रट ने अपनी कृति काव्यालंकार में रसों की संख्या १० मानी है। भरत ने स्थाई भावों से ९ रसों का उदभव माना।

	रस	स्थाई भाव
१.	रति	श्रृंगार
२.	हास	हास्य
३.	करूण	शोक
४.	रौद्र	क्रोध
५.	भयानक	भय
६.	वीर	उत्साह
७.	अदभुत	विस्मय
८.	शान्त	निर्वेद
९.	वीभत्स	जुगुप्सा

विभाव :

भरत के अनुसार विभाव कारण निमित्त हेतु का पर्याय है। विभाग स्थायी भावों को जगा देने के कारण होते हैं। अतः जो रस बोध के लिए सामग्री प्रस्तुत करे। वे विभाव है विभाव दो प्रकार के माने जाते हैं -

१. आलम्बर विभाव २. उद्दीपन

आलम्बन विभाव :

नायक-नायिका स्थायी भावों को उदबुध करने के कारण आलम्बन कहलाते हैं।

उद्दीपन विभाव :

बाह्य परिस्थितियां, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि वस्तुएं आलम्बन विभाव के द्वारा भावों का उद्दीप्त करने के कारण उद्दीपन विभाव कहलाते हैं।

अनुभाव :

विभाव के दोनों प्रकारों द्वारा पल्लिवित होने के पर स्थायी भाव के आश्रय में जो चेष्टाएं होते हैं। उन्हें अनुभव कहते है।

व्यभिचारी भाव :

स्थायी भाव के बीच बीच में प्रकट होने वाले भावों को व्यभिचारी भाव कहते हैं। ये भाव स्थायी भावों को पुष्ट करते हैं। इनकी संख्या ३३ है - श्रम, मद, निर्वेद, हर्ष अभेद।

काव्य का योग गायन को अधिक सुन्दर बना देता है। ख्याल गायन में बढ़त, फिरत, लयकारी आदि जैसे सोपान होते हैं प्रत्येक अवस्था के बदलते रहने से रस भी भिन्न हो जाता है।

ठुमरी दादरा :

इन दोनो गायन शैलियो में काव्य की प्रधानता है। काकु के अत्यधिक प्रयोग के कारण ये संयोग और वियोग के भाव अभिव्यक्त करती है।

टप्पा :

इस गायकी मे श्रृंगार रस संबंधित काव्य होता है। लेकिन स्वर संयोजन द्वारा अदभुत रस का आभास होता है।

तराना :

लय की विविधता एवं अति द्रुतता के कारण यह गायकी वीर रौद्र और अदभुत रस की परिचायक हो सकती है।

उपर्युक्त सभी शैलियों में शब्दों का प्रयोग होता है पर उनकी मात्रा में अंतर है। कम शब्दों का स्वर के विभिन्न सन्निवेशों द्वारा भिन्न भाव उद्बोधक बना लिया जाता है। रागों के स्वर संनिवेशों के अनुसार रस अपना रूप बदलता रहता है।

संगीतज्ञ रस निष्पत्ति कैसे करता है? इस विषय पर संगीत रत्नाकर ग्रन्थ मे विचार किया गया है। शारंगदेव ने रस निष्पत्ति के ९६ प्रकार बताये हैं जिसमें ये चार प्रमुख है। उच्चार लय काकु विश्रान्ति, उच्चार भेद पर ही स्वर के प्रभाव हो मार्मिकता और रहस्य निहित है।

संगीत में भावों को अभिव्यक्त करने वाला कलाकार होता है। रस कलाकार के हृदय में होता विकसित संवेदनशीलता के कारण सीधे जीवन में से रस ग्रहण की क्षमता रखता है। रस की अनुभूति रसिक सहृदय श्रोताओं और कलाकार दोनों के पारस्परिक संबंधो पर निर्भर करती है। कलाकार की जिस सीमा तक गीत के भाव पात्र से रसात्मक एकता होगी का भेद प्रयोग सहज क्रिया के रूप में सामने आता जायेगा और उसी सीमा तक श्रोताओं को रसानुभूति होगी, गायक और श्रोता का पूर्ण तादात्म्य ही संगीत का रस तत्व है।

गत रागदारी संगीत की एक अन्यत्र विद्या है। गत का प्रस्तुतीकरण वाद्यों पर होता है। संगीत के उस दूसरे प्रकार वादन में संगीतात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम केवल ध्वनि है। जिसके उतार चढ़ाव तीव्रता गुण आन्दोलन लय लहजा एवं स्वरों की दूरी द्वारा अलग-अलग भाव उत्पन्न किये जा सकते हैं। स्वर की तारता के बढ़ने के साथ-साथ भावनात्मक अनुभूति भी प्रबल होती जाती है। वादन संगीत तादाम्कि वाक, (अव्यक्त वाणी) पर आधारित है। इसलिए निश्चित भाव प्रकट करने में असमर्थ होने के कारण यह कोई स्थापित इस अभिव्यक्त नहीं कर सकता निश्चितता अर्थ में निहित होती है और उस पद में रहता है वाद्य में पद का अभाव रहता है पर वाद्य के स्वरों में प्रबलता और अवलम्ब के कारण छोटे छोटे स्वर समूह निर्मित होते रहते हैं, जो हमारे भावों की अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं।

वादन में भी रस का भेद लय, आलंकारिक ताने स्वरोत्पत्ति के ढंग मंद्र तार सीमा, वादन की रूचि स्वरित संवादन विश्रान्ति आदि पर निर्भर करता है।

वाद्य अपने गुणों सहित अर्थपूर्ण है, प्रतीकात्मकता और प्रयोग विस्तार के कारण वाद्य सभी अनुभूतियों को व्यक्त कर रस निर्मित में समर्थ बनता है। वाद्यों की ध्वनि सुनकर वस्तु स्थिति का स्वतः अनुमान लगाया जा सकता है कि वे जिस प्रकार के भावों से सम्बंध है।

नगाड़ा, तबला, पटल, मृदंग, भेरी आदि वाद्यों की ध्वनि वीरता एवं क्राध के भावों को दर्शाती है। इसलिए ये वाद्य वीर एवं रौद्र रस के प्रेषक होने के कारण युद्ध के सूचक है। प्राचीन काल मे मेरी दुदुंभी आदि वाद्यों का वादन दुश्मनो में भय उत्पन्न करने के लिए होता था। सेना को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिए शंख और मृदंग को जोर जोर से बजाया जाता था। यह भीष्म पर्व में कहा गया है, श्रीकृष्ण का पाञ्चजन्य नामक शंख था और अर्जुन का देवदत्त नामक शंख था। श्री मदभागवत गीता में ''पाञ्चजन्य'' एवं ''हृषीकेषो देवदत्त धनंजय'' ऐसा उल्लेख है।

संगीत में मानव अपने को भूल जाता है और सुमधुर संगीत सुनने बाद वह स्वभावतः परमानंद की स्थिति में पहुंच जाता है। जिसे समाधि अवस्था कहा जा सकता है। इस अवस्था में विशिष्ट रस की बात नहीं रह जाती। संगीत का यह रस पूर्वोक्त रसों से भिन्न होता है। इस ब्रह्मानंद रस में समस्त रसों का समावेश होता है।

संगीत के अन्तर्गत आने वाली तीसरी कला नृत्य है। नृत्य के आधार लय है जो गति का परिष्कृत रूप है। गति अति सूक्ष्म होने के कारण सार्वकालिक एवं सार्वभौम है। नृत्यकला वस्तुतः नाट्य और संगीत के समन्वय से निर्मित हुई है। एक और भाव भंगिकाओं के कारण इसका संबंध नाट्य से होता है। दूसरी ओर लय ताल का प्रबल आधार इसे सगीत से संधि रखता है महर्षि भरत ने नर्तन के तीन भेद माने है - . नृत्, वृत्त, नृत्य। नृत् के कारण है नृत्त में अंग संचालन क्रिया प्रमुख रहती है पर नृत्य के अंग अंग संचालन भाव प्रदर्शन के अनुकूल चलता है। संगीत की दृष्टि से नृत्य एकांगी है क्योंकि यह केवल लय पर आधारित नृत्य में स्वर का आधार न होने के कारण परवर्त्ती कई भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इसे स्वतंत्र कला के रूप में स्वीकारा है।

दृश्य काव्य में नृत्य का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि रस उत्पत्ति के लगभग सभी साधन इसमें उपलब्ध है। मनोभावो से संदर्भ रखने वाले कार्यकलाप करता है तथा नाना लीलाओं, हावभाव तथा कटाक्ष द्वारा दर्शकों को विमुग्ध करता है। मूर्तिमान रस नहीं है, आवश्यकनुसार प्रत्येक रस नृत्य में आता है। मानसिक भावों को प्रत्यक्ष दर्शन कराकर जितना मानवीय प्रकृति और रूचि का परिज्ञान अभिनय द्वारा कराया जा सकता है उसका अन्य साधनों से नहीं इसलिए नृत्यका ध्येय मनोरंजन तो है ही पर साथ ही मानवीय विचारों के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंश को भी

सामने लाना है। इसलिए नृत्यकला में सभी रसों का योग है। इस प्रकार संगीत रस तत्वों से परिपूर्ण है। मीरा के काव्य मे आत्म रस है। साहित्यिक दृष्टि से मीरा के काव्य में श्रृंगार और शान्त रस विद्यमान है पर प्रेमभक्ति और भावना की दृष्टि से उनका काव्य मधुर रस से ओतप्रोत है। मीरा काव्य में श्रृंगार रस संयोग और विप्रलभ दोनों रूपों मे प्राप्त है। मीरा का प्रेम रति भाव का है। मीरा के प्रिय सर्वगुण सम्पन्न श्रीकृष्ण है जिनका मीरा से जन्मों का साथ है। मीरा के पदों में संयोग श्रृंगार और विप्रलभ श्रृंगार का बाहुल्यता है। मीरा के पदों रस निष्पत्ति सहज सा रूप में अवतरित होता गया है। संयोग श्रृंगार मे मीरा का स्थायी भाव रति है। मीरा का दाम्पत्य जीवन अलौकिक संबंध पर आधारित है। इसी संदर्भ में संयोग श्रृंगार का एक पद -

म्हा मोहणा रो रोप लुभाणी

सुन्दर वदणा, कमल दल लोचण, बांका चितवण, नैण समाणी

जमणा किणा कान्हा, धेणु चरावे वैसी बजावे मीट्ठा ध्वनी।

इस पद में मीराँ के मन में श्रीकृष्ण के लिए रति का स्थायी भाव उत्पन्न होता है। मीरा के पद अधिकतर विप्रलभ श्रृंगार के पद है जिसमें मीराँ के अलौकिक प्रेम की पीड़ा का दुख दिखाई देता है। मीरा की अलौकिक तड़प और वेदना लौकिक रूप से व्यक्त होने के लिए तड़पती दिखाई देती है। मीरा की प्रेम विह्वलता तल्लीनता, प्रिय की सोच, उदासीनता, उत्सुकता, आह और प्रिय मिलन की आकांक्षा मीरा के पदों की विशेषताएं हैं। विप्रलभ श्रृंगार का एक पद

सांवरे मारया तीर

री म्हारा यार निकड़ गया तीर सांवरे मारया तीर

विरह अनड़ लागो उर अंतर, व्याकुल म्हारा सरीर।

स्वर-सोष्ठव :

स्वर की उत्पत्ति :

"स्वर" शब्द का उदगम संस्कृत के स्वृ धातु से हुआ है। धातु में अप्रत्यक्ष जुड़कर स्वर संज्ञा शब्द बनता है और जिसका रूप बनता है - स्वरित, इसका अर्थ है चमकना।[1] स्वर शब्द के कई अर्थ है जैसे सुख प्रकाश, आनंद, स्वर्ग, सूर्य चमक आकाश गुण गाना।[2]

"स्वर" शब्द की उत्पत्ति और विवरण भरत व नारद शास्त्र में नहीं मिलती।

कोहल के अनुसार - "धवमी रक्तः स्वर स्मृतः - जिसका अर्थ रंजक ध्वनि ही स्वर है।

मतंग मुनि ने अपने ग्रन्थ "वृहदेशी" में सबसे पहले स्वर शब्द की व्युत्पत्ति की है -

राजृ दीप्रावृति धातोः स्व शब्द पूर्वकस्य च ।।

स्वयं यो राजते यष्मात तस्मादर्ष स्वरं स्मृतः।

नवं स्वर इति क्रिम१ उच्यते राग जनको ध्वनि

स्वर इति (४)

व्याकरण की दृष्टि से "स्व" उपपदपूर्वक राजृ दीप्ति अर्थ वाली, धातु से ऊच या अप प्रत्यय लगाने पर स्वर शब्द निष्पन्न होता है। स्वर शब्द में आए "स्व" का स्वयं और "र" का राजते। इस साम्य से निरूपित द्वाराभी स्वर शब्द सिद्ध किया गया है। इस प्रकार स्वर का अर्थ है जो अपने आप (बिना किसी सहायता के) शोभित होता है।

मतंग के समय "स्वर" के विषय में अधिक चिन्तन हुआ शारंगदेव के अनुसार -

"श्रुत्यनन्तर भावी यः स्निग्धी५ नुणानात्मकः

स्वतो रन्जयति श्रोतृचितं स स्वर उच्यते।

---

[1] मोनियर विलियम्स, सस्कृत इगलिश डिक्शनरी (लदन : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५६) पृ. १२८१.

[2] वहीं

अर्थातु श्रृति के अनंतर उत्पन्न होने वाला स्निग्ध अनुरणानात्मक श्रोता के चित्त का स्वयं रंजन करने वाला नाद स्वर कहलाता है।

सामवेद के गायन में तीन स्वरों का ही प्रयोग होता था। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, - इन तीन स्वर संज्ञायों में भाषागत आघात, उच्चता नीयता ये दोनों पक्ष अन्वित थे। वैदिक काल में ही सामगान सात स्वरों में होने लगा था -

सप्त स्वरास्तु गीयन्ते समिपिः साम गावधै।

सत्यता यह है कि संगीत का मूलभूत उपादान स्वर है स्वर वह नाद है जो रंजकता से पूर्ण है और जिसका दूसरे नादों से विशिष्ट हैं।

इनके द्वारा वेद के सूक्ष्म अर्थ स्पष्ट होते हैं। इसलिए इन्हें स्वर कहा गया।[1]

याज्ञवल्क्य और पाणिनी के अनुसार - परवर्ती काल में तीन आदि स्वरों (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) से षडजादि, सात स्वर उत्पन्न हुए।

स्वर की परिभाषा एवं विकास :

वैदिक श्रोत भारतीय संगीत की प्राचीन शैली है। प्रारम्भ में वैदिक मंत्रों का उच्चारण केवल एक स्वर में ही होता था और यही एक स्वर के गायन को आर्थिक कहा गया। एक स्वर के प्रयोग से गायन केवल पाठ के रूप में ही था। संगीत कम था क्योंकि इस प्रकार के गायन में तारता और लय की कमी थी। प्राचीन आचार्यों ने मंत्रों के उच्चारण में उतार चढ़ाव का प्रयोग किया जिससे दो स्वरों में गान होने लगा और यही दो स्वरीय गायन, गाथिक कहलाया। नारदीय शिक्षा में इन दो स्वरों को ब्राह्मण स्वर और भाषिक स्वर कहा गया कुछ समय तीसरे स्वर का विकास जो स्वरित कहलाया। इस प्रकार सामवेद में तीन स्वरों का प्रयोग होने लगा। सामवेद में ही सातों स्वरों का प्रयोग शुरू हो गया था। लेकिन सामवेद के सातों स्वरों की उत्पत्ति उदात अनुदात्त और स्वरित से ही मानी गई। पाणिनी ने अपने व्याकरण सूत्र में उदात्त अनुदात्त और

---

[1] अमर सिंह, अमर कोषा रामाश्रमी व्याख्या सारंत (वाराणसीः सस्कृत सस्थान, सं० २०३१) पृ. १, ४, ६.

स्वरित को आदि स्वर का नाम दिया है। पाणिनी के अनुसार इन तीन स्वरों से ही सातों स्वरों की उत्पत्ति हुई है -

उच्चौ निषाद गान्धारो नीचौ ऋषभ धैवतो

शोषास्तु स्वरिता क्षेय षड़ज माध्यम पंचमा

स्वर के कई प्रकार प्रयोग मे आते हैं। व्यावहारिक सरलता के लिए २२ श्रुतियों में मे मुख्य सात श्रुतियो को चुन लिया गया जिन्हें शुद्ध स्वर कहा गया। ये श्रुतियाथोड़ी थोड़ी दूर तक फैली है जिसमें पूरा सप्तक आ गया। सप्तक में सातों स्वरों का समावेश होता है। यह सातों स्वर स रे ग म प ध नी इनको दो वर्गों में बांटा जाता है। शुद्ध और विकृत शुद्ध स्वर वे हैं जो अपने मूलभूत स्थान पर स्थित है। विकृत स्वर उसे कहते हैं जो अपने मूल स्थान से ऊपर नीचे रहते हैं। आधुनिक समय में स प स्वर हमेशा अचल है और ये शुद्ध माने जाते हैं। विकृत स्वरों की स्थिति और नाम के संबंध में उत्तरी और दक्षिणी संगीत में भिन्नता है। यह मध्ययुग से प्रचलित है। दक्षिण में प्राचीन परम्परा के अनुसार शुद्ध स्थिति पहले और विकृति स्थिति वाद मे मानी जाती है। भरत के अनुसार स्वर की अंतिम श्रुति पर उसकी शुद्ध अवस्था होती है। आधुनिक उत्तरी सगीत पद्धति ने स्वर की विकृति अवस्था कुछ स्वर से पहले मानी जाती है और पांच विकृत स्वर माने गये हैं। इनमें से ४ स्वर कोमल और एक स्वर तीव्र माना गया है। कोमल स्वर रे ग ध नी, और तीव्र स्वर म है जो अपने स्थान से ऊपर की ओर जाता है और कोमलस्वर अपने स्थान से नीचे की ओर जाता है। इस प्रकार सात शुद्ध और पांच विकृत स्वर कुल १२ स्वर माने गये हैं।

सप्त स्वरों का सोष्ठव :

संगीत मानव जीवन की दवा है और साहित्य तथा संगीत का संबंध अनादि काल से चंला आ रहा है। संगीत और साहित्य दोनों कलाएं मानवीय भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। कृष्ण भक्त कवियों को संगीत के शास्त्रीय पक्ष का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने अपने पदों की शास्त्रीय राग में रचना की। मीराँ संगीत ज्ञाता थी। उनके काव्य में अनेक राग रागिनियों का प्रयोग मिलता है। राग तोड़ी मे एक पद रचित है। राग तोड़ी में सातों स्वर प्रयोग होता है और यह

प्रातःकालीन राग है। इस पद में मीरा अपने आराध्य के मिलने के लिए आतुर है। उनका हृदय दुःखी है वह किसी तरह अपने प्रिय का दर्शन करना चाहती है। खाना-पीना उनको अच्छा नहीं लगता, उनका हृदय उचाट हो गया है। वह बिना प्रिय दर्शन के सुख नहीं पा सकती। उनकी विरह वेदना बढ़ती जा रही है। अपने प्रिय श्रीकृष्ण को कहती हैं कि बिना तुम्हारे दर्शन के मुझे सुख नहीं मिल सकता। इस विरह भावना को उन्होंने अपने इस पद में रचा है। राग तोड़ी मे रेगंध कोमल लगता है और म तीव्र, कोमल रिषभ और धैवत स्वरो वाले राग मे पदो की रचना विरहपूर्ण है। राग में कोमल रे स्वर का प्रयोग सीधे हृदय तक पहुंचता है और ऐसा अनुभव होता है कोई विरहणि विरह में जल रही है और अपने आप उसके हृदय से काव्य के रूप में रागों से बंधी रचना निसूत हो रही है -

राग तोड़ी - आवा मण मोहणा जी जोवा थारी वाट (टेक)

खाण पाण म्हारं नेक ण भावां, घर की खुला कपाट

थे आया विण सुखं ण म्हारो, हियड़ो घड़ो उचाट

मीराँ गिरधर की दीवानी प्रभु भक्त थी। उनकी भक्ति का माध्यम भजन कीर्तन था। वह गीत गोविन्द गीत काव्य से बहुत प्रभावितस थी। उनके पदों में विरह और संयोग दोनों का समन्वय है। मीरा ने वृन्दावन गुजरात और राजस्थान की लोक परम्पराओं से प्रभावित अपने पदों को रागों में रचा। मीरा की गायन शैली में शास्त्रीय संगीत की राग-रागिनियों तथा लोकधुनों का अदभुत मिश्रण हैं। मीरा के बहुत से राग राजस्थान एवं ब्रज में प्रचलित हैं। जैसे राग- माँड़। यह राग मालवा (राजस्थानी) प्रान्त से उत्पन्न हुआ। इसमें वक्रता पूर्ण सातों स्वरों का प्रयोग होता है। इसमें सातों स्वर शुद्ध लगते हैं राग माँड में मीरा का एक पद -

माई री म्हा लिया गोविन्दा मोल (टेक)

थे कहयो छाणो म्हों की चोड़ूडे लिया वजन्ता ढोल

थे कहयां मुहोघो म्हों कहयो सस्तो, लिया री तराजों तोल

तण वारां म्हा जीवण वारों, वारो अमोलक मोल

मीराँ कूं प्रभु दरसण दीज्या पूरव जनम को कोल

मीराँ ने अपने हृदय की अनुभूतियों को संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। वर्षा ऋतु का वातावरण है काले बादल गरज रहे हैं। ठंडी हवा चल रही वर्षा की हल्की हल्की फुहारे गिर रहीं है। प्रिय मिलन की तीव्र आकांक्षा हृदय में उत्पन्न हो रही है बिजली की चमक से मन में भय का संचार हो रहा है। चारों तरफ से काले बादल आसमान को ढक लेते हैं। ऐसे समय मे मीरा का मन प्रिय के आगमन की ध्वनि सुन कर उनका मन उल्लासित हो रहा है। वरखा का आनंद लेते हुए मीराँ का राग मल्हार में ये पद है -

वरसे री वदरिया सावन री, सावण री मण भावण री

सावन मा उमंग्यो म्हारो मणरी, भणक सुराया हरि आवन री।

ऐसी धारणा कई ग्रंथो में मिलती है। रागों में कुछ ऐसे प्राकृतिक और स्वाभाविक गुण होते हैं जो उन्हें विशेष ऋतुओं से संबंधित करते हैं। भारतीय पद्धति के अनुसार ऋतु तथा समयानुकूल गायन सिद्धांत केवल कल्पना नहीं है। यह इस क्रम स्थापन के अन्तर्गत महान रहस्य निहित है। संगीत में कुछ स्वर ऐसे होते हैं जिनकी प्रकृति, तीक्ष्ण, तेजस्वी उग्र तथा अग्निकारी होती है। जिन रागों में इन स्वरों की प्रधानता होती है वह ग्रीष्म ऋतु में गाये जाते हैं और कुछ स्वर ऐसे होते है जो शीतलता और उदात्ती पूर्ण होते हैं वे सर्दी के मौसम में गाये जाते हैं। कुछ मौसमी राग भी होते हैं। ऋतुओं की छटा का प्रभाव संगीत पर भी पड़ा है जिसके फलस्वरूप वसंत और मेघ जैसे रागों की उत्पत्ति हुई। बसंत ऋतु में बसंत राग और वर्षा ऋतु में मेघ मल्हार मियाँ मल्हार राग की उत्पत्ति हुई। वर्षा ऋतु और बसंत ऋतु ये दो ऋतुएं ऐसी है जिनके द्वारा श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। भारतीय संगीत भावना प्रधान है वर्षाकालीन रागो में, मेघ मल्हार, गौड मल्हार, मियां मल्हार, जैसे आदि रागों के गाने का प्रचलन है। इन रागों की उत्पत्ति ज्यादातर काफी और खमाज थाट से मानी जाती है। वर्षा कालीन राग रामदासी मल्हार, गौड़, नटमल्हार, जयंत मल्हार, धूलिया मल्हार, मीरा मल्हार, सूर मल्हार बसंत ऋतु में राग, भैरव वहार, बागेश्वरी वहार, बसंत बहार।

मीराँ काव्य मे प्रकृति का वर्णन अल्प रूप में हुआ है। मीरा के पदों में वर्षा ऋतु को रागों के माध्यम से अनुपम वर्णन हुआ है। गरजते हुए बादल काली काली घटा बिजली चमक रही है। ऐसे वातावरण में मीराँ के हृदय में डर का संचार हो रहा है। दादुर मोर की आवाज सुन कर उनके मन में प्रियतम से मिलने की इच्छा तीव्र हो उठती है। पर प्रिय मिलन हो नहीं पाता, वर्षा की झड़ी लगी है ऐसे समय में मीराँ का हृदय वरबस रो पड़ता है --

पिया कवटे घर आवे

दादुर मोर पपीहा बोले कोयल सबद सुणावै

घुमड़ घटा होई आई, दामिन दमक डरावे

नैन झर लावे

वर्षा के मतवाले मेघ बादल पर छा गये हैं। कोयल, दादुर, मोर, पपीहा वर्षा के उल्लास में मस्त होकर बरस रहे हैं। काली अंधेरी रात में पल भर के लिए बिजली कौंध उठती है। फिर अंधेरा छा जाता है पर मीरा के प्रिय का कोई संदेशा नहीं मिलता और मीरा का मन व्यथा से भर उठता है और बरबस उनके हृदय से राग सावन का यह पद निसृत हो जाता है :--

मतवारों वादर आए रे हरिको सन्देसो कबहूं न लायो रे

दादुर मोर पपइया बोले कोयल सबद सुणाए रे

कारी अंधियारी बिजली चमकै विरहिणी अति डर पाए रे

कारी नाग विरह अति जारी मीरा मन हरि अति भाव रे।

मीरा कृष्ण के प्रेम में लिप्त होने के कारण वाह्य उपकरणों पर अधिक ध्यान नहीं दिया है फिर भी उनके पदों में प्रकृति चित्रण का अधिक अभाव नहीं है कुछ पद सावन और होली के मीरा काव्य में मिल जाते हैं।

जीव-स्वरों की लोक-शोभा :

प्रकृति जब तरंग मे आती है तब वह गान करती है। मीराँ ने अपने पदों में पक्षियों को भावाभिव्यक्ति के मुख्य साधन के रूप प्रस्तुत किया है। कहीं ये पक्षी शकुन का संकेत देते हैं तो कहीं उपमा के रूप में, कहीं प्रकृति के वर्णन के रूप में, कहीं विरहनी के संदेशवाहक के रूप में। पक्षी के माध्यम से भाव अभिव्यक्ति -

रत आया वेसे मोर हरि बिना जिव होरा टेर

उमड़ घुमड़ आई वादलिया बरसत है चहुं ओर।

दादर मोर पपैया बोले कोकिल तन सोरा।

नदी किनारे सारस बोले कहा जानू पिय मोरा।

मीराँ कहे गिरधर नागर धर मिल्यो जिव सोरा

शकुन के रूप में --

लोक जीवन में शकुन का अपना एक अलग स्थान है। मीरा का समय भक्ति प्रधान था धर्म प्रधान समय था। उस समय शकुन का बहुत महत्व था। वराहमिहिर ने शकुन सूचक २१ पक्षियों के नाम बताए थे। २. मीरा के पदों में उस समय के प्रचलित शकुन और विश्वासों के विषय में कई पद मिलते हैं। जिससे पता चलता है कि मीरा शकुनो में बहुत विश्वास रखती थी। कागा के बोलने का शकुन --

१. **ये आज आवेंगे मेरे लाल कागा**

२. **आगे बैठन सुनावे कागरिया**

३. **उड़ि जा रे काग बनका मेरा स्याम गया वोही दिनका रे**

लोक जीवन मे घर के मुंडेर पर बैठे कागा का बोलना शुभ माना जाता है। इसके बोलने से किसी के आने का संदेशा मिलता है। आज भी कागा को मुंडरे पर बैठ कर बोलने का शुभ मानते हैं। और कहा जाता है आज कोई आने वाला है।

राजस्थान का एक लोकगीत -

१. उड़ उड़ रे म्हारा काला कागला

जद म्हारा पिव जी घर आवे

इसी से मिलते हुई मीरा की अभिव्यक्ति -

हरि जी रौ मरिग हेरता म्हे तो खड़ी उड़ाऊ काग

लोकोक्ति के रूप में -

१. तुम चरणन में लीन रहे मन जीउ मच्छी जल ध्याना

२. तुम सरवर हम हंसा तुमारा तुम भंवरा हम बाड़ी जी

गोवरधन धारी जी।

उपमा के रूप में -

कोयल ज्यूं कालीन भई पागल ज्यू वरलाय

मारणी, ज्यूं मले को खाय

प्रकृति के रूप में -

दादर मोर पपैया बोले कोयल मधुरी सी वाणी

विरह निवेदन में -

मीरा का सम्पूर्ण काव्य वेदना से परिपूर्ण है। केवल अतीत या वर्तमान में ही नहीं प्रत्येक मनुष्य के बीच में उतना स्पर्श विरह है मिलन का रस हल्का और विरह का रस गाढ़ा होता है।

मिलन का सुख स्थाई और स्थिर होता है। मिलन हमारे जीवन की सतह को छूता है। परन्तु विरह हमारे अंतस के सभी तारों को झंकृत कर देता है।

मिलन अंत है मधुर प्रेम का और विरह जीवन है

विरह प्रेम की जाग्रति गति है और सुषुप्ति मिलन है।[?]

वैसे हमारे जीवन में सुख के क्षण का असर कम रहता है और दुख का असर ज्यादा समय तक रहता है। मीराँ का विरह अधिक गहरा है उनका दुख एक आतुर का है। प्रेम में घायल और छलते हुए साधक का दुख है। एक प्रेमिका का एक पत्नी का दुख है जो अपने प्रिय अपने आराध्य के विरह में व्याकुल आकुल है। जिसको हर समय प्रेम के अहसास से तड़पन होती है। वर्षा होती है तो उसका मन तड़प उठता है काले बादल आये तो वह अपने प्रिय के विरह में तड़प उठती है। मीरा ने मोर पपीहा चातक कोयल को अपने विरह अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। जब आम की डाल पर बैठी कोयल बोलती है तो विरहणी मीरा की सारी वेदना सिमट कर पद के रूप में उनके हृदय से फूट कर बाहर निकलती है। और वे कराह उठती है। और कहती है -

आंबा की डार कोयल इक बोले

मेरो मरण अरू जग केरी होसी

मीरा पपीहे को उलाहना देती हुए कहती हैं -

रे पपइया प्यारे कब को वैर चितारयो

मैं सुती थी अपने भवन में पिय पिय करत पुकारो।

मीरा पपीहे की पी पी की ध्वनि सुन कर उससे निवेदन करती है कि पपीहा पी पी की आवाज के द्वारा मुझे मेरे प्रिय की याद न कराओ। मेरा आहत मन बहुत व्यथित है और तुम पीपी की आवाज से मेरे मन को और व्यथित कर रहे हो ये कौन से जनम की दुश्मनी है जो तुम मेरे साथ कर रहे हो। इसी तरह के एक पद में -

पपइया रे पिव की वाणी न बोल

सुणि पावे जो विरहिणि रे थारो राखे जी पंख मरोड़

चोंच कटाऊ पपइया रे थारी जो बोले पिय बोल।।

पपीहा की ध्वनि लगातार बढ़ती जा रही है और मीरा की वेदना भी साथ-साथ बढ़ती जा रही है। पपीहा चुप ही हो नहीं रहा है। मीरा उसको कोसती है और पपीहे को धमकाती है कि अब अगर वह पीपी की रट लगाना नहीं छोड़ेगा तो वह उसकी चोंच काट देगी और उस पर नमक छिड़क देगी जिससे वह पीपी की ध्वनि नहीं निकाल पाएगा ओर कोई विरहणी इससे व्यथित नहीं होगी और वही पपीहा की बोली तब अच्छी लगने लगती है जब मिलने का सुख प्राप्त हो जाता है और मीरा प्रसन्न होकर गा उठती है -

थारा सबद सुहावणा रे जो पिव मेला वे आज

चोंच मढ़ांऊ थारी सोवनी रे तू सिरताज

पंचम खण्ड

प्रथम अध्याय	- मीरा काव्य का राग वैभव
द्वितीय अध्याय	- शब्द संगीत की साधना व मीरा काव्य का अभिव्यक्त पक्ष

पंचम खण्ड

प्रथम अध्याय

मीरा काव्य का राग वैभव

पीठिका

पन्द्रहवीं शताब्दी से सम्पूर्ण उत्तर भारत में राग रागिनी प्रणाली को मान्यता मिल जाती है और उसका उल्लेख भी मिलने लगता है। समय के साथ-साथ रागों के साथ उसकी पत्नी पुत्र वधुओं का भी उल्लेख होने लगता है पर राग रागिनी को मानने वाले संगीतज्ञों का आपस में मतभेद दिखाई देने लगा और उसी के कारण राग रागिनी वर्गीकरण के कई मत प्रचलित हो गये, परन्तु राग रागिनी वर्गीकरण १७वीं शताब्दी तक प्रचलित रहा चूँकि संगीत एक परिवर्तन शील कला है इस कारण जनरूचि और परिस्थिति के कारण इस पद्धति में परिवर्तन होना स्वाभाविक है।

वर्गीकरण सृष्टि का स्वाभाविक नियम है। वर्गीकरण के मूल में समानताएं और विभिन्नताएं निहित रहती है। प्रत्येक संगीत ग्रंथ में उस समय के प्रचलित प्रणाली का ही उल्लेख होता है। हॉलांकि आज के युग में राग रागिनी प्रणाली का कोई अस्तित्व नहीं है लेकिन कृष्ण भक्त कालीन कवियों के समय में राग रागिनी प्रणाली ही प्रचलन में थी।

वैसे तो रागों में पदों को गाने की परम्परा सिद्ध कवियों से चली आ रही है पर इस परम्परा का सम्पूर्ण विकास कृष्ण भक्त कालीन कवियों के समय में हुआ।

सम्पूर्ण विश्व भगवान की रस सृष्टि का प्रतिबिम्ब है और गायक कवि का गीत इस रस भाव की व्यंजना का प्रतिघोष है। रस में विभोर होते ही वाणी मुखरित हो उठती है तथा स्वर के आंदोलन जाग जाते है और तब साक्षात् राग काव्य रस का आश्रय लेकर मूर्तिमान हो जाता है। कृष्ण भक्ति कालीन कवियों की रचना किसी ऐसी ही दिव्य घड़ी में गूँज उठी है जिससे

राग स्वयं रस के प्रतीक बन गए हैं। जैसे शुद्ध भावनामय इन कवियों के पद हैं वैसा ही तन्मयकारी इनका संगीत भी है।[1]

प्रकृति के सभी कार्य निर्धारित समय से होते हैं, रात-दिन, महीना, सर्दी-गर्मी, वर्षा सभी कुछ समय से बन्धे हैं। ऋतुओं में ही फल-फूल, पौधे खिल जाते हैं। समय के हिसाब से ही प्राकृतिक क्रियाएं प्राणीमात्र को भी प्रभावित करती हैं। इसी समय कोयल की दादुर की, झींगुर की आवाज सुनाई पड़ती हैं। संगीत के प्रत्येक स्वर का अपना स्वभाव होता है। जहां पर करुणा होता है वहां रिषभ कोमल और धैवत कोमल का प्रयोग होता है। मनी कोमल हो तो श्रृंगारिक भावना का अहसास होता है। संगीत के स्वर मानवीय भावों को व्यक्त करते हैं।

राग वर्गीकरण की दृष्टि से मीरा के पदों का मूल्यांकन :

भारतीय संगीत की यह विशेषता है कि प्रत्येक राग का भावनाओं से संबंध होता है। हर एक राग स्वरों के माध्यम से भावों के द्वारा विशेष रस की उत्पत्ति करता है। भारतीय संगीत की यह विशेषता है कि प्रत्येक राग का गाने बजाने का समय निर्धारित है। हमारे विद्वानों ने अपने अनुभव और मनोवैज्ञानिक आधार पर रागों का अलग-अलग समय निर्धारित किया है। हमारे प्राचीन संगीतकारों ने प्रकृति का सूक्ष्म अध्ययन किया है और यह पता लगाया कि ऋतु और काल मे एक खास प्रकार की ध्वनि और स्वर एकता और अनुरूपता सामंजस्य रखती है। संगीत में कुछ स्वर ऐसे होते हैं जिनका स्वभाव उग्र, गर्म और तीक्ष्ण होता है। यह बिल्कुल ठीक है कि रागों को उनके समय से ही गाने बजाने में आनंद प्राप्त होता है। हमारे विद्वानों ने भारतीय संगीत में चार सिद्धांतों के आधार पर रागों का वर्गीकरण किया है।

१. प्रातःकालीन राग

२. मध्यांन काल का राग

३. सायंकालीन राग

४. रात्रि कालीन राग

---

१. ऊषा गुप्त, हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत, (लखनऊ : लखनऊ विश्वविद्यालय, १९६०) पृ० २८४.

मीरा के पदों को हम इस तरह रागों के अन्तर्गत रख सकते हैं :

१. समय की दृष्टि से मूल्यांकन

२. ऋतु कालीन राग

३. सर्व कालिक राग

समय की दृष्टि से मूल्यांकन में हम उनकी पदावली को चार भागों में बांट सकते हैं:

१. प्रातः कालीन राग

२. मध्याह्न कालीन राग

३. सायंकालीन राग

४. रात्रिकालीन राग

प्रातःकालीन राग :

प्रत्येक राग का संबंध एक विशिष्ट भावनाओं से होता है। इसलिए प्रत्येक राग को उसके वातावरण के हिसाब से ही गाया बजाया जाता है। जैसे प्रातः काल में वातावरण शांत, ताजी हवा शीतल और आनंद दायक होता है। मन में कोई चिन्ता नहीं होती। मन में सात्विक और ईश्वर के प्रति नमन की भावना रहती है। इस समय ऐसे राग गाये जाते हैं, जिसमें भक्ति, ईश्वर की उपासना से संबंधित हो। जैसे ललित, रामकली, बिलावत, जोंगिया, भैरवी आदि।

राग ललित का एक पद -

म्हारो प्रणाम बांके बिहारी जी

मोर मुगट माथ्याँ तिलक बिराज्या कुंडल अलंकाकारी जी

अधर मधुर धर वंशी बजावाँ, रीझ रिझवां वृजनारी जी

या छवि देख्याँ मोहया मीरा, मोहन गिरवर धारी जी।

रात्रिकालीन राग :

शाम के बाद रजनी का आगमन होता है। उस समय वातावरण कुछ भयानक नीरवता से पूर्ण अंधकार का आगमन। इस समय ऐसे राग गाये बजाये जाते हैं जो भयानक और रौद्र आदि रसों से परिपूर्ण होते हैं। रात मंद गति से आगे बढ़ रही है। मीरा विरहणी अपने प्रियतम के विरह में उद्विग्न है सारा संसार सो रहा है पर विरहिन के आंखों में निद्रा देवी का आगमन नहीं है। इस समय करुण रस की निष्पत्ति होती है। इसलिए हमारे प्राचीन विद्वानों ने तापमान और वातावरण का अध्ययन करके ही रागों का समय निर्धारण किया है। रात्रि कालीन राग का मीरा का तिलक, हमीर, कामोद, मालकोस, खमाज, काफी, देस रात्रिकालीन राग हैं। हमीर में मीरा का एक पद देखिए -

बस्याँ म्हारे नैनन में नंदलाल

मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, अरुण तिलक सोहै भाल

मोहण मूरत सांवरी सूरत नैना बड़े विशाल

अधर धरो रस मुरलीराजत उर वैजंती माल

मीरा प्रभु संतन सुखदायी भक्त बछल गोपाल।

प्राचीन राग अपने आप में पूर्ण लालित्य का स्वामी है। विपरीत समय पर राग को गाने से उसमें कर्कशता का आभास होता है। रागों को उनके समय के हिसाब से गाने में ही उसका ज्यादा प्रभाव मन पर पड़ता है।

ऋतुकालीन राग :

भारतीय संगीत का प्रकृति से सीधा और गहरा संबंध है। भारतीय संगीत में कुछ राग ऋतुकालीन हैं। उन रागों को विशेष ऋतु में ही गाने में आनंद है। उन रागों को गाने बजाने की ऋतु नियमित है, और वे राग वही ऋतु में गाए जाते हैं वर्षा की बूँदे पड़ रही हैं और विरहिणी मीरा को सावन का महीना बहुत सुखद लग रहा है। मीरा कहती हैं कि इस सावन मास के

बादल उमड़-उमड़ रहे हैं, बिजली चमक रही है, कहीं बूँदे पड़ने लगी हैं, ठंडी हवा चल रही है जो बहुत सुखदाई प्रतीत होती है। ऐसे में मीरा का मन श्याम दर्शन को उन्मुक्त हो उठा। वर्षा कालीन राग हैं, मेघ मल्हार, मीरा की मल्हार, गौड़ मल्हार आदि। राग मल्हार में मीरा का एक पद -

सावण दे रहसया जोरा रे, घर आयो जी स्याम मोरा रे

उमड़-घुमड़ चहुँ दिसि से आया गरजत है घनघोरा रे

दादुर मोर पपीहा बोले कोयल कर रही सोरा रे

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर ज्यों वारूँ वह थोरा रे।

सर्वकालिक राग :

सर्वकालिक राग वह है जो हर समय गाये बजाये जाते हैं राग माँड, धानी, पहाड़ी, काफी होली से संबंधित गीत आदि।

मीरा के पदों में प्रयुक्त रागों का विस्तृत वर्णन और पदों की स्वरलिपि की योजना सहित

राग सोहनी - तीन ताल

राग सोहनी मारवा थाट जन्य माना जाता है। इसमें ऋषभ कोमल और मध्यम तीव्र लगता है, इसका गायन समय रात्रि का अंतिम प्रहर माना जाता है।

आरोह : स ग मं ध नी सं

अवरोह : सं रें सं नी ध मं ग मे ध ग मं ग रे स

राग सोहनी चंचल प्रकृति का राग है, यह प्रातः कालीन संधि प्रकाश राग है, राग सोहनी में मीरा के पद की स्वर लिपि :

जोगी मत जा मत जा मत जा

पाई परूं मैं तेरी चेरी हौं।

प्रेम भगति को पैड़ों ही न्यारो,

हम को गैल बता जा जोगी।।

इस पद में मीरा के विनयशीलन का परिचय मिलता है। मीरा अपने आराध्य प्रियतमा से अनुनय करती हैं कि हे प्रभु मैं आपकी दासी हूँ, मैं आपके पैर पकड़ती हूँ। आप मुझे छोड़कर मत जाओ। मीरा अपने गिरधर नागर से कहती हैं कि हे प्रभु अपनी ज्योति में मुझे मिला। यह पद मीरा का विनती से परिपूर्ण है। इस पद की बंदिश तीन-ताल १६ मात्रा में निबद्ध है।

राग-सोहनी

स्थायी

सा सा
म त

ग - मं मं	ध - नि नि	रें नि सां नि ध	मं ग, रे सा
जा ऽ म त	जा ऽ म त	जा ऽ ऽ जो ऽ	गी ऽ, ऽ ऽ
०	३	x	२
मं ग मं ध	नि सां नि ध	नि ध मं ग	मं ग, सा सा
पा ऽ य प	रूँ मैं ते ऽ	री ऽ चे ऽ	री हौं, म त
०	३	x	२

अन्तरा

मं ध मं ग	मं मं ध –	नि – सां सां	रें नि सां –
प्रे ऽ म भ	ग ति को ऽ	पै ऽ ड़ो हि	न्या ऽ रो ऽ
नि सां गं –	मं गं रें सां	धनि सांरें सांनि धनि	धमं गरे, सासा
ह म को ऽ	गै ऽ ल ब	ताऽ ऽऽ जाऽ जोऽ	ऽऽ गीऽ, मत
०	३	x	२

बाकी अन्तरे भी इसी स्वर-लिपि के अनुसार गाये जायेंगे।

राग तिलंग

यह राग खमाज थाट से उत्पन्न माना जाता है। इसमें ऋषभ और धैवत स्वर वर्जित होने के कारण इसकी जाति औड़व औड़व मानी जाती है। इसके गाने बजाने का समय रात का दूसरा प्रहर है। तिलंग राग में मीराबाई का यह स्तुति वेदना पद प्रस्तुत है-

मण रे परस हरि के चरण

सुभग सीतल कँवल कोमल विविध ज्वाला हरण।

जिन चरण प्रह्लाद परस्यां, इन्द्र पदवी धरण

जिन चरण ध्रुव अटल करस्यां सरण असरण सरण।।

इस पद में मीरा ने अपने आराध्य श्री कृष्ण के चरणों में लीन होने केलिए अपने हृदय को प्रेरित करती हैं।मीरा अपने मन को समझाती और कहती हैं। मन तू प्रभु के चरणों में लीन हो जा। वे कहती हैं कि प्रभु के चरण स्पर्श से शीतलता प्रदान करने वाली कोमल कमल की तरह हैं। मीरा कहतीहैं कि इन्हीं चरणों ने सम्पूर्ण संसार की सृष्टि की है। मीराबाई कहती हैं मैं अपने गिरधर कृष्ण की चरणों की दासी हूँ जो इस संसार रूपी नौका को पार उतारने वाले खेवनहार हैं। इस पद की स्वरलिपि को ताल रूपकसात मात्रा में बांधा गया है:-

राग-तिलंग - रूपक ताल

स्थायी

ग ग	म प	नि॒ प म	ग सा	ग म	प प प
म न	रे ऽ	प र स	ह रि	के ऽ	च र न
२	३	x	२	३	x
ग ग	म प	नि॒ प म	ग –	म प	म प नि
म न	रे ऽ	सु भ ग	सी ऽ	त ल	क म ल

सां –	सां सां	नि नि नि	सां नि सां	नि प	नि प म
को ऽ	म ल	त्रि वि ध	ज्या ऽ ऽ	ला ऽ	ह र न
२	३	x	२	३	x

अन्तरा

नि प म	ग ग	म प	प नि प	म ग	म प
जे हि च	र न	प्र ह	ला ऽ द	प र	से ऽ
x	२	३	x	२	३

म – प	नि [म]प	नि –	सां सां सां	सां (सां)	नि प
इ ऽ न्द्र	प द	वी ऽ	ध र न	ऽ ऽ	ऽ ऽ

म प नि	सां सां	सां सां	नि सां गं	गं –	सां –
जे हि च	र न	ध्रु व	अ ट ल	की ऽ	न्हे ऽ

नि – नि	सां (सां)	नि प	नि प म	ग [रे]ग	म प
रा ऽ ख्यो	अ प	ने ऽ	श र न	म न	रे ऽ
x	२	३	x	२	३

बाकी के अन्तरे इसी स्वर लिपि के अनुसार गाये जायेंगे।

राग-बिहाग

राग बिहाग बिलाबल थाट का राग है। इसमें दोनों मध्यम के अतिरिक्त सभी स्वर शुद्ध हैं। आरोह में ऋषभ-धैवत वर्जित एवं अवरोह में सभी स्वरों का प्रयोग होता है। इस कारण इसकी जाति औड़व-सम्पूर्ण है। गंधार वादी निषाद संवादी एवम् गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

आरोह - सा ग म प नि सां।

अवरोह - सां नि ध प म॑ प ग म ग रे सा।

इस पद में मीरा ने कर्म (भाग्य) की गति के महत्व को विभिन्न सत्यवादी राजाओं का उदाहरण देकर समझाया है और अपने ऊपर श्री गिरधर नागर प्रभु की कृपा के परिणाम को भी दर्शाया है जिन्होंने विष को भी अमृत के रूप में परिणित कर दिया। पद तीन ताल में निबद्ध है।

करम गति टारे नाहिं टरे।

सतवादी हरिचन्द से राजा, जाय नीच घर नीर भरे।।

पाँच पान्डु अरु कुन्ती द्रौपदी, अनगिन विपति परे।

यज्ञ कियों बलि लेन इन्द्रासन, सो पाताल धरे।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, विष से अमृत करे।।

राग-बिहाग : तीन ताल

प
क

म ग रे सा	ऩि सा ग म	प नि सां रें नि सां	नि –ध प, प
र म ग ति	टां ऽ रे ऽ	नाऽ हिऽ टऽ	रे ऽऽ ऽ, क
२	०	३	x

म ग रे सा

र म ग ति

अन्तरा

ग	म	प	नि	|	सां	-	सां	सां	|	सां	-	सां	सां	|	सां	रें	सां	-
स	त	वा	ऽ	|	दी	ऽ	ह	रि	|	चं	ऽ	द	से	|	रा	ऽ	जा	ऽ
०					३					x					२			

नि	-	नि	सां	|	नि	ध	प	प	|	पनि	सांरें	नि	सां	|	नि	ध	प	-
जा	ऽ	य	नी	|	ऽ	च	ध	र	|	नीऽ	ऽऽ	र	भ	|	रे	ऽ	ऽ	ऽ

सां	-	गं	गं	|	मं	गं	रें	सां	|	ग	म	प	नि	|	सां	नि	सां	-
पाँ	ऽ	च	पा	|	ऽ	न्डु	अ	रु	|	कु	ऽ	न्ती	द्रौ	|	ऽ	प	दी	ऽ

प	नि	सांरें	निसां	|	नि	ध	प	प	|	प	ग	म, प		|	म	ग	रे	सा
अ	नि	गिऽ	नऽ	|	वि	प	ति	प	|	रे	ऽ	ऽ, क		|	र	म	ग	ति
०					३					x					२			

बाकी के अन्तरे भी इसी स्वर लिपि के अनुसार गाये जायेंगे।

राग-माँड

माँड राग बिलाबल थाट जन्य माना जाता है। इसका चलन वक्र माना जाता है। इसके आरोह अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग किया जाता है। इसीलिए इसकी जाति वक्र वम्पूर्ण है। इसका वादी स्वर सा और सम्वादी पंचम है। यह चंचल प्रकृति का राग है। यह सर्वकालीन राग है। कहा जाता है कि यह राग मालवा के लोकगीतों पर आधारित है।

आरोह - सा ग रे म ग प म ध प नी ध सां

अवरोह - सां ध नी प ध म प ग म रे स रे ग सा।

पद

माई री मैं तो लियो गोविन्दहि मोल।।

कोई कहे छाणे कोई कहे छुपके लियो बजन्ता ढोल।।

कोई कहे मुहंगो कोई कहे सुहंगो लियो तराजू तोल।।

कोई कहे घर में कोई कहे वन में राधा के संग किलोल।।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर लीन्हों प्रेम के मोल।।

प्रस्तुत पद में मीरा के समर्पण भाव की पराकाष्ठा की चरम सीमा है तथा स्पष्ट रूप से मीरा ने अपने प्रेम भक्ति सहज स्वभाव को व्यक्त करते हुए अपने आराध्य श्री गिरिधर लाल को मोल लेने की बात कही है। यह पद त्रिताल में निबद्ध है।

राग-माँड : तीन ताल

स्थाई

प मा

म ग रे सा	– रे म प	ध नि प ध	प – प, प
ई री मैं तो	ऽ लि यो गो	वि ऽ न्द हि	मो ऽ ल, मा
२	०	३	x
म ग रे सा			
ई री मैं तो			
३			

अन्तरा

सां नि ध प	ध – ध –	नि सां रें सां	नि नि सां –
को ई क हे	छा ऽ ने ऽ	को ई क हे	छु प के ऽ
०	३	x	२

सां गं रें सां	सां रें सां नि ध प म प	ग प म ग रे ग, प	म ग रे, सा
ली ऽ न्हो ब	ज ऽ ऽ ऽ न्ता ऽ ऽ ऽ	ढो ऽ ऽ ऽ ल ऽ, मा	ई री मैं तो

बाकी के अन्तरे इसी स्वर लिपि के अनुसार गाये जायेंगे।

राग-हमीर

राग हमीर की उत्पत्ति कल्याण थाट से मानी गई है। इसमें दोनों मध्यम बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं, इसकी जाति सम्पूर्ण है, वादी स्वर धैवत और सम्वादी स्वर गंधार है। इसका गायन समय रात्रि का पहला प्रहर है।

आरोह - सा रे सा ग म प, मं प, ग म ध नी ध सां

अवरोह - सां नी ध प मं प ध प ग म ग रे सा।

इस पद में मीराबाई अपने प्रिय श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन करते हुए उनसे प्रार्थना करती हैं कि हे प्यारे, प्रियतम मेरी आँखों में ही आकर बस जाओ।

पद

बसो मोरे नैनन में नन्दलाल

मोर मुकुट मकराकृत कुन्डल अरुण तिलक सोहे भाल

मोहनी मूरत सांवरी सूरत नैना बने विशाल

अधर सुधारस मुरली राजति उर वैजन्ती माल

छुद्र घंटिका कटि तट शोभित नूपुर सब्द रसाल

मीरा प्रभु संतन सुखदाई भक्त वछल गोपाल

इस पद को तीन ताल १६ मात्रा में निबद्ध किया गया है।

राग-हमीर : तीन ताल

स्थाई

नि
ब

सां नि ध प	प मं प ध	प (–) ग म	ध – ध, नि
सो ऽ मो रे	नै ऽ न न	मे ऽ न न्द	ला ऽ ल, ब
२	०	३	x

सां नि ध प	प – प ध	ध ध प –	ग म प ग
सो ऽ मो रे	मो ऽ र मु	कु ट म क	रा ऽ कृ त

म रे सा सा	मं मं प ध	प (प) ग म	ध – ध, नि
कु ऽ न्ड ल	अ रु ण ति	ल क सो हे	भा ऽ ल, ब
२	०	३	x

अन्तरा

प – प प	सां – सां सां	सां – सां सां	सां रे सां सां
मो ऽ ह नी	मू ऽ र त	सां ऽ व री	सू ऽ र त
०	३	x	२

ध – नि –	सां सां – रें	सां – नि सां	ध – प –
नै ऽ ना ऽ	ब ने ऽ वि	शा ऽ ऽ ऽ	ल ऽ ऽ ऽ

सां सां गं गं	मं रें सां सां	ध नि सां रें	सां नि ध प
अ ध र सु	धा ऽ र स	मु र ली ऽ	रा ऽ ज ति
मं मं प ध	प (–) ग म	ध – ध, नि	सां नि ध प
उ र वै ऽ	ज ऽ न्ती ऽ	मा ऽ ल, ब	सो ऽ मो रे
०	३	x	२

बाकी के अन्तरे इसी स्वर लिपि के अनुसार गाये जायेंगे।

राग-पूरिया-धनाश्री

राग पूरिया धनाश्री पूर्वी थाट का राग है। इस के आरोह अवरोह में सभी स्वरों का प्रयोग होता है। इस कारण इसकी जाति सम्पूर्ण-सम्पूर्ण है। पंचमवादी व षड्ज सम्वादी है। कुछ लोग ऋषभ को भी सम्वादी मानते हैं। इसमें ऋषभ-धैवत कोमल मध्यम तीव्र अन्य स्वर शुद्ध हैं। तथा इसके गायन का समय सायंकाल है।

आरोह - सा रे ग मं प ध नि सां

अवरोह - सां नि ध प मं ग रे सा ।।

पद

राम नाम रस पीजे मनुवा राम नाम रस पीजे।

तजि कुसंग सतसंग बैठ नित हरि चर्चा सुन लीजै।।

काम क्रोध मद लोभ मोह को चित से बहाय दीजे।

'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रंग भीजै।।

प्रस्तुत पद में मीरा ने कुसंग एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि दुर्गुणों को छोड़कर सतसंग में बैठने एवं चर्चा रूपी अमृत रस को पीने की बात कह कर श्री गिरिधर प्रभु के रंग में अपने चित्त को रंगने की भावना को व्यक्त किया है। यह १६ मात्रा तीन-ताल में निबद्ध है।

राग-पूरिया-धनाश्री : तीन ताल

स्थाई

म॑ ग रे॒ सा	नि़ रे॒ ग म॑	प – म॑ ग	म॑ रे॒ ग –
रा ऽ म ना	ऽ म र स	पी ऽ जै ऽ	म नु वा ऽ
म॑ ग रे॒ सा	– सा नि ध़॒	नि़ – रे॒ ग	म॑ रे॒ ग ग
त ज कु सं	ऽ ग स त	सं ऽ ग बै	ऽ ठ नि त
ग म॑ ध नि	ध॒नि सां नि ध॒	प – म॑ ग	म॑ रे॒ ग –
ह रि च र	चाऽ ऽ सु न	ली ऽ जै ऽ	म नु वा ऽ

अन्तरा

म॑ – ग ग	म॑ म॑ ध॒ ध॒	सां – सां सां	नि रे॒ सां –
का ऽ म क्रो	ऽ ध म द	लो ऽ भ मो	ऽ ह को ऽ
नि नि रें॒ गं	म॑ गं रें॒ सां	ध॒ नि रें॒ नि	ध॒ नि ध॒ प
चि त से ऽ	ब हा ऽ य	दी ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ जै ऽ

प - मं ग	मं रे ग ग	रे ग मं ग	रे-ग - रे सा
मी ऽ रा ऽ	के ऽ प्र भु	गि र ध र	ना ऽ ग र

नि रे ग मं	ध नि रें नि	ध नि ध प	मं ग रे ग
तां ऽ ही ऽ	के ऽ रं ग	भी ऽ जै ऽ	म नु वा ऽ
०	३	x	२

राग-कामोद

राग कामोद कल्याण थाट का राग माना जाता है। इसमे दोनो मध्यम के अलावा बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। इसकी जाति वक्र सम्पूर्ण है। इसका वादी स्वर पंचम और सम्वादी स्वर ऋषभ है। गायन का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

आरोह --- सा ग म रे सा म रे प, मं प ध प नी ध सां

अवरोह --- सां नी ध प मं प ध प ग म प ग़ म रे सां।

मीरा के इस पद में उनकी अपनी आराध्य के प्रति सम्पूर्ण समर्पण की पराकाष्ठा का चित्रण है।

पद

आली री मेरे नैना बाण पड़ी।।

चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन पड़ी।

कब की ठाढ़ी पंथ निहारूँ अपने भवन खड़ी।।

कैसे प्राण पिया बिन राखूं, जीवन मूल जड़ी।

'मीरा' गिरिधर हाथ बिकानी लोग कहै बिगड़ी।।

राग कामोद - तीन ताल

स्थाई

			म आ
रे सा रे प	प - प -	ध - प प	प ग म रे, म
ली री मे रे	नै ऽ ना ऽ	बा ऽ न ऽ	री ऽ ऽ ऽ, आ

अन्तरा

प - प प	सां - सां सां	सां - सां सां	सां रें सां सां
चि ऽ त्त च	ढ़ी ऽ मे रे	सां ऽ व री	मू ऽ र त
ध ध ध ध	ध नि सां रें	सां - - -	ध - प -
उ र बि च	आ - न प	ड़ी ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
सां सां ग -	मं रें सां -	ग - म ध	ध - प -
क ब की ऽ	ठा ऽ ढ़ी ऽ	प ऽ न्थ नि	हा ऽ रू ऽ
सां सां ध प	मॅ प ध प	प ग म रे, म	रे सा रे प
अ प ने ऽ	भ व न ख	ड़ी ऽ ऽ ऽ, आ	ली री मे रे
x	२	०	३

बाकी के अन्तरे इसी स्वर लिपि के अनुसार गाये जायेंगे।

राग-गूर्जरी-तोड़ी

राग गूर्जरी तोड़ी तोड़ी थाट का ही राग है। इसमें ऋषम, गंधार, धैवत कोमल, मध्यम तीव्र अन्य स्वर शुद्ध हैं। पंचम वर्जित होने के कारण इसकी जाति षाडव-षाडव है। वादी धैवत संवादी गंधार एवं गायन समय दिन का द्वितीय-प्रहर का अन्तिम चरण है। मुख्य रूप से राग तोड़ी में पंचम वर्जित करने से इस राग का आर्विभाव होता है। इस पद में मीरा अपने इष्ट देव के अंग-प्रत्यंग की शोभा का वर्णन करते हुए उन पर अपने तन-मन-धन न्योछावर करने एवं उनके चरण कमल के आश्रित होने की भावना को व्यक्त किया है। इस पद को झपताल में निबद्ध किया गया है।

आरोह - सा रे ग, मं ध, नि सां

अवरोह - सां नि ध, मं ग रे सा।

पद

या मोहन के मैं रूप लुभानी।

सुन्दर बदन कमल दल लोचन, बाँकी चितवन

मन्द मुसकानी।।

जमुना के तीरे धेनु चरावें, बंसी में गावे मीठी वानी,

तन मन धन गिरिधर पर वारूँ, चरण कमल

'मीरा' लपटानी।।

राग-गूर्जरी-तोड़ी (झपताल)

स्थाई

रे ग	रे सा –	रे ग	म ध ध
या ऽ	मो ऽ ऽ	ह न	के ऽ मैं

मे ध	नि ध म	रे ग	रे सा –
रू ऽ	प ऽ लु	भा ऽ	नी ऽ ऽ

अन्तरा

म ग	म – ध	नि नि	सां – सां
सु ऽ	न्द ऽ र	ब द	न ऽ क

ध ध	नि – सां	रें गं	रें सां सां
म ल	द ऽ ल	लो ऽ	च ऽ न

सां रें	गं म गं	रें गं	रें सां सां
बाँ की	चि ऽ त	व न	मं ऽ द

म ध	नि सां –	धनि सांनि	धम गरे सा
मु स	का ऽ ऽ	ऽऽ ऽऽ	ऽऽ ऽऽ नी

बाकी के अन्तरे इसी स्वर लिपि के अनुसार गाये जायेंगे।

राग-गुनकली

राग गुनकली भैरव थाट का राग है। इसमें गंधार और निषाद वर्जित है इस कारण इसकी जाति औड़व है। वादी धैवत तथा संवादी ऋषभ है। गायन समय प्रातः काल है। यह गम्भीर प्रकृत एवं वैराग्य रस का राग है।

आरोह - सा रे, म प ध सां।

अवरोह - सां ध, प म रे, सा।

पद

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।

गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम देखतरूप लुभाऊँ।।

रैन पड़े तबही उठि जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ।

रैन दिना बाके संग खेलूं, ज्यों त्यों ताहि रिझाऊँ।।

जो पहिरावे सोई पहिरूं, जो दे सोई खाऊँ।

मेरी उनकी प्रीत पुरानी, उन बिन पल न रहाऊँ।।

जहाँ बैठावे तित ही बैठूं बेचे तो बिक जाऊँ।

'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर बार-बार बलि जाऊँ।।

इस पद में मीरा ने अपने परम प्रीतम गिरधर लाल के सानिध्य में जाने की बात एवं अपनी पुरानी प्रीति को व्यक्त करते हुए उनके सेवा में अष्टो-प्रहर रहने की उत्कण्ठा को व्यक्त किया है। यह पद त्रिताल में निबद्ध है।

राग-गुनकली : तीन ताल

स्थाई

रे – म प	ध प म म	रे – सा ध	सा – सा –
मैं ऽ तो ऽ	गि र ध र	के ऽ ध र	जा ऽ ऊँ ऽ
२	०	३	x

रे – म प	ध म प ध,	ध – ध –	मप ध प म
मैं ऽ तो ऽ,	गि र ध र	म्हा ऽ रो ऽ	सांऽ ऽ चो ऽ

रे – सा सा	म प ध सां	रे – सां सां	ध – प म
प्री ऽ त म	दे ऽ ख त	रू ऽ प लु	भा ऽ ऊँ ऽ
२	०	३	x

अन्तरा

ध म प ध	सां – सां सां	रें – सां –	रें – सां –
रै ऽ न भ	रे ऽ म ब	हो ऽ उ ठि	धा ऽ ऊँ ऽ
०	३	x	२

रें – रे मं	रें – सां सां	रें – सां –	धं – प –
भो ऽ र भ	ये ऽ उ ठि	आ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऊँ ऽ

म प ध॒ म	रे॒ – रे॒ –	प – म म	रे॒ – सा –
रै ऽ न दि	ना ऽ वा ऽ	के ऽ सं ग	खे ऽ लूँ ऽ

सा रे॒ म प	ध॒ रें॒ सां सां	ध॒ – प म,	रे॒ – म प
ज्यों ऽ त्यों ऽ	ता ऽ हि रि	झा ऽ ऊँ ऽ,	मैं ऽ तो ऽ

बाकी के अन्तरे इसी स्वर लिपि के अनुसार गाये जायेंगे।

राग-सारंग

राग सारंग काफी थाट का राग है। इसमें गंधार और धैवत वर्जित है। इस कारण इसकी जाति औड़व-औड़व है। निषाद दोनों, अन्य स्वर शुद्ध है। वादी ऋषभ तथा संवादी पंचम है। और गायन समय दिन के द्वितीय प्रहर का अन्तिम चरण है।

आरोह - सा रे म प नि सां

अवरोह - सां नि॒ प म रे सा।

पद

हरि मेरे जीवन प्राण अधार।

और आसरों नाहीं तुम बिन तीनो लोक मंझार।।

आप बिना मोहे कछु न सुहावे निरख्यो सब संसार।

'मीरा' कहे मैं दासी रावरीं दीज्यों मती बिसार।।

इस पद में मीरा ने अपने श्री गिरधर गोपाल प्रभु को अपना जीवन प्राण आधार कह कर यह निवेदन किया है कि हे प्रभु इस संसार में आपके बिना मेरा कोई आसरा नहीं है। मैं आप की दासी हूँ मुझे भूल मत जाइयेगा। यह पद १६ मात्रा त्रिताल में निबद्ध है।

राग-सारंग : तीन ताल

स्थाई

			म ह
रे सा नि़ सा	रे – म म	प – नि॒ प	म रे रे, म
रि में ऽ रे	जी ऽ व न	प्रा ऽ न अ	धा ऽ र, ह
३	x	२	०
रे सा नि़ सा	रे म रे सा	नि़ नि़ सा –	रे म रे म
रि मे ऽ रे	औ ऽ र आ	ऽ स रा ऽ	ना ऽ ही ऽ
प प नि॒ प	म प नि॒ –	सां – नि॒ सां	प नि॒ प, म
तु म बि न	ती ऽ नो ऽ	लो ऽ क म	झा ऽ र, ह

अन्तरा

म – प प	नि॒ प नि नि	सां सां सां सां	सा रें सां –
आ ऽ प बि	ना ऽ मो हे	क छु न सु	हा ऽ वे ऽ
नि सां रें मं	रें रें सां –	पनि सांरें नि (सां)	नि॒ – प –
नि र ख्यो ऽ	स ब सं ऽ	साऽ साऽ ऽ ऽ	र ऽ ऽ ऽ

रे म रे सा	नि़ - सा -	रे म रे म	प नि॒ प -
मी ऽ रा क	हैं ऽ मैं ऽ	दा ऽ सी रा	ऽ व री ऽ
म प नि सां	रें नि सां सां	प नि॒ प, म	रे सा नि़ सा
दी ऽ जो ऽ	म ति ऽ बि	सा ऽ र, ह	रि मे ऽ रे
x	२	०	३

राग सूर-मल्हार

राग सूर मल्हार काफी थाट का राग है। इस राग की रचना मल्हार में राग सारंग के मिश्रण से हुई है। इसके आरोह में गंधार-धैवत एवं अवरोह में केवल गंधार वर्जित है। इस कारण इसकी जाति औड़व-षाडव है।वादी मध्यम संवादी षड्ज है। वर्षा ऋतु में सर्व-कालिक है परन्तु अन्य समय में रात्रि के द्वितीय प्रहर में गाया जाता है।

आरोह - सा रे म प नि सां

अवरोह- सां नि़ ध प म, रे नि़ सा।

पद

बरसे रे बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।।

सावन में उमग्यों मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।।

उमड़-घुमड़ चहुं दिसि से आयो, दामिनी दमक झर लावन की।।

नन्हीं-नन्हीं बूंदन मेहा बरसे, सीतल पवन सुहावन की।।

'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, आनन्द मंगल गावन की।।

इस पद में मीरा ने वर्षा ऋतु के वातावरण का वर्णन कर अपने गिरधर लाल प्रभु से मिलने की भावना को व्यक्त करते हुए आनन्द मंगल गीत गाने की उत्कण्ठा को व्यक्त किया है। यह त्रिताल में निबद्ध है।

राग सूर मल्हार : तीन ताल

नि धप
ब रऽ

म प नि ध	प म रे सा	म रे प मरे	म – – –
से रे ऽ ब	द रि या ऽ	सा ऽ व न	की ऽ ऽ ऽ ॥
०	३	x	२
म प नि नि	सां – सां (सां)	नि धम प नि	ध प, नि धप
सा ऽ व न	की ऽ म न	भा ऽऽ व न	की ऽ, ब रऽ

अन्तरा

म प नि नि	सां – सां सां	सां – सां सां	सां रें सां –
सां ऽ व न	में ऽ उ म	ग्यो ऽ मे रो	म न वा ऽ,
नि सां रें मं	रें – सां सां	पनि सांरें नि सां	नि ध प –
भ न क सु	नी – ह रि	आऽ ऽऽ व न	की ऽ ऽ ऽ
रे रे रे प	प प म प	नि ध प म	रे – म –
उ म ड़ घु	म ड़ च हुँ	दि सि से ऽ	आ ऽ यो ऽ
म प नि नि	सां रें सां सां	नि धम प नि	ध प, नि धम
दा मि नि द	म क झ र	ला ऽऽ व न	की ऽ, ब रऽ ॥
०	३	x	२

राग - मालकौंस

सुपसिद्ध राग मालकौंस थाट पद्धति के अनुसार भैरवी थाट का राग है। इस में ऋषभ पंचम वर्जित एवं औड़व-औड़व जाति का राग है। इस में सभी स्वर कोमल है। मध्यमवादी एवं षड्ज सम्वादी है। गायन समय रात्रि का तृतीय प्रहर है। तथा यह गम्भीर प्रकृति का राग है।

आरोह - सा ग म, ध नि सां।

अवरोह - सां नि ध म, ग सा।

प्रस्तुत राग में मीरा के एक पद की स्वर लिपि।

पद की कविता

पग घुघरू बांध मीरा नाची रे
मैं तो अपने नारायण की आपहि हो गई दासी रे।
लोग कहे मीरा भई बावरी नात कहै कुल नासी रे।।
विष का प्याला राणा जी भेज्या पीवत मीरा हांसी रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अविनासी रे।।

इस पद में अपने आराध्य गिरधर गोपाल की भक्ति के आवेग में मीरा के नृत्य करने एवं अपने इष्ट के प्रीति पूर्ण समर्पण को दर्शाया गया है। यह रचना तीन ताल में निवद्ध हैं।

राग-मालकौंस-तीन ताल

स्थाई

			सां सां प ग
ध नि ध म	- (म) ग सा	म - ध मग	मध निसां --
घूँ घ रू बा	ऽ न्ध मी रा	ना ऽ ची ऽऽ	रेऽ ऽऽ ऽऽ

अन्तरा

ग - म -	ध ध नि -	सां - सां -	गं नि सां -
मैं ऽ तो ऽ	अ प ने ऽ	ना ऽ रा ऽ	य न की ऽ
०	३	x	२

सां - सां सां	सां (-) नि ध	म ध नि ध	म - - -
आ ऽ प हि	हो ऽ ग ई	दा ऽ सी ऽ	रे ऽ ऽ ऽ
ध नि सां गं	मं गं सां सां	म ध नि ध	म ग सा -
लो ऽ ग क	हे ऽ मी रा	भ ई ऽ बा	ऽ व री ऽ
नि सा ग म	ध म ग म	ग म ध नि	म ध नि सां, सां सां
नां ऽ त क	हे ऽ कु ल	ना ऽ सी ऽ	रे ऽ ऽ ऽ, प ग

बाकी अन्तरा इसी स्वर-लिपि के अनुसार गाये जायेंगे।

पंचम खण्ड

द्वितीय अध्याय

शब्द-संगीत की साधना : मीरा-काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष

शब्द संगीत :

भारतीय संस्कृति में 'शब्द' की अपार महिमा है। हमारे यहां "शब्द" नामक शब्द का प्रसार उच्चतम आध्यात्मिक अर्थ से लेकर सामान्य जनजीवन की बातचीत तक है। एक ओर यदि सम्पूर्ण सृष्टि ही शब्दकार ब्रह्म का शब्द मानी गई है और शब्द के महत्व के कारण ही स्वयं ब्रह्म तक को शब्द माना गया है, तो दूसरी ओर संगीत, काव्य, नाट्य आदि उच्च कलात्मक प्रयासो को मनुष्य द्वारा शब्द-ब्रह्म की साधना से जोड़ा गया है और इस साधना को कठिनतम भी कहा गया है। यों 'शब्द' का शाब्दिक अर्थ है- आकाश में किसी भी प्रकार से उत्पन्न क्षोभ को वायुतरंग द्वारा कानों तक जाकर सुनाई पड़े अथवा पड़ सके। इसका प्रयोग आम ध्वनि अथवा आवाज के लिए भी होता है और शिक्षा अथवा उपदेश की बातों, आप्त वचनों , महापुरुषों द्वारा व्यक्त ज्ञान के लिए भी। इसीलिए हम ईश्वर को पूरे ब्रह्माण्ड में शब्दायमान् अनुभव करते हैं और शब्दातीत भी मानते हैं। पूरी प्रकृति में ईश्वरीय संगीत सुनकर ही उससे तादात्म्य स्थापित करते हैं। इस प्रकार शब्द-संगीत भारतीय संस्कृति का प्राण-तत्व है।

हिन्दी साहित्येतिहास और भारतीय संगीत के मध्ययुग में शब्द-संगीत को पहचानने, सुनने और रचने के जो महानतम और स्वर्णिम प्रयास हुए, उनमें मीराबाई की साधना अन्यतम है। यहां तक क लोक मानस में भी मीराबाई का वही चित्रात्मक बिम्ब अंकित है जिसमें वह इकतारे को हाथ में लेकर अपनी पदरचना को दीवानों की भांति गा-गा कर कृष्णर्पण करती हैं। शब्द संगीत के लिखित और अलिखित, उच्चरित और अनुच्चरित, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपों का जितना सुंदर समन्वय मीराबाई की पद रचना में उपलब्ध होता है, उतना और कहीं नहीं।

मीराबाई की भाषा अपने समय के लोकचित्त की विलक्षण सहज भाषा है, उनकी कथन-पद्धति में अद्भुत प्रभावशीलता है, उनकी कविता के छन्द और अलंकार स्वतः स्फूर्त अभिव्यक्ति के अनुपम उदाहरण हैं, मगर उनकी सबसे बड़ी विशेषता उनकी पदावली के उस लय ताल के विधान में है जो उनकी श्रीकृष्ण-निष्ठा को तीव्रतम् अनुभूतियों से अपने आप उपजती हैं और सबमें व्याप्त हो जाती हैं। भाषा, लय, ताल छन्दालंकार एवं गीति-परक काव्य-रूप के इन्हीं पक्षों पर विस्तार और उदाहरणों के साथ विचार करने की आवश्यकता है।

तीव्रानुभूति का सहज भाषिक स्वरूप :

यह आश्चर्य की बात है कि तीव्रतम अनुभूति के बावजूद मीराबाई की काव्यभाषा सहज संगीतात्मक बनी रहती है। उसके लिए मीरा को किसी भी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता। इस कारण से उनकी गणना हिन्दी के मध्य युग के शीर्षस्थ कवियों में की जाती है। यह सत्य है कि मीरा कबीर के समान भाषा की तानाशाह नहीं हैं, न उनके पास सूर जैसी कल्पना और सूक्ष्म भाषिक दृष्टिहै, तुलसी जैसा महान पांडित्य भी नहीं हैं, फिर भी तीव्रानुभूति की सहज-भाषिक प्रस्तुति के आधार पर ही मीरा का स्थान इन भक्त कवियों के समकक्ष है। इसका मुख्य कारण मीरा की भाव-सम्पदा है। जैसा भाव-बोध मीरा के काव्य में मिलता है, उसकी शायद ही वैसी सजीव अभिव्यक्ति किसी और काल के कवि में मिलती हो। मीरा के पदों में भाव-पक्ष का सर्वत्र बाहुल्य है। मीरा के काव्य में उनके सुकोमल हृदय की भावनाएं, उनकी प्रेममयक भावना ही सीधे सहज और प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त हुई है। उनका काव्य हृदय को छूता है, मार्मिकता को रचता है, उनकी विरह की वेदना को प्रमाणित करता है।

सहज भाषा की अनुपमता :

जैसा कि पहले कहा गया है कि मीरा की काव्य रचना शब्द-संगीत की साधना है, जो स्वभाव ही से सरल, सहज एवं सम्प्रेषणीय है। इसमें लोक की भाषा का अद्भुत कलात्मक स्वरूप भी उपलब्ध होता है। यह मीरा की लोकपरक अनुभूति के नितान्त अनुकूल भी है। इसलिए उनकी काव्य भाषा में कृत्रिमता कहीं भी नहीं है, बल्कि एक प्रकार की निस्संकोचता और खुलापन है जो उनके हृदय के भोलेपन के अनुरूप है। इसीलिए इनकी भाशा में व्यंजना की कमी

अखरती नहीं है। उन्होंने जिस सहजता और मार्मिकता से अपने भावों की शाब्दिक अभिव्यक्ति की है इसका पता इस पद से ही चल सकता है जोकि गहरे उद्गार की सहज परिणति है-

हेरी म्हां तो दरद दिवाणीं म्हारा दरद न जाण्यां कोय

घायलकी गत घाइल जाणयां हिबड़ों अगण संजोय

जौहर की गति जौहरी जाणे, क्या जाणया विण खोय

दरद की मारया दर दर डोल्यां बैद मिल्या नहि कोय

मीरा की प्रभु पीर मिटांगा जब वैद सावरों होय।[१]

मीरा की पदावली में सहज भाषा का प्रयोग हुआ है। मीरा ने कविता की रचना के लिए अपने भावों की अभिव्यक्ति नहीं किया बल्कि उनके भावों की सहज अभिव्यक्ति ही उनकी कविता बन गई। इसलिए अभिव्यक्ति का भाषा तत्व उनके काव्य शिल्प का अंग नहीं बनी। भावों की नदी में जब उद्यान आता है तब अपने आप भावों की अभिव्यक्ति कविता के रूप में हृदय से बाहर निकलने लगती है और मीरा के भाषा की यही सहजता उनके काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाती है। कृष्ण के प्रेम में दीवानी मीरा अपने भावों को सहज रूप में व्यक्त करती हुई कह उठती हैं-

आली री म्हारे नैणा बान पड़ी

चित्त चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत हिवड़े अण अड़ी

कब की ठाड़ी पंथ निहारी अपने भवण खड़ी

अटक्यौं प्राण सांवरो प्यारो, जीवण मूर जड़ी

मीरा गिरधर हाथ बिकाणी, लोक कहयो बिगड़ी।।[२]

---

१. परशुराम चतुर्वेदी, मीरा की पदावली (प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, शक १८५४) पृ० १२२
२. वही।

मीरा के काव्य में विचित्रता और वक्रता न होते हुए भी वे सहज और स्वाभाविक ढंग से मीरा के हृदय की सरलता और कोमलता को अभिव्यक्त करती हैं-

"तनक हरि चितवां म्हारी ओर (टेक)

हम चितवां थे चितवोणाहिं हिवणो बड़ो कठोर

इन पंक्तियों में कोई अलंकार या चमत्कारिक शब्द नहीं है फिर भी मीरा ने जिस गहराई से हृदय की झलक को अपने सहज भाव से व्यक्त किया है वह अद्वितीय है। मीरा को अपने हृदय की बात को व्यक्त करने के लिए जो शब्द अनुकूल और रुचिकर लगे वही उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम बन गया।

शब्द-गुण सम्पन्नता :

मीरा की काव्य भाषा शब्द के सभी प्रमुख गुणों से सम्पन्न है। अन्य कृष्ण भक्त की भांति उन्होंने भी भावानुकूल शब्दों को चुना है। उनकी अनुभूति जितना बलवती होती है, अभिव्यक्ति उतनी ही गुण-सम्पन्न, भाव-पूर्ण और सशक्त होती है। उनके प्रत्येक शब्द प्रयोग पर इसके आन्तरिक अनुभूति का स्पर्श, अनुभव होता है। बाह्य रचना मीरा का उद्देश्य नहीं था वह तो केवल एक माध्यम था। मीरा का उद्देश्य तो केवल अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के सम्मुख प्रेम को व्यक्त करना था। सूर, तुलसी, नंद दास जैसे कवियों की तरह मीरा के पास न तो शब्दों का भंडार है और न ही विविधता। उनके पास तो केवल सरसता और माधुर्यता है। मीरा श्रीकृष्ण के वियोग में तड़पती हुई शब्दों के द्वारा कह उठती हैं-

सूली ऊपर सेज पिया की

सोवन केहि विध होय

गगन मंडल पर सेज पिया का

किस विध मिलना होय।

इस पद का प्रत्येक शब्द करुणा से भरा होता और अपने आप उनके कंठ से पद के रूप में फूट निकलता है। मीरा ने विरहाग्नि हृदय को छू लेने वाला काव्य की रचना की। कृष्ण भक्ति कालीन गायक कवियों के काव्य में लोचयुक्त शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। भावों को व्यक्ति करने के लिए भक्तिकालीन कवियों के शब्दों में मधुर और कोमल बनाने का प्रयास किया है। जैसे सूरदास जी ने आशा-आसा, निशिकर-निसिकर। इसी तरह मीरा के पदों में भी लोचयुक्त शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। मुरड़िया-मुरली, मुरड़िया वाजा जमणा तीर गोविन्दा - गोविन्द माईरी म्हौ ड़िओ गोविन्दो मोड़। घुंघरया - घुघरू पग बांध घुंघरयो नांच्या री

नेहरा - नेहण - प्रभु जी ये कठया गया नेहड़ा लगाय।

तरसावो - तरशावां - म्हारो जणम जणम रो शाथी थाणे ना विशरयां मोय।

मीरा की शुद्धता, सरलता, निश्छल प्रेम, दीवानी, विरह वेदना उनके शब्दों मे भी दिखाई पड़ती है। तथापि भावावेष, हृदयावेग, तीव्र भावुकता तथा तन्मयता से विगलित शब्द विन्यास को कविता का विशेष लक्षण माना जाए तो मीरा के कवियत्री होने में संदेह नहीं। मीरा के पदों में राजस्थानी देशज शब्दों की बाहुल्यता है। "कांकड़, झिरमिट, कालर, बीड़, कूड़ों, कंटक, ढाय, खगणा, नोसर हार, पिंडवाय, हिवड़ो, लाला वेली आंटरी रोसड़ा।"

मीरा के भावाभिव्यंजना कोमल शब्दों का प्रयोग सजीवता और संवेदनशीलता मीरा की अपनी विशेषता है। मीरा ने पदों में कहीं-कहीं पर अरबी शब्द- अरज, अरजी, और फारसी शब्द- चाकर, चाकरी, खरची, दरद आदि का प्रयोग किया है।

विभिन्न भाषिक समन्वयात्मकता :

राजस्थान में लोक प्रचलित कुछ शब्द जिनका मीरा के पदों में प्रयोग हुआ है, झिरमिट, वीड़, काता, हालीमोतया संस्कृत के कुछ शब्द पदों मे मिलते हैं, घट पुरातन, मीन लोचन आदि।

स्पष्ट हैकि मीरा ने काव्य के लिए काव्य रचना नहीं की, वे तो अपनेप्रिय के प्रेम में विह्वल होकर अपने हृदय के भावों को पद के रूप में व्यक्त किया जो अपने आप ही कविता का रूप ले लिया। यह तो सत्य है कि मनुष्य जिस स्थान पर जन्म लेता है बचपन व्यतीत करता

है वहीं की बोली अपनाता है। वही मातृभाषा होती है और कोई भी रचनात्मक कार्यउसकेअपने मातृभाषा में होती है। इसी प्रकार मीरा राजस्थान वासी थीं और उनके पद भी राजस्थानी भाषा में ही थे। यह हो सकता है कि मीरा गुजरात और द्वारिका में रहीं इसलिए उनके पद गुजराती और अन्य भाषा में भी मिलते हैं। कुछ विद्वान इस तथ्य का खंडन करते हुए कहते हैं- ''मीराबाई की पदावली उनके फुटकर पदों का एक संग्रहमात्र है और प्रत्येक पद की भाशा एक ही प्रकार की नहीं है। उसमें बहुत से पद ऐसे हैं जो राजस्थानी हैं और कुछ की भाषा ब्रज भाषा या गुजराती कही जा सकती है।'[1]

धीरेन्द्र वर्मा के विचार में - ''मीरा की भाशा राजस्थानी थी। अतः मीरा के नाम से प्रचलित यहां की भाषा में राजस्थानीपन पर्याप्त है किन्तु ब्रज तथा गुजरात में रहने के कारण इन प्रदेशों में प्रचलित बोलियों की छाप भी पर्याप्त है। जो हो मीरा की रचना विशुद्ध ब्रजभाषा कभी भी सिद्ध नहीं होगी।'[2]

मीरा की भाषा मिश्रित भाषा है। कहीं-कहीं पर इनके पदों में पंजाबी, खड़ी बोली का भी प्रयोग हुआ है। मीरा के पदों की भाषा शैली सीधी सरल और सहज है। अपने सुंदर भावों के कारण जनसाधारण में अपनाये गये। लोकप्रिय होने के साथ-साथ गाने के योग्य होकर वहबहुत दिनों तक प्रचलित रहते आए। ब्रज भाषा और ब्रज मिश्रित राजस्थानी भाषा में मीरा के पदों मे भाषा का आडम्बर बिल्कुल नहीं है। मीरा का एक पद जिसमें शुद्ध साहित्यिक ब्रज भाषा का प्रयोग मिलता है-

मन रे परसि हरि के चरण।

सुभग सीतल कँवल कोमल त्रिविध ज्वाला हरण

जिण चरण प्रह्लाद परसे इन्द्र पदवी धरण

सखी मेरी नींद नसानी हो

पिय को पंथ निहारत, सिगरी रैन विहानी हो।

---

१ परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली (प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, शक १९८४).
२ वासुन्दरम, मीरा और अडाला का तुलनात्मक अध्ययन (प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, १९७१) पृ० २२७

और भी कई ऐसे पद हैं जो सरल, स्पष्ट और मधुरता से पूर्ण हैं।

मीरा की भाषा का स्वच्छंद प्रवाह -

जोगिया की प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल या

मेरे परम सनेही राम की नित ओघड़ी।

अनगढ़ और बीहड़ चट्टानों पर उछलती हुई जल की धारा जिस प्रकार मधुर संगीत उत्पन्न करती है, मीरा की स्वाभाविक भावधारा भी इस अनगढ़ और स्वाभाविक शब्दों में उसी प्रकार का संगीत उत्पन्न करती है। यह स्वच्छंद संगीत धारा केवल मीरा के ही पदों में मिल सकती है जो यमक और अनुप्रास के आडम्बर से उत्पन्न हुई संगीत से कम मधुर नहीं है।[1]

मीरा की भाषा में सजावट नहीं है। उसमें कोई विशेष चमत्कार नहीं है, फिर भी पदों में आकर्षण है मन को तृप्त करने की शक्ति है। भावावेश, हृदयावेश तीव्र भावुकता तथा तनमयता से विगलित शब्द विन्यास के कविता का विशेष लक्षण माना गया तो मीरा के कवियत्री होने में संदेह नहीं।[2]

मीरा के राजस्थानी भाषा के पद पिंगल भाषा की परम्परा के अनुसार ही रचित हैं।

राजस्थानी भाषा के पद - थे तो पलक उघाड़ो दीननाथ, मैं हाजिर नाजिर कब की खड़ी।

गुजराती भाषा के पद - **प्रेमनी प्रेमनी हे प्रेमनी लागी कटारी प्रेमनी**

ब्रज भाषा के पद - **सखी री लाज बैरनी भई**

श्री लाल गोपाल के संग, काहे नाहीं गई।[3]

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि मीरा की भाशा मिश्रित भाषा है।

---

१. श्रीकृष्णलाल, मीराबाई (प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, शक् १८६२) पृ० १७२
२. ऊषा गुप्त, हिन्दी के कृष्ण भक्ति कालीन साहित्य में संगीत (लखनऊ : लखनऊ विश्वविद्यालय) पृ० ३०१
३. परशुराम, मीराबाई की पदावली (प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, १८८६) पृ० ६७

शब्द-सम्पदा की संगीतात्मकता :

काव्य और संगीत दोनों में शब्दों का स्थान सर्वोपरि है। नाद सौन्दर्य से कविता कीआयु बढ़ती है। "कविता शब्दों के रूप में संगीत और संगीतध्वनि के रूप में कविता है। मीरा ने संगीतरस में पदों की रचना की है। भाषा में शब्दों के अर्थों के साथ ध्वनि की विशेषता भी होती है।" शब्दों में एक प्रकार का पारस्परिक आकर्षण रहता है। पत्ते पत्ते मिलकर मर्मर ध्वनि उत्पनन करते हैं। तरंगों के पारस्परिक आघात से कलकल नाद उत्पन्न होता है। इसी प्रकार शब्दों के मिलने से काव्य में एक अपूर्व संगीत ध्वनि उत्पन्न होती है। मीरा के काव्य में शब्दों का चयन क्रमबद्ध है जिससे उसके पदों के शब्दों में संगीत विशेष उत्पन्न होता है। काव्य का भाव और उनमें प्रयुक्त शब्द से उत्पन्न ध्वनि एक दूसरे के पूरक और संबंधित हैं। संगीत मे मधुरता और नाद की सुंदरता को बढ़ाने के लिए ही कृष्ण भक्ति कालीन कवियों ने अपने काव्यो में री, अरी, ऐ, री जी, हो, हौ ए आदि शब्दों को बहुतायत प्रयोग किया है। इस शब्दों के प्रयोग से भाषा में कोमलता आ जाती है और ताल में आसानी से बंध जाती है। कृष्ण भक्ति कालीन कवियों ने कई स्थानों पर ताल और लय की प्रवाहता के लिए उन शब्दों का प्रयोग किया था।

ए री मैं तो दरद दिवानी मेरो दरद न जानयो कोय।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर आस गहयो ये सरणारी।।

मीरा ने संगीत की श्रुति मधुरता को अपनाया। उनके काव्य में दीर्घ स्वर अनुस्वार योग के साथ अधिक मात्रा में आयी है। स्वरों के संयोग से मीरा ने भाषा के नाद सौन्दर्य को बहुत बढ़ा दिया -

म्हा गिरधर आगां नाच्यां री

प्रीतम एकछड़ णा विसरावां मीरा हरि रंग रांच्या री।

प्रेम में विह्वल मीरा कोमल शब्दों में अपने भावों को प्रकट करती हैं -

मत जा मत जा मत जा, जोगी, पां पखूं मै तोरे।

पद के प्रत्येक शब्द में नाद का सौन्दर्य झलकता है। मीरा की व्यथा, चरम सीमा पर पहुंच कर चुप हो जाती है, जैसे - मीरा अपनी व्यथा की तेजी में संगीत में लिप्त होकर गाती हुई अपने प्रिय के प्रेम में समर्पित हो जाती हैं और वायुमंडल में इनके पदों का संगीत गूंजता रह जाता है। मीरा के पदों में प्रत्येक शब्द में तनमयता संगीतकता से भरपूर है जो मानव मन को द्रवित कर देता है। मीरा के विरह के पदों में उनके शब्द पदों के भावों के अनुकूल होती है। कई स्थानों पर प्रयुक्त ध्वनियों से जिससे आन्तरिक संगीत की उत्पत्ति होती है वह भावों के अनुरूप होती है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि मीरा के पदों के प्रयोग संगीतात्मक शब्द आज भी अपनी मधुरता और सरलता के कारण जनमानस पर राज्य कर रही हैं।

लय तथा ताल :

मीराबाई की शब्द संगीत-साधना अथवा काव्याभिव्यक्ति एक और समर्थ आयाम है, उसका लगातार लय ताल से संयुक्त होना। चूंकि लोक मान्यता है, और प्रमाण भी है, कि मीरा जो रचती थीं उसे गाती थीं और नाच नाच कर गाती थीं, इसलिए उनकी अभिव्यक्ति में संगीत की लय और नृत्य के ताल का सहज समावेश भी स्वाभाविक था। उनकी पदावली इस तथ्य का जीवन्त दृष्टव्य है। "लय" शब्द का अर्थ है लीन हो जाना, एकाकार हो जाना, एकत्रित होना आदि। लय को गति भी कहते हैं, सारा ब्रह्मांड लय के अधीन है। धरती, चन्द्रमा, सूरज, सभी ग्रह-नक्षत्र एक लय के अन्तर्गत चलते रहते हैं। माना जाता है कि यदि इस लय में सूत का भी अन्तर हो तो विनाश हो सकता है, और प्रलय आ सकती है। संसार के सभी जीवधारियों के शरीर में भी लय व्याप्त होती है, सांस का चलना, खून का चलना नाड़ी चलना और हृदय का चलना। यदि हृदय की गति अथवा लय रुक जाये तो मृत्यु हो जाती है। अतः जीवित जीव का लय से स्वाभाविक संबंध है। नियमित गति चाल ही लय है, लेकिन संगीत के उपयोग में गायक और वादक अपनी सुविधा और निपुणता के अनुसार लय बना लेते हैं।

मीरा काव्य में संगीतात्मक लय :

संगीत में लय के तीन प्रकार माने जाते हैं- १. विलम्बित लय २. मध्य लय ३. द्रुत लय। विलम्बित, मध्य, द्रुत लय एक दूसरे पर आश्रित हैं मध्य लय आधार लय माना जाता है,

मध्य लय से आधी की लय विम्बित लय होती है और मध्य लय से दुगुनी लय को द्रुत लय कहते हैं। संगीत रत्नाकर में शारंग देव ने गायन वादन नृत्य को संगीत कहा है। संगीत के इन तीनों भागों को आपस में मिला कर रखने का काम लय करती है तथा गायन वादन नृत्य तीनों के लिए आवश्यक है।

स्वर की अपेक्षा गति का प्रभाव विश्वस्त और व्यापक होता है। स्वर का आनंद प्राप्त करने के लिए संस्कार चाहिए लेकिन गति का आनंद यों बड़े ऊँच-नीच देहाती शहरी सभी को अनायास होता है। इनके लिए संस्कार की आवश्यकता नहीं पड़ती।

इस प्रकार काव्य-रचना भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष लय पर आधारित होती है, भक्तिकालीन काव्य की रचना प्रकार्य छन्दों में हुई है और छन्द लय पर आश्रित होते हैं। लय के कारण ही काव्य रसपूर्ण होताहै। "छन्दहीन कविता अपने आकर्षण को बहुत कुछ खो देती है। छन्दों के मधुर बंध के अभाव में प्रभाव की तीव्रता छिन्न-भिन्न हो जाती है। छंदहीन कविताओं पर अगर विचार करें तो उनमें भी एक प्रवाह गति होती है और यह गति संगीत की लय के सिवा और कुछ नहीं है। छन्द हीन कविता में चाहे इस लय की नाप का निश्चित विधान न हो लेकिन संगीत्मक प्रवाह अवश्य रहता है। इसी तरह मीरा के पदों में भी लय का अच्छा समन्वय है। मीरा के पदों में लय का भावानुकूल प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण है। वर्णों का आवर्तन उतार-चढ़ाव संतुलन, कम अधिक मात्राओं का ठीक सामंजस्य, विलम्बित तथा मध्य लय, द्रुत लय में पदों के संगीत का सुंदर प्रयोग है।

छन्द, अलंकार तथा काव्यरूप की संगीतपरकता :

. शब्द-संगीत की साधना के अन्तर्गत मीराबाई के काव्य के अभिव्यक्ति-पक्ष में उनके द्वारा प्रयुक्त अथवा निर्मित छन्दों एवं अलंकारों के अतिरिक्त उनके रीतिपरक मुक्तक काव्यरूप के संगीतपरक आयाम की विच्चारणीय हैं। ये आयाम इतने विशिष्ट और प्रसांगिक हैं कि एक स्वतंत्र अध्ययन की मांग करते हैं, परन्तु यहां इनके संक्षिप्त और आधारभूत स्वरूप पर ही विचार किया जा सकता है।

छन्दों का विधान :

मीरा काव्य का छन्द-विधान सुचिन्तित और शास्त्रीय नहीं है, बल्कि अनायास रचित और स्वाभाविक है।

आचार्य भरत ने अनेक अर्थों वाले पदों, वर्णों से विभूषित तथा चार पदों से युक्त कृत को छंद कहा है।[1] छन्द नियमित मुख ध्वनि का है। छन्द यह लयात्मक नियिमित अर्थपूर्ण वाणी है जिसमें आबद्ध होकर कोई वाक्य या वाक्यांश पद का रूप धारण करता है। संतों भक्तों के पद में रूपात्मक छन्द होते हैं। छन्द की विशिष्टता गेयता है जो काव्य और संगीत दोनों का आधार है। छन्द में लय होता है। छन्द का आधार लय है। छन्द ले के ही आधार पर नाद विधा है। छन्छ और एक दूसरे के पूरक हैं। परशुराम जी के अनुसार पदावली के अन्तर्गत आए हुए पदों को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि मानों उन की रचना पिंगल के पियमादि की दृष्टि में रखकर नहीं की गई थी। अथवा उनके विशेष रूप से गाने योग्य होने के कारण पीछे से, उनके संगीत की सुविधाओं के अनुसार परिवर्तन कर दिये गये हैं। पिंगल की दृष्टि से नाप जोख करने पर पदावली कदाचित कोई भी पद नियमानुसार बना हुआ प्रतीत नहीं होता। किसी में मात्राएं रहती हैं तो किसी में नहीं हैं। मीरा ने भी प्रचलित कई छंद जाने अनजाने अपनाया है। मीरा की पदावली में १४-१५ प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है।

छन्द पादों तु वेदस्य, भारतीय साहित्य के वैदिक साहित्य में मिलता है। छन्द का मतलब ऐसी काव्य रचना से है जिसमें मात्रा गति तुक आदि शैली को अपनाया गया है। मीरा ने छंदों का प्रयोग अपने भावों की अभिव्यक्ति करने का एक साधन बनाया है। मीरा के पद नियमानुसार नहीं है किसी में मात्रा ज्यादा है तो किसी में कम हो जाती हैं। किसी में दो-तीन शब्द बढ़ जाते हैं। किसी में गति भंग दोष बढ़ जाता है।

मीरा के कुछ पद २८ मात्रा में और कुछ २६ मात्रा में निबद्ध हैं, समान सवैया में ३२ मात्रा का प्रयोग हुआ है। जैसे -

अंबवा की डाली कोयल इक बोलो, सुन सुन जियरा डोले।

---

१ परशुराम, मीरावाई की पदावली, (प्रयाग · हिन्दी साहित्य सम्मेलन, शक् १८८६) पृ० ५७त्र

अलंकारों का सौष्ठव :

आम भाषा में अलंकार गहनों या आभूषणों को कहा जाता है। अर्थात् जो अलंकृत करे वही अलंकार होता है। अलंकार तीन प्रकार के होते है- शब्द अलंकार, अर्थ अलंकार, उभय अलंकार। शब्दालंकार के अन्तर्गत शब्दों के द्वारा काव्यात्मक सौंदर्य की वृद्धि होती है। शब्द अलंकार के अन्तर्गत अनुप्रास, वीप्सा, यमक वक्रोक्ति श्लेष पुनरुक्तिवदाभास चित्र आदि अर्थल अलंकार के अंतर्गत उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख आदि मीरा के काव्य में अलंकारों का सहज समावेश है। अधिक भाव उत्तेजना के कारण मीरा की वाणी सालंकार हो गी। मीरा के काव्य में शब्द अलंकार और अर्थ अलंकार दोनों का ही प्रयोग किया है। मीरा के प्रिय अलंकार, अनुप्रास और वीप्सा अनुभव होते हैं। अनुप्रास में अलंकार के अन्तर्गत यह पद द्रष्टव्य है-

बावल बैद बुलाया री म्हारी बाई दिखाऊ

सूनो गांव देस सब सूनो सूनी सेज अटारी

भोजन भजन भलो नहीं लागे पिया कारण भई गेली

मोर कुकुट माथ्यां तिलक विराज्या कुंडल अलंकारी जी।

संगीत की दृष्टि से ऐसी पद योजना उत्तम मानी जाती है। अनुप्रासों का समावेश वहीं अच्छा लगता है जहां वह संगीत को मजबूत करता हो। वीप्सा अलंकार के अन्तर्गत जहां पदों में मनोभावों को प्रकट करने के लिए उनको दोहराया जाता है वहीं वीप्सा अलंकार होता है। मीरा की पदावली में वीप्सा अलंकार की प्रचुरता है।

अंग णीड़ व्याकुल भया मुख पिव पिव वाणी होय

जोगी मत जा मत जा मत जा पाई परो मैं तेरी चेरी हौ

अर्थात् अलंकारों में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार आते हैं। मीरा पदावली में उन सभी अलंकारों का उपयोग हुआ है।

मीरा पदावली का एक पद जिसमें रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है-

अंसुवन जल सींच सींच प्रेम बेलि वूयां

विरह भुवगम वस्यां कलेजा मां लहर हलाहल जागी

यो समुन्दर अपार देखा अगम औखी धार

मीरा ने उत्प्रेक्षा का भी सुंदर प्रयोग अपने पद में किया है। सादृश्य के साथ-साथ संभावना पर आश्रित होने के कारण कवि का इस अलंकार के माध्यम से काव्य रचना का समय रहता है। उदाहरण के तौर पर -

धरती रूप नवा नवा धरिया इन्द्र मिलण के काज

कुंडल झलका कपोल अलका लहराई

मीरा तज सर वरया मकर मिलण धाई

मीरा ने अपने तीव्र भावावेश को उपमा अलंकार के द्वारा प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त के द्वारा अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया -

पण ज्यूं जीली पडत्री वे लोक कहे पिंड रो

जल विन कमल चंद बिल रजनी थे विण जीवन पाय

रात दिवस कल नाहिं परत है जैसे मीन विन पानी

दरस बिना मोहि कछु न सुहावै, तलफ तलफ मर जानी

अत्युक्ति का एक पद उदाहरण के लिए -

तुम विच हम विच अन्तर नहीं जैसे सूरज धारा

कणक कटोरा इम्रित भरयो पीवतां कूण तटया री।

विभावोक्ति - मोर मुकुट मकरांक्रत कुडल अरुण तिलक सोहा भाल

मीरा के काव्य में जो झलक अलंकारों की मिलती है उससे यह प्रतीत होता है कि काव्य रचना करते समय मीरा छंद अलंकारों का ध्यान रख कर काव्य की रचना नहीं करती थीं। डॉ. सावित्री ने ठीक कहां है- ''यद्यपि उपर्युक्त अनेक अलंकारों की झलक उनके काव्य में मिलती है। परन्तु मीरा ने कला रूप में उनको नहीं अपनाया। इनके हृदय की तीव्र वेदनाएं तथा गहन अनुभूतियां अपने में इतनी सजीव तथा सुन्दर है कि छंद अलंकार ध्वनि इत्यादि काव्य कला के अनेक अंगों की कोई सार्थकता नहीं है।

मीरा का आशय तो भाव-विभोर होकर हृदय की भावना को शब्दों में बांधना है। सुमित्रानंदन पंत ने कहा है- अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं थे भाव कि अभिव्यक्ति की विशेष धारा है। भाषा की पुष्टि के लिए राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है। वे वाणी के आधार व्यवहार रीति नीति है। पृथक स्थिति के पृथक स्वरूप भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।

मीरा की अलंकार योजना का विश्लेषण करते हुए आचार्य परशुराम जी कहते हैं कि - मीराबाई की कविता विशेषतः भावमयी होने के कारण उनके काव्यत्व की प्रचुर मात्रा हमें वस्तुतः उक्त अपूर्व रसोद्भावना अथवा हृदयाग्राही वर्णन के अन्तर्गत मिलती है। फिर भी पदावलीका मुख्य विषय एक ही परोक्ष वस्तु अर्थात् हरि अविनाशी प्रियतम होने से उसके साथ प्रेम एवं संबंध को भावोत्तेजन द्वारा स्पष्ट करने के लिए सादृश्य योजना का आश्रय भी स्वभावतः हो गया है।[1]

मीरा की भावनाएं श्रीकृष्ण को समर्पित थीं। उनकी अपनी काव्य कला के विषय में कोई चिन्ता नहीं थी। इसलिए उनको काव्य में अलंकारादि प्रयोग की चेष्टा नहीं मिलती। काव्य में जहां कहीं भी अलंकार का प्रयोग होता है। वह स्वतः ही हो गया है। मीरा के काव्य मे सभी अलंकारों का प्रयोग नहीं मिलता उन्होंने गिने-चुने अलंकारों का प्रयोग बार-बार किया है।

---

[1] परशुराम, मीराबाई की पदावली (प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, १९३१) पृ० २८

गीतिपरक मुक्तक काव्यरूप :

हालांकि मीराबाई ने सूर-तुलसी आदि प्रतिष्ठित भक्तिकालीन कवियों की भांति प्रबंध काव्य नहीं लिखा, फिर भी गीतिपरक मुक्तक काव्य के माध्यम से ही उनकी व्यंजना ने जिस शिखर का स्पर्श किया है, वह उनकी काव्य-वस्तु के अनुरूप है और बहुत महत्वपूर्ण हैं। गीति-काव्य का कवि व्यक्तिगत भावना और अनुभूति को लयात्मक अभिव्यक्ति होती है। कवि जब अपने एक गेय को पदों में बांध देते हैं तो वही गीतिकाव्य बन जाता है। गीतिकाव्य की यही परिभाषा हो सकती है कि गीतिकाव्य उन पूर्ण और समग्र क्षणों की वाणी है जिनकी स्थिति में वे क्षण ही पूर्व और समग्र क्षणों की वाणी है जिनकी स्थिति में वे क्षण ही पूर्व और समग्र जीवन प्रतीत होते हैं। क्षणों की महत्ता इसमें रहती है कि वे क्षण अपने स्थिति काल में समग्र जीवन प्रतीत होते हैं। मीरा का गीति काव्य प्रेम विह्वलता, आत्म अभिव्यक्तिता, कल्पना की सहज ही अभिव्यक्ति है। मीरा के अन्तर्मन के भावा वेग संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। इसीलिए मीरा के काव्य में शब्द, रस भाव का सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। परशुराम जी कहते हैं, उनके पदों में उनके आत्म उदगार होते हैं, उनमें न तो गीतों सा स्वर माधुर्य के प्रति एकांगी आग्रह लक्षित होता है न वैसा संगीत की शास्त्रीयता का अक्षरशः अनुसरण ही दीख पड़ता है। उनमें गीतिकाव्यों सा भाव-सौन्दर्य के लिए किया गया सजग प्रयास भी नहीं पाया जाता न वैसे यत्न किए गये हैं। जिनका उद्धेश्य प्रधानता पद-लालित्य का समावेश करना है।[1] 'कोई अनुभूति और भाव अधिक समय तक विकासशील नहीं रहता। यही कारण है कि तीव्र अनुभूति और आत्म अभिव्यक्ति केवल गीति के संक्षिप्त कलेवर में ही समा सकती हैं। गीतिकाव्य के निम्नलिखित तत्व प्रस्तुत हैं-आत्मअभिव्यक्ति, तीव्रता, संक्षिप्ततां, संगीतात्मकता, भावात्मक एकता स्वानुभूति, एवं भावना की पूर्णता।'

आत्म अभिव्यक्ति :

गीति काव्य में कवि के आंतरिक सुख-दुख, आशय-निराशा, हर्ष-विषाद आदि का वर्णन आदि का वर्णन होता है। कवि का मन बाहरी दुनियां से हट कर अपने अर्न्तात्मा की ओर

---

[1]. परशुराम, मीराबाई की पदावली. (प्रयागः हिन्दी साहित्य सम्मेलन सन् १९८४) पृ. २५५

उन्मुख हो जाता है। मीरा का सम्पूर्ण काव्य उनकी व्यक्तिगत भावना, जीवनभर के दुख दर्द की कथा हैं। मीरा का विरह से कातर मन, इनकी व्यथा केवल कल्पना नहीं है अपितु उनकी अन्तर्आत्मा की पुकार है--"मीरा काव्य के प्रत्येक पद में, पद की प्रत्येक पेंक्ति में, पंक्ति के प्रत्येक शब्द में और शब्द में निहित भावों में मीरा के अंतर की धड़कन सुनाई देती हैं।"[1]

मीरा की आत्माभिव्यक्ति में उसकी अपनी दुख की गाथा है। मीरा की वही निजी दुख दर्द, दूसरों को अपना दुख दर्द अनुभव होता है। इसी कारण श्रेष्ठ कवियों का काव्य युगों तक आनंद देता रहता है। मीरा ने अपने मन के छोटे से छोटे भावों को इतनी कुशलता से काव्य के द्वारा व्यक्त किया है कि वह आज भी जनमानस के अन्तर्मन को झकझोर कर रख देता है। मीरा ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति अपने भावों की अभिव्यक्ति बड़े सहज और स्वाभाविक ढंग से किया है। उनके प्रेम की पीर हृदय से निकल कर पद के रूप में अभिव्यक्त हुई। मीरा को लोक लाज, कुल मर्यादा की परवाह नहीं, वे केवल अपने आराध्य श्रीकृष्ण को जानती है वही उनके सर्वस्व हैं अपने प्रिय को रिझाने के लिए तरह-तरह के जतन करती हैं। कभी गाने लगती हैं, कभी घुंघरू बांध कर नाचने लगती है कभी हाथ में एकतारा लेकर संगीत के तीनों कलाओं (गायन वादन नृत्य) को माध्यम बना कर अपने प्रिय को रिझाने का प्रयत्न करती रहती थी।

म्हा गिरधर आगा नाच्यारी

णाच णाच म्हा रसिक रिझावा प्रीत पुरातन जाच्यां री

श्री कृष्ण के प्रति उनका प्रेम निश्छल है उन्होने अपने हृदय के समूचे भाव को काव्य के माध्यम से व्यक्त किया है। इसलिए मीरा के सम्पूर्ण काव्य में भाव की प्रधानता है। मीरा के पद में सहजता और निष्कपटता, निश्छलता विद्यमान है। वे अपने प्रिय के सौन्दर्य को देख कर आत्म-विभोर होकर गा उठती हैं -

थारो रूप देख्या अटकी

कुल कुटुम्ब सजण सकल वार वार हटकी

---

[1]. कृष्णदेव शर्मा, मीराबाई पदावली, (दिल्ली · रीगल बुक डिपो सन् १९७२) पृ० १११

मीरा किसी बात को स्वीकार करने से नहीं हिचकती। वे अपने हृदय की विरह वेदना को भी सहजता से अभिव्यक्त करती है जिस प्रकार मिलन सुख की अभिव्यक्ति सहज ढंग से करती है उसी तरह से विरह दुख में मीरा के हृदय की चीत्कार स्पष्ट अभिव्यक्त हुई है-

अख्यां तरण दरसण प्यासी

मग जोवा' दिण वींगत सजणी णोज दण्डया सुखरासी

डारा बैठ्या कोयल बोल्या, बोल सुराया री गासी

नारी मन भावना से पूर्ण होता है। मीरा भी एक नारी थी अपितु एक विरहिणी थी उनके पास केवल भाव संपत्ति थी जो उनकी अपनी थी। डॉ. सावित्री के अनुसार-"उनके काव्य में बौद्धिक तत्व का प्रायः पूर्ण अभाव है। अतः उनकी भावनाओं का श्रोत उल्लास तथा वेदना के रूप में काव्य और संगीत, में फूट पड़ा है।[1] मीरा के भावात्मकता के विषय में डॉ रामकुमार अपने विचार को बताते हैं "गीति काव्य के अनुसार मीरा की कविता आदर्श है। मीरा ने न तो रीति शास्त्र की गवेषणा की न अलंकार शास्त्र की। उनके हृदय में निर्झर की भांति भाव आए और अनुकूल स्थल पाकर प्रकट हो गये।, भाव, अनुभव, संचारी भावो के बादलों में उनकी कविता चन्द्रिका नहीं छिपी वरन् निरभ्र हृदयाकाश से बरस पड़ी। हृदय की भवना मंदाकिनी की भांति कल कल करती हुई आई और मीरा के कंठस्थ सरस्वती की संगीत धारा में मिल गई। वह भावना संगीत का सार बनी और उसी में मीरा के हृदय की अनुभूति मिली।"

है री मैं तो दरद दिवाणी मेरो दरद न जाणे कोय

चित्त चढ़ी म्हारे माधुरी सूरत हियरे ऊनी गढ़ी आदि

जैसे पदों में मीरा के भावों का सहज दर्शन होता है।

मीरा ने अपने प्रेम, विरह, मिलने की उत्सुकता को गेय रूप में व्यक्त किया है। मीरा की पीड़ा को संगीत ने उभारा है, संगीत मानव मन के दुख पर मरहम का कार्य करता है। काव्य के साथ संगीत का सामंजस्य होने पर उसका प्रभाव बढ़ जाता है। यही कारण है कि मीरा के पदों

---

[1] सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रिया (दिल्ली· आत्मा राम एण्ड संस, २०१५), पृ०१६६

का प्रभाव मार्मिक और व्यापक है। मीरा के गीत संगीतात्मकता से ओतप्रोत होने के कारण जनमानस के मन को मुग्ध कर देते हैं उनको रस मग्न कर देता है। मीरा के पद को जनमानस तक पहुंचाने में संगीत का बहुत बड़ा योगदान है। मीरा की भावनाओं की तरलता और संगीत की मधुरता ने मिलकर उनके पदों को बहुत अधिक प्रभावशाली बना दिया है। हिन्दी गीति काव्य परम्परा में मीरा के पद निर्विवाद रूप से शीर्ष स्थान प्राप्त कर लेते हैं।[2] संगीत की दृष्टि से मीरा के पद तत्कालीन शास्त्रीय संगीत के आधार को ग्रहण करते हुए पूरिया कल्याण बागेश्री, दरबारी, जैजैवनती जैसे रागों में बांधे गये हैं। वहीं अनेक पद कजरी, लावनी इत्यादि लोक गीतों की धुनों पर रचे गये हैं। मीरा संगीत की ज्ञाता थीं उनके नाम शीर्षक का राग "मीरा की मल्हार" आज भी प्रचलित है। राग दरबारी का यह द्रष्टव्य है-

प्रभु जी कहां गया नेहड़ो लगाय

छोड़यो म्हां विश्वास संगाती, प्रेम री बात चलाय

मीरा की मल्हार का एक पद -

डारि गयो मनमोहन फांसी

अमुवा की डाली कोइल इक बोले, मेरो मरण अरु जग केरी हॉसी

भावात्मकता ही सम्पूर्ण मीरा काव्य का एक महत्व पूर्ण तत्व है। भाव तत्व, बुद्धि तत्व, कल्पना तत्व के सहयोग से काव्य का सृजन होता है, परन्तु गीति काव्य में कामना भावनाओं का तीव्र आवेग द्वारा होना आवश्यक है। भावों के आधीक्य से गीतिकाव्य की सरलता, मधुरता और कोमलता बढ़ जाती है। गीति काव्य में बुद्धि तत्व का प्रायः अभाव रहता है। क्यों कि सोची समझी रचना में हृदय की कोमल भावों का उद्गार सहज रूप में नहीं हो पाता। कवि के मन में जब पिय मिलन की तड़प उठती है। उसी समय सम्पूर्ण हृदय की भावनाएं एकत्रित होकर गीति के रूप में अपने आप प्रसूत होने लगते है। भावों में आवेश होना और तीव्रता का होना आवश्यक सा लगता है। बिना उत्तेजना के गीति-काव्य में मार्मिकता, तड़पन, वेदना की

---

[1]. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (प्रयोग. रामनारायण लाल, १६५४), पृ० ५८३
[2]. उमा मिश्र, काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध (दिल्लीः दिल्ली पुस्तक सदन, १६६२), पृ० १३४.

भावाभिव्यक्ति में श्रेष्ठता नहीं आती। मीरा के काव्य में उनकी अभिव्यक्ति इतनी बलवती और वेगवती है कि मानव मन उसमें बह जाता, भाव-विमुग्ध हो जाता है। ये मीरा ही है जिनके पास काव्य की इतनी सम्पदा है जिसने आज भी जनमानस को पीछे लगा रखा है।

भावात्मक दृष्टि से उनका एक पद-

म्हारा री गिरधर गोपाल दूसरा णा कूंया

दूसराँ णाँ क्यों साधो सफललोक जूयां (टेक)

इन पंक्तियों में मीरा के प्रेमअवलम्ब श्रीकृष्ण के प्रति अपनी एकनिष्ठा और प्रेम आसक्ति परिलक्षित होता है।

मुक्तक गीति काव्य में कवि के व्यक्तित्व और व्यक्तिगत भावों की मुखरता रहती है। मीरा की दृष्टि भी बाह्य जगत से हटकर अन्तर्जगत की ओर मुड़ जाती है। अपने कल्पना में रमणीय स्थलों पर विचरती रहती हैं, कल्पना में ही प्रिय के मिलन का सुख भोगती हैं, कल्पना में ही प्रिय के न मिलने जाने पर व्यथित हो उठती हैं और यही वैयक्तिकता उनके यहां गीति के पदों के रूप में अभिव्यक्त होती है। जब तक अनुभूति गहरी और सच्ची नहीं होती तब तक अभिव्यक्ति, मर्मस्पर्शी, सुन्दर, मधुर और अर्न्तमन को झकझोरने वाली नहीं होगी। जब अनुभूति आंतरिक गहराई से निकलती है तब गीति का रूप ले लेती है। मीरा इन महान कवियित्रियों में से एक है जिसकी अनुभूति, अभिवयक्ति की अपेक्षा अधिक हृदयग्राही सजीव और मर्मस्पर्शी है। मीरा की अनुभूति चरम सीमा पर पहुंच कर भावात्मक हो जाती है। द्विवेदी जी लिखते हैं- ''मीराबाई के पदों में अपूर्व भाव विह्वलता और आत्मसमर्पण का भावहै। इसके मांधुर्य ने हिन्दी भाषी क्षेत्र के बाहर के भी सहृदयों को आकृष्ट और प्रभावित किया है। माधुर्य भाव के अन्यान्य भक्त कवियों की भांति मीरा का प्रेम निवेदन और विरह व्याकुलता अभिज्ञानाश्रित और अध्यंतरित नहीं है बल्कि सहज और साक्षात् संबंधित है। इसलिए उनके पदों में जिस श्रेणी की अनुभूति प्राप्त होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है।[1]

[1] हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका (बम्बई : हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, १६५६) पृ० १६५

मीराबाई की पदावली गागर में सागर जैसी सारगर्भिता और संक्षिप्तता से ओतप्रोत है, जो कि गीतिकाव्य की एक अनिवार्य विशेषता भी है।

मीरा का सम्पूर्ण काव्य एक ही अनुभूति अर्थात् प्रणय निवेदन की गहराई को व्यक्त करती है। वह अपनी कलात्मक है। संक्षिप्त में एक ही भाव का पूर्ण रूप से चित्रित करता है। उनके पद आकार में भी संक्षिप्त है। उन्होंने गिने चुने शब्दों में अपने भावों को व्यक्त कर दिया। मीरा ने अपने प्रेम की गहन अवस्था को थोड़े से शब्दों में सृजित कर दिया। मीरा ने अपने जीवन में जितना कुछ सहा है उतना कहा नहीं है। कितना कहे, मीरा के जीवन की सम्पूर्ण पीड़ा विरह की व्यथा समर्पण की उत्कृष्ट भावना में उतनी गहनता और धनत्व है कि मीरा के पदों में निरन्तरकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। मीरा के मन में उठने वाली हर भावनाओं की तरंग को उसके एक एक पद ने पकड़ लिया है। इससे यही सिद्ध होता है कि मीरा शब्दों का अपव्यय नहीं, बल्कि उन्हें संजो कर रखती हैं और समय आने पर उनका निर्व्याज उपयोग करती हैं।

निष्कर्ष :

इसमें संदेह नहीं कि मीराबाई के काव्य में कथ्य एवं कथन, अर्थात् अन्तर्वस्तु एवं रूप की उच्चस्तरीय एकता से साक्षात्कार होता है। वे अपने भक्ति-पूर्ण मन के भाव संगीत को इस विलक्षण ढंग से शब्द-संगीत में ढालती हैं इनकी सम्पूर्ण काव्य-साधना ही शब्द-संगीत की स्वाभाविक साधना प्रतीत होती है। सहजता और सम्प्रेषणीयता इस साधना के अन्यतम गुण हैं। वह सभी शब्दगुणों से सम्पन्न है और इसकी शब्द सम्पदा में विभिन्न प्रकार के स्रोतों का सुन्दर समन्वय है। वह अपने समय के लोकमानस का प्रतिनिधित्व करती हैं और इस दृष्टि से पर्याप्त ध्वन्यात्मक भी है। वह अनावश्यक आभिजात्य से परहेज़ करती है और सपाट बयानी से खरा-खरा सच कहती हैं। उसमें अक्खड़पन भी है और कोमलतम आत्म निवेदन भी। लय एवं ताल की अन्विति में उसकी विशिष्ट पहचान बनती है और उसके द्वन्द्वों, अलंकारों और गीतिपरक काव्यरूपों में भी इसी साधना के विभिन्न आयामों का परिचय मिलता है।

उपसंहार

कविता और संगीत, या गीत और संगीत अत्यन्त परस्पराश्रित है। इसलिए हमारे यहाँ संगीत को काव्यमय और काव्य को संगीतमय माना गया है। यह आश्चर्य की बात है कि लगभग सभी देशों में जो युग काव्य की दृष्टि से स्वर्णिम रहा है।

संगीत का भी वही स्वर्ण-काल कहलाया है। भारतीय इतिहास का मध्य-युग, जिसमें भक्ति-काव्य ने सांस्कृतिक पुर्नजागरण का विलक्षण कार्य किया, संगीत का भी सर्वोत्तम काल-खण्ड स्वीकार किया जाता है।

मीराबाई की संगीत और काव्य की इसी अभूतपूर्व एकता समय की उपज थी। भक्ति जन आत्म-निवेदन की पवित्रतम कविता को संगीत की सहायता से उन्होंने जिस पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया था, उसका कोई उदाहरण नहीं है।

अन्य भक्ति-कवियों की भाँति उन्होंने भी अपने काव्य को राग-रागनियों में रचा था और साहित्य तथा संगीत दोनो को अनन्य गरिमा प्रदान की थी। इसलिए उनके काव्य का संगीतात्मक अध्ययन किए बिना उसके सम्पूर्ण अर्थ को आत्मसात करना असम्भव है। परन्तु सबसे पहले, इस शोध-प्रयास के प्रथम चरण पर, एक सैद्धान्तिक आधारभूति के रूप में कतिपय विस्तार के साथ यह जान लेना भी आवश्यक है कि संगीत और उसका स्वरूप क्या है, साहित्य के कौन से रूप क्यों संगीतपरक होते है, मध्ययुगीन हिन्दी संगीत-काव्य की समृद्ध परम्परा कौन-सी रही है और किन तत्वों के आधार पर काव्या का वस्तुपरक संगीतात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

मेरा यह भरसक प्रयास रहा है कि मेरे शोध-कार्य की रूपरेखा बहुत स्पष्ट हो, ताकि मूल समस्या अथवा संकल्प के आलोक में अर्थ से इति तक निभ्रान्ति हो चल सकूँ। परिणामत

पिछले चार पाँच खण्डों के अन्तर्गत हिन्दी की सुप्रसिद्ध भक्ति कालीन कृष्णभक्त महाकवयित्री मीराँबाई की पदावली का संगीतात्मक अध्यन सम्पन्न हुआ। इस लम्बी और श्रमपूर्ण शोध यात्रा कें आरम्भ से लेकर अन्त तक के विभिन्न पड़ावों में जिन आधारभूत बिन्दुओं अथवा मूल संकल्पनाओं से हमारा क्रमिक साक्षात्कार हुआ, उनका संकेतात्मक समाहार इस प्रकार है :-

मीराबाई का काव्य अपनी रचना-प्रक्रिया में ही संगीतात्मक है। वह काव्य और संगीत की अथवा शब्द और लय की एकता का श्रेष्ठतम प्रादर्श है। यह एकता स्वाभाविक और दृढ़ है कि संगीतात्मक दृष्टिकोण के बिना मीरा के काव्य का कोई भी अध्ययन या मूल्यांकन अधूरा ही कहा जा सकता है। जिस प्रकार कविता की समझ के लिए छन्द की समझ अनिवार्य है, उसी प्रकार मीराँ की पदावली की सार्थक पहचान के लिए संगीत की सामान्य पहचार भी एक अपेक्षित योग्यता है।

मध्ययुगीन हिन्दी भक्त-कवियों के काव्य में संगीत का परोक्ष ही नहीं, प्रत्यक्ष आश्रय लिया गया है। हिन्दी साहित्य के भक्किाल को साहित्य का स्वर्णयुग कहा जाता है और भारतीय संगीत के इतिहास में भी इसी काल-खण्ड को स्वर्णिम माना जाता है। यह कोई आकस्मिक संयोग नहीं है, बल्कि काव्य और संगीत की परस्पर-पूरकता का अन्यतम प्रमाण है। इस काल में पहली बार ऐसा हुआ कि संगीत को आत्मा में संजोकर काव्य की रचना की गई और पद रचना में राग-रागिनियों को आधार बनाया गया। भक्त कवियों संगीतनिष्ठा ही गहरी नहीं थी, उनका संगीत ज्ञान भी पर्याप्त प्रचुर था। उन्होंने मानवीय संवेदना की संगीतात्मक सम्प्रेषणीयता को महत्वपूर्ण मान कर ही अपनी पद रचना की प्रक्रिया में संगीत को अनायास ही सम्मिलित कर लिया था। इस काल की महत्वपूर्ण कवयित्री मीराँबाई भी भक्ति-काव्य में साहित्य और संगीत के इसी अद्वैत का प्रतिनिधित्व करती हैं।

काव्य का संगीतात्मक अध्ययन जिन आधारभूत तत्वों के आलोक में किया जा सकता है, उनमें प्रमुख हैं - काव्यरचयिता का व्यक्तित्व और संगीत-बोध, रचना के भावलोक की संगीतात्मकता, पाठ के संगीतात्मक आयाम, रचनाकार के अन्तर्दर्शन में संगीत-तत्व, रचना की

रागानुसारिता, त्रिविध संगीतात्मक आंकलन, काव्य रूप में संगीत की भूमिका इत्यादि। मीराँबाई के युग तथा परिवेश दोनों में संगीत का वर्चस्व था। जिस प्रकार उनके अपने व्यक्तित्व की मौलिकता और उनके युग-वेषम्य की भीषण टकराहट से उनकी कविता ने जन्म लिया था। उसी प्रकार अपनी कविता में भी उन्होंने चुनैतियों को स्वीकार किया था और श्रीकृष्ण के प्रति आत्मनिवेदन को संगीत के मुहावरे में ढाल कर जनसामानस तक पहुँचाया था। मीराँबाई का युग मध्यकाल का वह शिखर-समय था, जिसमें राजपूत समितिवाद मुगल सत्ता के सामने धीरे-धीरे घुटने टेक रहा था, लेकिन अपने ही अन्तर्विरोधी से ग्रस्त होकर मिथ्या अहंकार का शिकार भी हो रहा था। यह झूठी राजपूती शान ही मीराँ के विद्रोह का कारण बनी थी। मुगल शासक और राजपूत सामन्त, दोनों ही कला प्रेमी थे और कला को राज्याश्रय देते थे, इसलिए विपरीत परिस्थितियों में भी इस काल में संगीत, काव्य आदि कलाएँ पनप रही थी। संगीत की गायकी में ध्रुपद आदि का आविष्कर इसी काल में हुआ था। धमार, भजन, मल्हार आदि के विकास का श्रेय भी इसी समय को जाता है। मीरा के व्यक्तित्व की रचना में इसी समय की तीव्र प्रतिक्रिया है।

मनुष्य की मनुष्यकता ही उसके कर्म की सबसे पहली कसौटी है। कवि अथवा रचनाकार भी इसका अपवाद नहीं है। कबीर, सूरदास और तुलसीदास की भाँति मीराँबाई के व्यक्तित्व और कृतित्व में भी किसी प्रकार की दरार नहीं। उन्होंने जीवन में जो कुछ भोगा, उसी को गेय पदों में रचा और अनुपम कृष्ण भक्त के रूप में गा-गा कर सम्प्रेषित किया। जीवन के दर्द को उन्होंने काव्य और संगीत के संयुक्त दर्द में ढाला और उसमें भक्तजनों को भी आप्लावित किया। जीवन का साहस ही उनकी रचना का साहस बना लोगों ने उन्हें कुलबोरनी कहकर प्रताड़ित किया, स्वजनों ने जहर तक भेजा, मगर मीराबाई ने विषपायी नीलकण्ठ बनकर सब कुछ को सहा, अस्वस्थ का खण्डन किया और मन-चाहे स्वस्थ को साहस के साथ धारण किया। मीराँ के जीवन, काव्य और संगीत, भक्तिभाव, दर्शन और समग्र चिन्तन में सत्य ही सिर चढ़ कर बोलता है। उनका जन्म सामान्य सामन्ती घराने में हुआ, सामन्ती ससुराल में ही गमन हुआ और प्रतिकूलता ने कदम-कदम पर उन्हें चुनौती भी दी, मगर उनकी सम्पूर्ण जीवन-यात्रा भक्ति के महानतम सत्य के अन्वेषण और धारण की यात्रा बनी रही। उनकी "पदावली" श्रीकष्ण के कीर्तन- गायन की उज्जवल पराकाष्ठा है, जिसमें वह स्वयं कृष्णमयी होकर भक्ति-संगीत के नाद को सुनती और सुनाती है। वास्तव में मीराँ के स्वभाव के मूल झूकाव ही उन्हें संगीतमयी काव्य

रचना के लिए उत्प्रेरित करते रहे। निजी जीवन और बाह्यजगत दोनों से उन्हें सर्जना की शक्ति प्राप्त होती थी। इसी प्रकार परम्परा और समकालीनता दोनों ने ही उनके भक्ति-संगीतात्मक स्रोतों का काम किया। इसीलिए संगीत का सर्वप्रिय माध्यम उनकी सृजन प्रक्रिया का अनिवार्य अंग बना रहा। उनकी रचना-धर्मिता अपने समय के सभी सम्प्रदायों से विमुक्त रही, जिसके परिणाम स्वरूप वे कृष्ण के प्रति अर्पित होकर महासमर्पण का पर्याय बन गई। ऐसी विषपायी जिजीविषा साहित्य और संगीत के इतिहास में अन्य कहीं नहीं मिलती। उनके बाद शायद महाकवि निराला में उसके दर्शन होते हैं।

मीराँबाई का सम्पूर्ण कृतित्व एक ओर तो उनके कृष्ण प्रेम में रंजित आत्म की अखण्ड अभिव्यक्ति है और दूसरी ओर उनका समग्र सर्जना-संसार अनेक प्रकार की संगीतात्मक प्रवृत्तियों से भी चालित है। इसे समझने के लिए संगीतात्मक आधार पर उनके काव्य के भावलोक तथा अन्तर्दर्शन की विवेचना अपेक्षित है। उनका जीवन-दर्शन आम रचनाकारों की भाँति जीवन के लिए प्रतिकर्म अथवा दृष्टिकोण नहीं है, बल्कि आत्मानुभूति और अन्तर्दर्शन ही का दूसरा नाम है। भक्ति के अन्य कवियों की तुलना में मीराँ बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी अधिक हैं और अपने तथा श्रीकृष्ण के अटूट सम्बंध को लेकर जो कुछ भी कहती हैं उसमें आत्मसाक्ष्य ही सब से ऊपर रखती हैं। उनके भीतर का भक्त, कवि, संगीतज्ञ और व्यक्ति एक ही सम्पूर्णता के विविध और अन्तर्मुखी आयाम है। इसलिए उनका जीवन-दर्शन वस्तुतः अन्दर्शन ही है। उन्हीं की भांति उनका काव्य भी असाधारण है। यह आसाधारणता राजस्था की उस मिट्टी की गंध से परिपूर्ण है, जिसे मीराबाई ने पहचाना और जिया था। लोकजीवन, लोकसंगीत और लोकचित्त की उन्हें अद्भुत समझ इसीलिए थी। अनुभव-लोक की व्यापकता और भावना की भावुकता इसी की देन है। सुख की तुलना में दुःख की उपादेयता का स्वीकार भी इसी की उपज है। उनकी संगीतात्मक रूचियों को भी यही अनुकूल लगता था। तानसेन, बैजू, गोपाल नायक आदि संगीतकार मध्यकाल में ही हुए थे और मीरा अपने समय की इस विशेषता से प्रभावित थी। मीरा के राजवंश में भी संगीत का बोलबाला था। इसलिए यदि कहा जाए कि पारिवारिक संस्कारों की भाँति ही संगीत मीरा-काव्य की धमनियों में रक्त बन कर प्रवाहित होता है तो अतिशयोचित न होगी।

मीराँ के काव्य में "भगति" और "जगति" का द्वन्द्व-संगीत अपने चरम शिखर पर सुनाई देता है। उनके यहां काव्य और संगीत दोनों ही आध्यात्मिकता और सांसारिकता के दो विरोधों को व्यक्त करते हैं और धरती को आकाश तक उठा कर, दोनों में सामंजस्य स्थापित करते हैं। मीरा की पदावली की मूल प्रेरणा इसी द्वन्द्व-संगीत में निहित है। जगत को वह नश्वर मानकर भी महत्व देते हैं क्योंकि भक्त-मन के आध्यात्मिक विकास के लिए उसका अनुभव भी आवश्यक मानती है। संसार के स्वार्थ, छल-कपट, आडम्बरों और षड़यंत्रों से भी वह भली भांति परिचित हैं और सगुण भक्त होकर भी मिथ्या कर्मकाण्डों एवं रीति-रिवाजों में विश्वास नहीं रखती हैं। यह कहना गलत है कि मीरा इस संसार में निरपेक्षता या सन्यास का पक्ष लेती हैं। वह साफ कहती हैं - "कहा भ्या का भगवा पहरया घर तजलयो सन्यासी।" इसीलिए वह मनुष्य की योनि या नर-देही को सर्वोत्तम मान कर, उसके द्वारा सुकर्म करने पर बल देती है। ईश्वर के रूप में वह पूर्ण सौन्दर्य का साक्षात्कार करती हैं और श्रीकृष्ण को इष्ट मान कर मधुरा-भक्ति में डूब जाती हैं। यही कारण है कि कई दूसरे भक्त कवियों का दास्य अथवा दीन भाव मीराँ में बिल्कुल नहीं है। श्रीकृष्ण के प्रति परिणीता-भाव के मार्ग से वह सहजानुभूति के अद्वैत-बोध की गरिमा को रचती और निभाती हैं।

अपनी काव्य-रचना में मीराबाई अपने अनन्य भाव-लोक का भी संगीतात्मक आकलन करती हैं। जिस प्रकार कोई नाटककार नाटक लिखते समय उसके दृश्यों को कल्पना में घटते हुए भी देखता है, उसी प्रकार मीरा जो रचती हैं उसको मन ही मन गाकर परखती भी हैं। उनका सम्पूर्ण काव्य उनके भावलोक के संगीतात्मक आकलन का शाब्दिक परिणाम है। उनका भावलोक असामान्य है और अलौकिक प्रेम की अनुभूति से परिपूर्ण है। उसे दिव्य भावलोक भी कहा जा सकता है, जिसे संगीत के अतिरिक्त नृत्य द्वारा भी अभिव्यक्ति की पूर्णता प्राप्त होती है। मीराँ की इस भाव माधुरी में भक्ति रस, श्रृंगार रस और करूण रस की त्रिवेणी बहती है, जो कुल मिलाकर एक व्यापक मधुर रस की महानदी बन जाती है। रूपराग की रहस्यात्मकता भी उनकी पद रचना का निजी वैशिष्ट्य है। वास्तव में मीराँ-काव्य में सभी भाव अन्ततोगत्वा परम भाव बन जाते हैं।

मीराँबाई का अन्तर्दर्शन भी उनके अन्तस्संगीत से निसृत है। अर्थात उनके अन्तस की गहराई से भक्ति एवं प्रेम का जो संगीत फूटता है, उसी के प्रवाह में वह स्वयं को और समस्त चराचर को प्रवाहित होता हुआ अनुभव करती हैं। इसीलिए उनके काव्य में अनुभूति का पक्ष चिन्तन के पक्ष से कहीं अधिक समृद्ध है। सूर, तुलसी, जायसी आदि की तुलना में मीराँबाई विशिष्ट अर्थों में दार्शनिक कवयित्री नहीं है। दर्शन की सुविचारित शब्दावली का उनके यहाँ बहुत अभाव है। वह अपने अन्तस के गहन में और जीवन के प्रामाणिक अनुभव को ही रचना में ढालती है। इसलिए लिखकर गाना और गाकर लिखना मोर-पपीहा आदि जीव-स्वरों को लोक-शोभा के दर्शन भी होते हैं। इतना ही नहीं, मीराँ का काव्य संगीत की असंख्य नयी-पुरानी तानें को व्यावहारिक रूप प्रदान करता है और इस प्रकार कथ्य की सार्थकता को कथन की सटीकता से जोड़ता है।

मीराबाई के पदों को अनेक प्रकार से संगीत की स्वर-लिपियों में नियोजित किया जा सकता है। इस शोध-प्रबन्ध के पंचम खण्ड में इन स्वर-लिपियों को विस्तार से दिया गया है। सच यह है कि मीराँ-काव्य का राग-वैभव इतना ठोस और सुदृढ़ हैं कि यह विश्वास नहीं होता कि अनगढ़ पिंगलभाषा के उपयोग से भी इतनी स्तरीय संगीत-रचना की जा सकती है। हम चाहें तो मीराँ के पदों का वर्गीकरण प्राचीन, अर्वाचीन और समकालीन रागों के आधार पर भी कर सकते हैं।

मीराँबाई की पद-रचना में उनकी अनुभूति और सोच के आयाम तो संगीतात्मक हैं ही, अभिव्यक्ति का आयाम भी सब से अधिक संगीताश्रित है। मीरा के पदों की पहचान इतनी गहरी हो चुकी है कि पद की पहली दो पंक्तियों को आम आदमी तक यह बता सकता है कि इसे मीराँ ने रचा है। इतना ही नहीं, मीराँ-काव्य संगीत की नयी उदभावनाओं और भावी सम्भावनाओं से भी भरपूर है। यह लगभग सर्वमान्य है कि शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत "राग मीरा मल्हार" की जन्मदात्री मीराँबाई थी। इसे निश्चयात्मक कथन न भी स्वीकार किया जाए, तो भी इतना तो निश्चित है कि इस राग को महत्वपूर्ण बनाने में मीराँ-काव्य की विशेष भूमिका रही

है। उसके विलक्षण संगीतमय होने का प्रमाण इस तथ्य से भी मिल जाता है कि संगीत का शायद ही कोई ऐसा शास्त्रीय राग होगा जिसमें मीरा की किसी पद-रचना को निबद्ध न किया गया हो, बल्कि मीराँ का एक-एक पद कई-कई रागों में गाए जाने के अनेक प्रमाण भी मिलते हैं। सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि भारतीय संगीत में वह आज भी जीवन्त है।

इससे सिद्ध हो जाता है कि मीराँ-पदावली संगीतात्मक रागानुसरिता ने उसकी काव्यात्मकता को कालजयी बना दिया है। यह कहना कठिन है कि स्वयं मीराँ बाई को संगीत का औपचारिक ज्ञान कितना था अथवा "पदावली" के पदों की रचना सचमुच रागों में की गई थी या नहीं, मगर इतना निश्चय से कहा जा सकता है कि उसमें त्रिविध संगीत की अदभुत छटा दिखाई देती है, अर्थात वह गायसन, वादन और नर्त्तन तीनों का सुंदर समुच्चय है। उसमें सप्तस्वरों का विलक्षण सौष्ठव है और संगीत-रस की विविधता है। उसमें शुद्ध विकृत स्वरों और सभी प्रमुख स्वर-जातियों के प्रस्तुतीकरण का अवकाश है। सम्पूर्ण राग, षाड्व राग तथा औडव राग की स्वाभाविक समाविष्टि के अतिरिक्त उसमें राग-माध्यम से ऋतु-वर्णन की और उनकी अपरिहार्य नियति है। उनका सम्पूर्ण चिन्तन भी इसी अन्तस्संगीत की भूमि पर होता है, इसीलिए वह चिन्तन अपनी सीमा में भी विराट है क्योंकि उसमें कहीं भी प्रदर्शन और पाण्डित्य का दम्भ नहीं है। उनका अपना कोई दार्शनिक अथवा वैचारिक सम्प्रदाय नहीं था। इसलिए उनका अन्तर्दर्शन अनेक कृष्ण भक्त सम्प्रदायों अथवा अन्य दार्शनिक विचारों का व्यावहारिक समाहार करता है। उन्हें जहां जो अच्छा लगता है। उसे ग्रहण कर लेती हैं। इस दृष्टि से उनका अन्तर्दर्शन मानवतावादी भी है और सुधारवादी भी। जीवन को अमूल्य वस्तु मानकर वह उसे वरदान के रूप में स्वीकार करती हैं। उनकी जीवन-चेतना में अहं के विलय का विशेष महत्व है, जिसके लिए अलौकिक प्रिय के विरह से उपजी हुई वेदना की आग में जल कर पावन होना अनिवार्य है। श्रीकृष्ण की लीला के अनेक रूपों का मधुर साक्षात्कार इसी प्रक्रिया का अभिन्न आयाम है। यह उदात्तीकृत अन्तर्दशर्न है जो अन्तस्संगीत से उपज कर सम्पूर्ण मीराँ-काव्य में व्याप्त होता है।

संगीत के विभिन्न आयामों के गवाक्ष से देखें तो मीरा का काव्य शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत ओर लोक-संगीत की सभी आधारभूत अपेक्षाओं पर खरा उतरता है। यह उसकी अनुपम संगीतात्मक सामर्थ्य ही है कि एक दक्ष संगीत शास्त्री से लेकर सामान्य गायक तक के होंठ उसे युगों से अपने सुर-तान में साधते रहे हैं। इसी गुणवत्ता के कारण मीरा का काव्य अभिजन और

सामान्य जन की सीमाओं को तोड़ कर, काव्य-जन होने की वांछनीयता को प्रतिष्ठित करता है। लोक-चित्त में प्रशंसनीय गुण के रूप में सराहा जाता है। इसी प्रकार भारतीय काव्यशास्त्र में भी शब्द को काव्य की केन्द्रयी इकाई मानकर, सार्थक शब्द अथवा शब्द और अर्थ के सहअस्तित्व को ही काव्य की संज्ञा प्रदान की गई है। महाकवयित्री मीराबाई की पद-रचना इसी दोहरे अर्थ में शब्द-संगीत की साधना है। उनकी काव्यभाषा में तीव्रानूभूति के सहज स्वरूप के अन्तर्गत सहज-सरल भाषा की अनुपमता के अतिरिक्त शब्द की सर्वगुणसम्पन्नता, शब्द-सम्पदा में बहुभाषिक समन्वयात्मकता और संगीतमूलकता से साक्षात्कार होता है। उनके अभिव्यक्ति-पक्ष में लय और ताल के परिप्रेक्ष्य भी संगीतात्मक है और छन्दों के विधान, अप्रस्तुत के प्रस्तुतीकरण तथा काव्य रूप की और अलिखित, उच्चरित ओर अनुच्चरित, प्रत्यक्ष और अप्रत्ययक्ष रूपों को जैसा सुन्दर समन्वय मीराबाई के काव्य में मिलता है वैसा और कहीं नहीं। उनके कथन की संगीतात्मक पद्धति अपने समय के लोकमानस और स्वयं उनके श्रीकृष्ण-निष्ठ हृदय की भाव-प्रवणता के नितान्त अनुरूप है। इसमें अद्‌भुत प्रभावशीलता है, अनुपम स्वतः स्फुरण है और सर्वश्रेष्ठ सम्प्रेषणीयता है। आने वाले समय में यह सब अधिकाधिक अनुसंधान की सम्भावनाओं से पूर्ण है।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

१. अहोबल : संगीत पारिजात, हाथरस : संगीत कार्यालय, १६५६.

२. अमर सिंह : अमरकोष, रामाश्रयी व्याख्या सहित, वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वि. सं. २०३६.

३. उपाध्याय, भगवती : भक्त मीराबाई, वाराणसी : संजय बुक सेंटर, १६८६.

४. खोखर, जीत सिंह : संस्कृत नाट्य साहित्य में समाज चित्रण (दिल्ली : नाग प्रकाशक), १६६५.

५. गुप्त, उषा : हिन्दी के कृष्णभक्ति कालीन साहित्य में संगीत, लखनऊ : लखनऊ विश्वविद्यालय, सं. २०१६.

६. गुप्ता, विमला : आधुनिक हिन्दी प्रगीत संगीत तत्व, काशी : नागरी प्रचारिणी सभा, सं. २०२४.

७. गुप्त, दिनेश चन्द्र : भक्ति कालीन काव्य में राग और रस, लखनऊः भारती प्रकाशन, १६७०.

८. गर्ग, प्रभु लाल : संगीत-सागर, हाथरस : संगीत कार्यालय

६. चक्रवर्ती, इन्द्राणी : स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान, वाराणसी : चौखम्बा, १६७६.

१०. चौधरी, विमल : राग-व्याकरण, दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, १६८१.

११. चौधरी, सुभद्रा : भारतीय संगीत में ताल और रूपविधान, अजमेर, कृष्ण ब्रदर्स, १६८४.

१२. चौधरी, विमल कान्तराय : भारतीय संगीतकोश, दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ।

१३. चतुर्वेदी, परशुराम : मीराबाई की पदावली, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १६६६ ई०.

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची

१. अहोबल : संगीत पारिजात, हाथरस : संगीत कार्यालय, १९५६.

२. अमर सिंह : अमरकोष, रामाश्रयी व्याख्या सहित, वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वि. सं. २०३९.

३. उपाध्याय, भगवती : भक्त मीराबाई, वाराणसी : संजय बुक सेंटर, १९८६.

४. खोखर, जीत सिंह : संस्कृत नाट्य साहित्य में समाज चित्रण (दिल्ली : नाग प्रकाशक), १९९५.

५. गुप्त, उषा : हिन्दी के कृष्णभक्ति कालीन साहित्य में संगीत, लखनऊ : लखनऊ विश्वविद्यालय, सं. २०१६.

६. गुप्ता, विमला : आधुनिक हिन्दी प्रगीत संगीत तत्व, काशी : नागरी प्रचारिणी सभा, सं. २०२४.

७. गुप्त, दिनेश चन्द्र : भक्ति कालीन काव्य में राग और रस, लखनऊः भारती प्रकाशन, १९७०.

८. गर्ग, प्रभु लाल : संगीत-सागर, हाथरस : संगीत कार्यालय

९. चक्रवर्ती, इन्द्राणी : स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान, वाराणसी : चौखम्बा, १९७९.

१०. चौधरी, विमल : राग-व्याकरण, दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, १९८१.

११. चौधरी, सुभद्रा : भारतीय संगीत में ताल और रूपविधान, अजमेर, कृष्ण ब्रदर्स, १९८४.

१२. चौधरी, विमल कान्तराय : भारतीय संगीतकोश, दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ।

१३. चतुर्वेदी, परशुराम : मीराबाई की पदावली, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६६ ई०.

१४. जोशी, उमेश : भारतीय संगीत का इतिहास, फिरोजाबाद : आगरा : मानसरोवर प्रकाशन, प्रतिष्ठान, १६६६.

१५. ठाकुर, ओंकार नाथ : संगीतांजली भाग-I, १६५४, II - १६५५, भाग - III, १६५७, भाग - चार, १६६२.

१६. वही : प्रणव भारती, वाराणसी : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १६५६.

१७. तैलंग गोकुलानंद : संगीत अष्टछाप, हाथरस : संगीत कार्यालय, १६६२.

१८. रातंजानकार, श्रीकृष्ण : अभिनव गीत-मंजरी, भाग-दो, पूर्वार्द्ध बम्बई : पापुलर बुक डिपो, १६६१.

१६. दत्तिल : दत्तिलम, संगीत कार्यालय, हाथरस : १६६०.

२०. दामोदर, पंडित : संगीत - दर्पण, हाथरस : संगीत कार्यालय, १६६३.

२१. देवधर, बीर. आर : गायनाचार्य पं. विष्णु दिगम्बर (मूल मराठी से हिन्दी अनुवाद) बम्बई : देवधर्स स्कूल ऑफ इन्डियन म्यूजिक, १६७१.

२२. परांजये, शरद चन्द्र : संगीत - बोध, भोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, १६८०.

२३. पंडित शंकर कृष्णराव : संगीत - प्रवेश, भाग-१, १६५३, भाग-२ १६५४, ग्वालियर : शंकर गांर्धव विद्यालय

२४. बृहस्पति, आचार्य उर्मिला कुमारी : संगीत चिन्तामणि, हाथरस :

२५. बृहस्पति, आचार्य कैलाश चन्द्रदेव : ध्रुवपद और उसका विकास, पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, १७६४.

२६. बृहस्पति, आचार्य : मुलसलमान और भारतीय संगीत, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १६७४.

२७. भातखंडे, विष्णुनारायण : हिन्दुस्तानी संगीत - पद्धति पुस्तक मालिका, भाग - एक से ४, हाथरस : संगीत कार्यालय १६५३-६४.

२८. भातखंडे, विष्णु नारायण : संगीतशास्त्र, हाथरस : I, सम्पा. मनमोहन घोष, कलकत्ता : मनीषा ग्रन्थालय, १६६७.

२६. वही : नाट्यशास्त्र, चार भाग, वाराणसी : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

३०. वही : नाट्यशास्त्र, वाल्यूम-४, (संपा. : रामकृष्ण कवि तथा जे. एस. पांडे) बड़ौदा : गायकवाड़ ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, १६६४.

३१. भातखंडे, विष्णुनारायण : उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, हाथरस : संगीत कार्यालय, १६५४.

३२. भटनागर, लाजवंती : धर्म-सम्प्रदाय और मीरा का भक्ति-भाव, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, १६८०.

३३. मिश्र, भुवनेश्वरनाथ : मीरा की प्रेमसाधना, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १६५४.

३४. मिश्र, लालमणि : भारतीय संगीत वाद्य, दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, १६७३.

३५. मीतल, प्रभुदायल : अष्टछाप परिचय (मथुरा : अग्रवाल प्रेस, सं. २००६)

३६. मनोहर, शंभू सिंह : मीरा पदावली, जयपुर : रिसर्च पब्लिकेशन्स, १६६६.

३७. मिश्र, उमा : काव्य और संगीत का पारस्परिक संबंध, दिल्ली : पुस्तक सदन, १६४२.

३८. तिवारी, भगवानदास : मीरा की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन, १६८०.

३६. देवकृष्ण : मध्यकालीन, कृष्ण काव्य, दिल्ली : हिन्दी साहित्य संसार, १६७०.

४०. लाल कृष्ण : मीराबाई जीवन चरित और आलोचना, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, १६७६.

४१. लाल श्रीकृष्ण : मीराबाई (प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, १८६२.

४२. शरंगदेव : संगीत रत्नाकर I, II, III, मद्रास : अपार लाइब्रेरी, १६४३.

४३. शुक्ल, रामचन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी : नागरी प्रचारिणी सभा, सं. २०१२.

४४. शेखावत, अनयाण : मीराबाई का जीवन वृत एवं काव्य, जोधपुर : हिन्दी साहित्य मंदिर, १६७४.

४५. शशिप्रभा : मीरा की भाषा, इलाहाबाद : स्मृति प्रकाशन, १६७२.

४६. शर्मा, नारायण : मीरा की काव्य कला और जीवन, इलाहाबाद : सरस्वती पुस्तक सदन, १६६५.

४७. शर्मा, वेंकट : भक्ति काव्य का अन्तर्दर्शन, दिल्ली : पल्लव प्रकाशन, १६८६.

४८. शर्मा, स्वतंत्र : भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विशेषता : इलाहाबाद : भार्गव एंड संस, १६८८.

४६. शास्त्री, के. : संगीत शास्त्र, लखनऊ : हिन्दी समिति सूचना विभाग, १६६८.

५०. श्रीवास्तव, मीरा : कृष्णकाव्य में सौन्दर्य शोधएवं रसानूभूति, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, १६७६.

५१. शेखवत : मीरा वाणी, जोधपुर : गर्ग एंड कम्पनी, १६८४.

५२. सिंह, देशराज : मीराबाई और उनकी पदावली, अशोक प्रकाशन, १६७१.

५३. सिंह, नीलिमा : मीरा - एक अन्तरंग परिचय, दिल्ली : सरस्वती विहार, १६८२.

५४. शर्मा, कृष्णदेव : मीराबाई पदावली, दिल्ली : रीगल बुक डिपो, १६७२.

५५. सावित्री : मीराबाई एवं वैग माया एक तुलनात्मक अध्ययन, आन्ध्र प्रदेश : साहित्य सदन, १६८६.

५६. वर्मा, रामकुमार : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद, रामनारायण बुक सेलर्स, १६५४.

५७. चतुर्वेदी, परशुराम : मीराबाई की पदावली, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, शक १८८४.

पत्रिकाएं

१. मरु भारती

२. उदयपुर शोध-पत्रिका

३. हिन्दुस्तानी पत्रिका

४. नागरी - प्रचारिणी पत्रिका

५. सम्मेलन पत्रिका

६. संगीत

७. संगीतकला विहार

८. आलोचना

६. नादरूप

१०. धर्मयुग

११. साप्ताहिक हिन्दुस्तान